342

॥ श्रीहरिः ॥

संत-वाणी

[ढाई हजार अनमोल बोल]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक—
हनुमानप्रसाद पोद्दार

प्रथम संस्करणसे अड़तालीस पुनर्मुद्रणतक	६,८७,२५०
सं० २०६१ उनचासवाँ पुनर्मुद्रण	१०,०००
योग	६,९७,२५०

मूल्य—पन्द्रह रुपये

ISBN 81-293-0028-1

प्रकाशक एवं मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान

फोन : (०५५१) २३३४७२१; फैक्स २३३६९९७

website : www.gitapress.org | e-mail : booksales@gitapress.org

संत-वन्दना

हे पवित्रकीर्ति संतगण ! आकाशमणि सूर्य पृथ्वीको ऊपरसे आलोक प्रदान करता है, किंतु आपलोग पृथ्वीपर रहकर उसपर ईश्वरीय प्रकाशको प्रसारित करते हैं; अतः हम आपकी वन्दना करते हैं।

भगवान् सविता पृथ्वीको ताप प्रदान करते हैं और आपलोग अपने भीतरी खजानोंमेंसे ज्ञानरूपी अमृत देकर जीवात्माको सुखरूप उष्णता प्रदान करते हैं। हम जिधर आँख उठाकर देखते हैं, जिस किसी देशमें जाते हैं, हम आपके पावनपाद-पद्मोंके आनन्दरूप मकरन्दको निरन्तर झरता हुआ पाते हैं। आपके चरणोंमें हमारे कोटिशः प्रणाम हैं।

तापसंतप्त संसारको मुक्तिरूप निरतिशय आनन्दका संदेश सुनानेवालो ! यह पृथ्वी आपकी पावन चरणधूलिके सम्पर्कसे ही हमारे रहने योग्य बनी हुई है। मेसोपोटेमिया और अरबके सूखे रेगिस्तानोंमेंसे यदि मूसा, ईसा और रसूल-जैसे अमृतनिर्झर पैदा न होते तो वहाँकी तप्त बालुकामें झुलसने कौन जाता ? योरपके रणक्षेत्रमें यदि हमें सुकरात, प्लेटो, अरस्तू और संत फ्रांसिस-जैसे महान् आत्माओंके दर्शन न होते तो

वहाँके लोगोंको शान्तिका पाठ कौन पढ़ाता? ब्रह्मज्ञानी लात्शे और महात्मा कन्फ्यूशसके नामका चीन देश अब भी गौरवके साथ स्मरण करता है और उनके उपदेश उस देशकी एक अमर सम्पत्ति हैं। हमारा पवित्र भारतवर्ष भी शून्य प्रतीत होने लगेगा यदि व्यास-वाल्मीकि, शुकदेव-नारद, याज्ञवल्क्य-जनक, वसिष्ठ-दधीच, बुद्ध-महावीर, शंकर-रामानुज, निम्बार्क-वल्लभ, मध्व-चैतन्य, नानक-कबीर, सूर-तुलसी, नम्मलवार-माणिक्क-वासगर, ज्ञानदेव-तुकाराम, एकनाथ-रामदास और रामकृष्ण-रामतीर्थ प्रभृति संतोंको उसके इतिहासमेंसे निकाल दिया जाय। संत ही भारतवर्षके स्मृतिकार हैं, संत ही सच्चे कवि हैं, संत ही सच्चे संदेशवाहक हैं और संत ही सबको प्रेम, ज्ञान और शान्तिका पाठ पढ़ानेवाले हैं। उन संतोंके चरणोंमें हमारा बार-बार प्रणाम है।

संत ही मानव-जातिके प्राण हैं, संत ही संसाररूपी पादपके अमृतफल हैं, संत ही सभ्य समाजको प्रकाश देनेवाले प्रदीप हैं। वे ही पाप-तापसे पीड़ित मानव-जातिको ऊपर उठानेवाली शक्ति हैं। अतः सभी जातियों और सभी संतोंको हम नतमस्तक होकर कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं।

—स्वामी शुद्धानन्द

निवेदन

संत विश्वकल्याणके परम आधार हैं, उनकी प्रत्येक चेष्टा स्वाभाविक ही विश्वके कल्याणके लिये होती है। उनकी वाणीसे अमर ज्ञानामृत झरता है, उनके नेत्रोंसे प्रेमकी शीतल सुखद ज्योतिधारा बहती रहती है, उनके मस्तिष्कसे अखिल जगत्का कल्याण प्रसूत होता है, उनके हृदयसे आनन्दका प्रवाह बहता है। जो कोई भी उनके सम्पर्कमें आ जाता है, वही पाप-तापसे मुक्त होकर महात्मा बन जाता है। वे जिस स्थानमें रहते हैं, वही स्थान पुण्यतीर्थ बन जाता है। वे जो उपदेश करते हैं, वही पावन सत्कर्मशास्त्र बन जाता है, वे जिन कर्मोंको करते हैं, वे ही कर्म आदर्श समझे जाते हैं। संत सभी देशों, सभी धर्मों और सम्प्रदायोंमें होते हैं। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि सभी मतोंमें सच्चे संत हुए हैं। किसी देश या काल-विशेषसे संतोंका संकोच नहीं किया जा सकता। सभी देशोंमें सभी समय कोई-न-कोई संत रहते हैं और वे प्रत्यक्ष या परोक्षरूपमें जगत्का कल्याण करते रहते है। ऐसे ही संतोंके ढाई हजार 'अनमोल बोल' इसमें संगृहीत हैं। ये बोल ऐसे हैं जो दुःख-सागरमें डूबे हुए पापी-से-पापी प्राणीको भी तारनेमें समर्थ हैं।

इसमें प्रायः सभी देशों और जातियोंके संतोंकी वाणीका संग्रह है। अधिकांश संग्रह हमारे सम्मान्य भाई श्री 'माधवजी' का किया हुआ है; कुछ वचन दुबारा आ गये थे। अष्टम संस्करणमें उनके स्थानपर दूसरे वचन बैठा दिये गये हैं, आशा है पाठक-पाठिकागण इससे विशेष लाभ उठायेंगे।

गीताप्रेस, गोरखपुर
श्रीजन्माष्टमी २००९

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

संत-वाणी

(प्रेम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं सदाचारपर संतोंके वचनोंका संग्रह)

१—सच्चिदानन्द प्रभुके अनेक रूप हैं, जिस साधकने हरिके जिस रूपको देखा है, वह उनके उसी रूपको जानता है। यह सारे रूप उस एक ही बहुरूपिया हरिके हैं।

२—आँखमिचौनीके खेलमें 'गोल' छू लेनेपर फिर चोर नही होना पड़ता, उसी प्रकार ईश्वरको छूनेपर फिर सांसारिक बन्धन नहीं बाँधते।

३—लोहा जब एक बार पारसको छूकर सोना हो जाता है, तब चाहे उसे मिट्टीके भीतर रखो या कूड़ेमें फेंक दो। वह जहाँ रहेगा सोना ही रहेगा, लोहा न होगा। इसी प्रकार जो ईश्वरको पा चुका है, वह बस्तीमें रहे चाहे जंगलमें, उसको फिर दाग नहीं लग सकता।

४—ईश्वरको प्राप्त कर लेनेपर मनुष्यका आकार वही रहता है, परंतु उससे अशुभ कर्म नहीं होते।

५—ईश्वरका दर्शन कर लेनेपर मनुष्य फिर जगत्के जंजालमें नहीं पड़ता, ईश्वरको छोड़कर एक क्षण भी उसे शान्ति नहीं मिलती, एक क्षण भी ईश्वरको छोड़नेमें मृत्यु-कष्ट होता है।

६—ईश्वरके पास जानेके अनेकों उपाय हैं। सभी धर्म इसीके उपाय दिखला रहे हैं।

७—हे मनुष्यो ! तुम संसारकी वस्तुओंमें भूले हुए हो, यह सब छोड़कर जब तुम ईश्वरके लिये रोओगे, तब प्रभु उसी वक्त आकर तुम्हें गोदमें उठा लेंगे।

८—ईश्वरको देखना चाहते हो तो मायाको हटा दो।

"जहाज बन्दरगाह पर सुरक्षित होते हैं। पर वे इसलिए नहीं बनाए जाते हैं।"

९—इस सत्यको धारण करो कि भगवान् न पराये है, न तुमसे दूर हैं और न दुर्लभ ही हैं।

१०—जिसने तुम्हें यहाँ भेजा है, उसने तुम्हारे भोजनका प्रबन्ध पहलेसे कर रखा है।

११—जिसकी साधना करनेकी तीव्र उत्कण्ठा होती है, भगवान् उसके पास सद्‌गुरु भेज देते हैं। गुरुके लिये साधकोंको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

१२—मनुष्य देखनेमें कोई रूपवान्, कोई कुरूप, कोई साधु, कोई असाधु देख पड़ते हैं, परंतु उन सबके भीतर एक ही ईश्वर विराजते हैं।

१३—दुष्ट मनुष्यमें भी ईश्वरका निवास है, परंतु उसका संग करना उचित नहीं।

१४—साधनावस्थामें ऐसे मनुष्योंसे, जो उपासनासे ठट्ठा करते हैं, धर्म तथा धार्मिकोंकी निन्दा करते हैं, एकदम दूर रहना चाहिये।

१५—मायाको पहचान लेनेपर वह तुरंत भाग जाती है।

१६—दूधमें मक्खन रहता है, पर मथनेसे ही निकलता है। वैसे ही जो ईश्वरको जानना चाहे वह उसका साधन-भजन करे।

१७—एक ज्ञान ज्ञान, बहुत ज्ञान अज्ञान !

१८—ईश्वर साकार-निराकार और क्या-क्या है, यह हमलोग नहीं जानते। तुम्हें जो अच्छा लगे उसीमें विश्वास कर उसे पुकारो, तुम उसीके द्वारा उसे पाओगे। मिसरीकी डली चाहे जिस ओरसे, चाहे जिस ढंगसे तोड़कर खाओ मीठी लगेगी ही।

१९—मन सफेद कपड़ा है, इसे जिस रंगमें डुबोओगे वही रंग चढ़ जायगा।

२०—व्याकुल प्राणसे जो ईश्वरको पुकारते हैं, उनको गुरु करनेकी आवश्यकता नही है।

२१—सच्चा शिष्य गुरुके किसी बाहरी कामपर लक्ष्य नहीं करता। वह तो केवल गुरुकी आज्ञाको ही सिर नवाकर पालन करता है।

२२—पतंग एक बार रोशनी देखनेपर फिर अन्धकारमें नहीं जाता, चींटियाँ गुड़में प्राण दे देती हैं पर वहाँसे लौटती नहीं। इसी प्रकार भक्त जब एक बार प्रभुदर्शनका रसास्वादन कर लेते हैं, तो उसके लिये प्राण दे देते हैं, पर लौटते नहीं।

२३—संसारमें रहकर जो साधन कर सकते हैं, यथार्थमें वे ही वीर पुरुष हैं।

२४—संसारमें रहकर सब काम करो, पर खयाल रखो कहीं ईश्वरके लक्ष्यसे मन हट न जाय।

२५—कुलटा स्त्रियाँ माता-पिता तथा परिवारवालोंके साथ रहकर संसारके सभी कार्य करती हैं, परंतु उनका मन सदा अपने यारमें लगा रहता है। हे संसारी जीव! तुम भी मनको ईश्वरमें लगाकर माता-पिता तथा परिवारका काम करते रहो।

२६—ईश्वरके दर्शनकी इच्छा रखनेवालोंको नाममें विश्वास तथा सत्यासत्यका विचार करते रहना चाहिये।

२७—मनको स्वतन्त्र छोड़ देनेपर वह नाना प्रकारके संकल्प, विकल्प करने लगता है, परन्तु विचाररूपी अंकुशसे मारनेपर वह स्थिर हो जाता है।

२८—हरिनाम सुनते ही जिसकी आँखोंसे सच्चे प्रेमाश्रु बह निकलते हैं वही नाम-प्रेमी है।

२९—डुबकी लगाते ही जाओ, रत्न अवश्य मिलेगा। धीरज रखकर साधना करते रहो, यथासमय अवश्य ही तुम्हारे ऊपर ईश्वरकी कृपा होगी।

३०—साधुसंगको धर्मका सर्वप्रधान अङ्ग समझना चाहिये।

३१—मरनेके समय मनमें जैसा भाव होता है, दूसरे जन्ममें वैसी ही गति होती है, इसलिये जीवनभर भगवान्‌के स्मरणकी आवश्यकता है, जिससे मृत्युके समय केवल भगवान् ही याद आवें।

३२—बालककी नाईं रोना ही साधकका एकमात्र बल है।

३३—फलके बड़े होनेपर फूल अपने-आप गिर जाता है; इसी प्रकार देवत्वके बढ़नेसे नरत्व नहीं रहता।

३४—मनुष्य तभीतक धर्मके विषयमें तर्क-वितर्क करता है, जबतक उसे धर्मका स्वाद नहीं मिलता। स्वाद मिलनेपर वह चुपचाप साधन करने लगता है।

३५—साधक जब गद्‌गद हो पुकारता है, तब प्रभु विलम्ब नहीं कर सकते।

३६—ईश्वरके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं, अनन्त भाव हैं। उसे किसी नामसे किसी रूपसे और किसी भावसे कोई पुकारे वह सबकी पुकार सुन सकता है; वह सबकी मनःकामना पूरी कर सकता है।

३७—परमात्मा एक है, उसको अनेक लोग अनेक भावोंसे भजते हैं।

३८—जिस हृदयमें ईश्वरका प्रेम प्रवेश कर गया उस हृदयसे काम, क्रोध, अहंकार आदि सब भाग जाते हैं। वे फिर नहीं ठहर सकते।

३९—सब धर्मोंका आदर करो, पर अपने मनको अपनी ही धर्म-निष्ठासे तृप्त करो।

४०—साधन-भजनके द्वारा मनुष्य ईश्वरको पाकर फिर अपने धामको लौट जाता है।

४१—ईश्वर हमलोगोंके निजके हैं, वह हमलोगोंकी अपनी माता है। उनके पास हमलोगोंका जोर करना, मचलना चल सकता है।

४२—ईश्वर अपने आनेके पूर्व साधकके हृदयमें प्रेम, भक्ति, विश्वास तथा व्याकुलता पहले ही भर देते हैं।

४३—हृदय स्थिर होनेसे ही ईश्वरका दर्शन होता है। हृदय-सरोवरमें जबतक कामनाकी हवा बहती रहेगी, तबतक ईश्वरका दर्शन असम्भव है।

४४—सच्चे विश्वासी भक्तका विश्वास तथा भक्ति किसी प्रकार नष्ट नहीं होती। भगवच्चर्चा होते ही वह उन्मत्त हो उठता है।

४५—विश्वासी भक्त ईश्वरके सिवा सांसारिक धन-मान कुछ भी लेना नहीं चाहता।

४६—संसारमें ईश्वर ही केवल सत्य है और सभी असत्य है।

४७—दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर जो व्यक्ति ईश्वरकी प्राप्तिके लिये यत्न नहीं करता उसका जन्म वृथा ही है।

४८—ईश्वरमें भक्ति और अटूट निष्ठा करके संसारका सब काम करनेमें जीव संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता।

४९—जो ईश्वरका चरण-कमल पकड़ लेता है, वह संसारसे नहीं डरता।

५०—ईश्वरके चरण-कमल पकड़कर संसारका काम करो, बन्धनका डर नहीं रहेगा।

५१—पहले ईश्वर-प्राप्तिका यत्न करो, पीछे जो इच्छा हो कर सकते हो।

५२—जो ईश्वरपर निर्भर करते हैं, उन्हें ईश्वर जैसे चलाते हैं, वैसे ही चलते है, उनकी अपनी कोई चेष्टा नहीं होती।

५३—गुरु लाखों मिलते हैं, पर चेला एक भी नही मिलता। उपदेश करनेवाले अनेकों मिलते हैं, पर उपदेश पालन करनेवाले विरले ही।

५४—ईश्वरका प्रकाश सबके हृदयमें समान होनेपर भी वह साधुओंके हृदयमें अधिक प्रकाशित होता है।

५५—समाधि अवस्थामें मनको उतना ही आनन्द मिलता है, जितना जीती मछलीको तालाबमें छोड़ देनेसे।

५६—ज्ञान पुरुष है, भक्ति स्त्री है। पुरुष मायानारीसे तभी छूट सकता है जब वह परम वैरागी हो। किंतु भक्तिसे तो माया सहज ही छूटी हुई है।

५७—काजलकी कोठरीमें कितना भी बचकर रहो, कुछ-न-कुछ कसौंस लगेगी ही। इसी प्रकार युवक-युवती परस्पर बहुत सावधानीके साथ रहें तो भी कुछ-न-कुछ काम जागेगा ही।

५८—जिस प्रकार दर्पण स्वच्छ होनेपर उसमें मुँह दिखलायी देने लगता है, उसी प्रकार हृदयके स्वच्छ होते ही उसमें भगवान्‌का रूप दिखायी देने लगता है।

५९—ईश्वरको अपना समझकर किसी एक भावसे उसकी सेवा-पूजा करनेका नाम भक्तियोग है।

६०—कलियुगमें और योगोंकी अपेक्षा भक्तियोगसे सहज ही ईश्वरकी प्राप्ति होती है।

६१—ध्यान करना चाहते हो तो तीन जगह कर सकते हो—मनमें, घरके कोनेमें और वनमें।

६२—केवल ईश्वर-ज्ञान ही ज्ञान है और सब अज्ञान है।

६३—भगवान् भक्तिके वश हैं, वे अपनी ओर ममता और प्रेम चाहते हैं।

६४—जिसके मनमें ईश्वरका प्रेम उत्पन्न हो गया, उसे संसारका कोई सुख अच्छा नहीं लगता।

६५—जो प्रभुके प्रेममें बावला हो गया है, जिसने अपना सब कुछ

उनके चरणोंमें अर्पण कर दिया है, उसका सारा भार प्रभु अपने ऊपर ले लेते हैं।

६६—संसारमें आकर भगवान्‌के विषयमें तर्क, युक्ति, विचार आदि करनेसे कुछ फल नहीं। जो प्रभुको प्राप्तकर आनन्दानुभव कर सकता है, वही धन्य है।

६७—सभी मनुष्य जन्म-जन्मान्तरमें कभी-न-कभी भगवान्‌को देखेंगे ही।

६८—सूईके छेदमें तागा पहनाना चाहते हो तो उसे पतला करो। मनको ईश्वरमें पिरोना चाहते हो तो दीन-हीन अकिंचन बनो।

६९—भक्तका हृदय भगवान्‌की बैठक है।

७०—संसारमें जो जितना सह सकता है, वह उतना ही महात्मा है।

७१—जिसका मनरूप चुंबकयन्त्र भगवान्‌के चरण-कमलोंकी ओर रहता है, उसके डूब जाने या राह भूलनेका डर नहीं।

७२—साधनकी राहमें कई बार गिरना-उठना होता है, परंतु प्रयत्न करनेपर फिर साधन ठीक हो जाता है।

७३—सर्वदा सत्य बोलना चाहिये। कलिकालमें सत्यका आश्रय लेनेके बाद और किसी साधनका काम नहीं। सत्य ही कलिकालकी तपस्या है।

७४—संसारके यश और निन्दाकी कोई परवा न करके ईश्वरके पथमें चलना चाहिये।

७५—एक महात्माकी कृपासे कितने ही जीवोंका उद्धार हो जाता है।

७६—साधकके भीतर यदि कुछ भी आसक्ति है तो समस्त साधना व्यर्थ चली जायगी।

७७—जो ईश्वरमें नित्य डूबा रहता है, उसकी प्रेमाभक्ति कभी नहीं सूखती। परंतु दो-एक दिनकी भक्तिसे ही जो संतुष्ट तथा निश्चिन्त रहता है, सीकेपर रखे हुए रिसते घड़ेके जलके समान वह भक्ति दो दिन बाद ही सूख जाती है।

७८—जगत्‌में ईश्वर व्याप्त हैं, पर उनके पानेके लिये साधना करनी पड़ती है।

७९—जिस मनसे साधना करनी है, वही यदि विषयासक्त हो जाय तो फिर साधना असम्भव ही समझो।

८०—जलमें नाव रहे तो कोई हानि नहीं, पर नावमें जल नहीं रहना चाहिये। साधक संसारमें रहे तो कोई हानि नहीं, परंतु साधकके भीतर संसार नहीं होना चाहिये।

८१—मन और मुखको एक करना ही साधना है।

८२—ईश्वर महान् होनेपर भी अपने भक्तका तुच्छ उपहार प्रेमपूर्वक प्रसन्न होकर ग्रहण करते हैं।

८३—जिस आदमीकी ईश्वरके नाममें रुचि है, भगवान्‌में जिसकी लगन लग गयी है, उसका संसार-विकार अवश्य दूर होगा। उसपर भगवान्‌की कृपा अवश्य-अवश्य होगी।

८४—अपने सब कर्मफल ईश्वरको अर्पण कर दो। अपने लिये किसी फलकी कामना न करो।

८५—वासना लेशमात्र भी रही तो भगवान् नहीं मिल सकते।

८६—अहङ्कारकी आड़ होनेसे ईश्वर नहीं देख पड़ते। अहंबुद्धिके जाते ही सब जंजाल दूर हो जाते हैं।

८७—मैं प्रभुका दास हूँ, मैं उसकी संतान हूँ, मैं उसका अंश हूँ—ये सतत अहङ्कार अच्छे हैं। ऐसे अभिमानसे भगवान् मिलते हैं।

८८—जिसका (साधन) यहाँ ठीक है उसका वहाँ भी ठीक है

और जिसका यहाँ नहीं है उसका वहाँ भी नहीं है।

८९—जिसका जैसा भाव होता है, उसको वैसा ही फल मिलता है।

९०—सफेद कपड़ेमें थोड़ी भी स्याहीका दाग पड़नेसे वह दाग बहुत स्पष्ट दीखता है, उसी प्रकार पवित्र मनुष्योंका थोड़ा दोष भी अधिक दिखलायी देता है।

९१—जिस घरमें नित्य हरि-कीर्तन होता है, वहाँ कलियुग प्रवेश नहीं कर सकता।

९२—जब भगवान्‌के आश्रित हो रहे हो तो यह न हुआ, वह न हुआ आदि चिन्ताओंमें मत पड़ो।

९३—विश्वासी भक्त आजीवन भगवान्‌का दर्शन न मिलकर भी भगवान्‌को नहीं छोड़ता।

९४—संसार कच्चा कुआँ है। इसके किनारेपर खूब सावधानीसे खड़े होना चाहिये। तनिक असावधान होते ही कुएँमें गिर पड़ोगे, तब निकलना कठिन हो जायेगा।

९५—संसारी! तुम संसारका सब काम करो; किन्तु मन हर घड़ी संसारसे विमुख रखो।

९६—कामिनी और कञ्चन ही माया है। इनके आकर्षणमें पड़नेपर जीवकी सब स्वाधीनता चली जाती है। इनके मोहके कारण ही जीव भव-बन्धनमें पड़ जाता है।

९७—संसारमें रहनेसे सुख-दुःख रहेगा ही। ईश्वरकी बात अलग है और उसके चरण-कमलमें मन लगाना और है। दुःखके हाथसे छुटकारा पानेका और कोई उपाय है नहीं।

९८—साधु-संग करनेसे जीवका मायारूपी नशा उतर जाता है।

९९—जिससे दस आदमी अच्छी प्रेरणा पाते हो तथा शुभ कार्यमें

लगते हों तो समझना चाहिये कि उसके भीतर भगवान्‌की विभूति अधिक है।

१००—जो सोचता है 'मैं जीव हूँ' वह जीव है; और जो सोचता है 'मैं शिव हूँ' वह शिव है।

१०१—एक ईश्वरको पकड़े रहनेसे इहलौकिक, पारलौकिक अनेकों लाभ होते हैं, पर ईश्वरको त्यागते ही जीवका सब कुछ व्यर्थ हो जाता है।

१०२—व्याकुल होकर उसके लिये रोनेसे ही 'वह' मिलता है। लोग लड़के-बच्चेके लिये, रुपये-पैसेके लिये कितना रोते है, किंतु भगवान्‌के लिये क्या कोई एक बूँद भी आँसू टपकाता है; उसके लिये रोओ, आँसू बहाओ तब उसको पाओगे।

१०३—ईश्वरके पानेका उपाय केवल विश्वास है। जिसे विश्वास हो गया, उसका काम बन गया।

१०४—मुँहमें राम बगलमें छुरी मत रखो।

१०५—ईश्वरके नाममें ऐसा विश्वास चाहिये कि मैंने उसका नाम लिया है, इससे अब मेरे पाप कहाँ? मेरे अब बन्धन कहाँ?

१०६—एक ईश्वर ही सबका गुरु है।

१०७—जबतक अज्ञान है तभीतक चौरासीका चक्कर है।

१०८—दूसरेको सिखानेके लिये व्याकुल मत हो। जिससे तुम्हें ज्ञान-भक्ति प्राप्त हो, ईश्वरके चरण-कमलमें मन लगे वही उपाय करो।

१०९—परनिन्दा और परचर्चा कभी न करो।

११०—विश्वास तारता है और अहंकार डुबाता है।

१११—पहले संसार करके पीछे भगवान्‌की प्राप्तिकी इच्छा करते हो। ऐसा न करके पहले भगवान्‌को लेकर पीछे संसार करनेकी इच्छा क्यों नहीं करते? इससे बहुत सुख पाओगे।

११२—सात्त्विक साधकमें बाहरी दिखावेका भाव तनिक भी नहीं रहता।

११३—जो मूर्ख वासनाके रहते गेरुआ वस्त्र धारण करता है उसका यह लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते है।

११४—वीर साधक इस संसारका बोझ सिरपर उठाकर भी भगवान्‌की ओर निहारते रह सकते हैं।

११५—विषयासक्ति जितनी ही घटेगी ईश्वरके प्रति प्रेम भी उतना ही बढ़ता जायगा।

११६—देहको चाहे जितना सुख-दुःख हो, भक्त उसका ख्याल नहीं करते। उनकी वृत्ति तो प्रभुके चरणोंमें अनन्यभावसे लगी रहती है।

११७—तत्त्वज्ञान होनेसे मनुष्यका पूर्व स्वभाव बदल जाता है।

११८—स्वामीके जीते रहते ही जो स्त्री ब्रह्मचर्य धारण करती है, वह नारी नहीं है, वह तो साक्षात् भगवती है।

११९—ईश्वरका प्रेम पाकर मनुष्य सारी बाह्य वस्तुओंको भूल जाता है। जगत्‌का खयाल उसको नहीं रहता, यहाँतक कि सबसे प्रिय अपने शरीरको भी भूल जाता है। जब ऐसी अवस्था आवे तब समझना चाहिये कि प्रेम प्राप्त हुआ।

१२०—प्रपञ्चमें मनुष्यका आत्मपतन हो ही जाता है।

१२१—अहंकार करना व्यर्थ है। जीवन, यौवन कुछ भी यहाँ नहीं रहेगा। सब दो घड़ीका सपना है।

१२२—माँसे रोकर भक्ति माँगोगे तो वह अवश्य देगी। इसमें जरा भी शक नहीं है।

१२३—ज्ञानोन्माद होनेसे कर्तव्य फिर कर्तव्य नहीं रह जाता। उस अवस्थामें भगवान् उसका भार ले लेते हैं।

१२४—ईश्वर हैं—इस बातका जिसे ठीक बोध हो गया वह फिर

सांसारिक मायामें नहीं पड़ता।

१२५—पुस्तकें हजार पढ़ो, मुखसे हजार श्लोक कहो, पर व्याकुल होकर उसमें डुबकी नहीं लगानेसे उसे पा न सकोगे।

१२६—पहले ईश्वरको प्राप्त करनेकी चेष्टा करो। गुरुवाक्यमें विश्वास करके कुछ कर्म करो। गुरु न हों तो भगवान्‌के पास व्याकुल प्राणसे प्रार्थना करो। वह कैसे हैं यह उन्हींकी कृपासे मालूम हो जायगा।

१२७—सांसारिक पुरुष धन, मान, विषयादि असार वस्तुओंका संग्रह कर सुखकी आशा करते हैं। परंतु वह सब किसी प्रकार भी सुख नहीं दे सकते।

१२८—भगवान् जीवको पापमें लिपटा रहने नहीं देता। वह दयाकर झट उसका उद्धार कर देता है।

१२९—भगवान् सबको देखते है; किंतु जबतक वे किसीको अपनी इच्छासे दिखायी नहीं देते तबतक कोई उनको देख या पहचान नहीं सकता।

१३०—पूर्व-दिशामें जितना ही चलोगे पश्चिम-दिशा उतनी ही दूर होती जायगी। इसी प्रकार धर्मपथपर जितना ही अग्रसर होओगे, संसार उतनी ही दूर पीछे छूटता जायगा।

१३१—कलियुगमें प्रेमपूर्ण ईश्वरभक्ति ही सर्वश्रेष्ठ तथा सार वस्तु है।

१३२—प्रेमसे हरिनाम गाओ। प्रेमसे कीर्तन-रंगमें मस्त होकर नाचो। इससे तरोगे, तरोगे। संसारसे तर जाओगे।

१३३—गुरु ही माता, गुरु ही पिता और गुरु ही हमारे कुलदेव हैं। महान् संकट पड़नेपर आगे और पीछे वही हमारी रक्षा करनेवाले हैं। यह काया, वाक् और मन उन्हींके चरणोंमें अर्पण हैं।

१३४—कीर्तनसे स्वधर्मकी वृद्धि होती है, कीर्तनसे स्वधर्मकी

प्राप्ति होती है, कीर्तनके सामने मुक्ति भी लज्जित होकर भाग जाती है।

१३५—कलियुगमें नाम-स्मरण और हरि-कीर्तनसे जीवमात्रका उद्धार होता है।

१३६—सब दानोंमें श्रेष्ठ अन्नदान है और उससे भी श्रेष्ठ ज्ञानदान है।

१३७—बैठकर राम-नामके ध्यानका अनुष्ठान करें, उसीमें मनको दृढ़ कर एकनिष्ठ भावसे मग्न हों। इससे बढ़कर कोई साधन है नहीं।

१३८—परद्रव्य और परदाराको छूत मानें। इससे बढ़कर निर्मल कोई तप है नहीं।

१३९—इस कलियुगमें राम-नामके सिवा कोई आधार है नहीं।

१४०—मनमें भगवान्का रूप ऐसे आकर बैठ जाय कि जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति कोई भी अवस्था याद न आवे।

१४१—इन कानोंसे तेरा नाम और गुण सुनूँगा। इन पैरोंसे तीर्थोंके ही रास्ते चलूँगा। यह नश्वर देह किस काम आवेगी ?

१४२—भगवन्! मुझे ऐसी प्रेमभक्ति दे कि मुँहसे तेरा ही नाम अखण्डरूपसे लेता रहूँ।

१४३—अपनी स्तुति और दूसरोंकी निन्दा, हे गोविन्द! मैं कभी न करूँ। सब प्राणियोंमें हे राम! मैं तुम्हें ही देखूँ और तेरे प्रसादसे ही सन्तुष्ट रहूँ।

१४४—भगवान्का आवाहन किया, पर इस आवाहनमें विसर्जनका कुछ काम नहीं। जब चित्त उसीमें लीन होता है तो गाते भी नहीं बनता।

१४५—जो सब देवोंका पिता है, उसके चरणोंकी शरण लेते ही सारी माया छूट जाती है, सब द्वन्द्व नष्ट हो जाते हैं।

१४६—वह ज्ञानदीप जलाया जिसमें चिन्ताका कोई काजल नही

और आनन्दभरित प्रेमसे देवाधिदेव श्रीहरिकी आरती की। सब भेद और विकार उड़ गये।

१४७—भीतर-बाहर, चर-अचरमें सर्वत्र श्रीहरि ही विराज रहे हैं। उन्होंने मेरा मन हर लिया, मेरा-तेरा भाव निकाल दिया।

१४८—योग, तप, कर्म और ज्ञान—ये सब भगवान्‌के लिये है। भगवान्‌के बिना इनका कुछ भी मूल्य नहीं है।

१४९—भगवान्‌के चरणोंमें संसारको समर्पित करके भक्त निश्चिन्त रहते हैं और तब वह सारा प्रपञ्च भगवान्‌का ही हो जाता है।

१५०—गङ्गा सागरसे मिलने जाती है; परंतु जाती हुई जगत्‌का पाप-ताप निवारण करती है। उसी प्रकार आत्मस्वरूपको प्राप्त जो संत हैं वे अपने सहज कर्मोंसे संसारमें बँधे बन्दियोंको छुड़ाते हैं।

१५१—संतोंकी जीवनचर्या संसारके लिये आइनेके समान होती है।

१५२—सब भूतोंमें समदृष्टिसे केवल एक हरिको ही देखना चाहिये।

१५३—जो निर्द्वन्द्व होकर निन्दा सह लेता है उसकी माता धन्य है।

१५४—भगवान् ही सब साधनोंके साध्य हैं और सब चराचर प्राणियोंमें भगवान्‌को देखकर सर्वत्र अखण्ड-भगवद्‌बुद्धिको स्थिर रखना और सबके कल्याणका उद्योग करना अर्थात् लोकसंग्रह और लोकोपकारमें तन-मन-प्राण अर्पण करना ही सच्ची हरिभक्ति है।

१५५—समदर्शी, निरपेक्ष और निरहंकार होकर सब भूतोंमें भगवान् भरे हैं ऐसा जानकर जो लोकोपकार होता है वही उत्तम हरि-भजन है।

१५६—सब प्राणियोंमें भगवान्‌को विद्यमान जानकर उनके हितार्थ अहंभावरहित होकर कायेन-मनसा-वाचा उद्योग करना ही भगवान्‌की

सेवा है।

१५७—जो स्थूल है वही सूक्ष्म है, दृश्य है वही अदृश्य है, व्यक्त है वही अव्यक्त है, सगुण है वही निर्गुण है, अंदर है वही बाहर है।

१५८—भगवान् सर्वत्र हैं, पर जो भक्त नहीं हैं, उन्हें नहीं दिखायी देते। जलमें, थलमें, पत्थरमें कहाँ नहीं हैं, जिधर देखो उधर ही भगवान् हैं, पर अभक्तोंको केवल शून्य दिखायी देता है।

१५९—एकत्वके साथ सृष्टिको देखनेसे दृष्टिमें भगवान् ही भर जाते है।

१६०—धन्य है सद्गुरु जिन्होंने गोविन्द दिखा दिया।

१६१—संतोंके घर-द्वार, अंदर-बाहर, कर्ममें, वाणीमें और मनमें भगवद्भक्तिके सिवा और कुछ भी नहीं मिल सकता।

१६२—संतोंके कर्म, ज्ञान और भक्ति हरिमय होते है। शान्ति, क्षमा, दया आदि दैवी गुण संतोंके आँगनमें लोटा करते हैं।

१६३—संत-सेवा मुक्तिका द्वार है।

१६४—भगवान् स्वयं संतोंके घरमें घुसकर अपना दखल जमाते हैं।

१६५—सद्गुरुके सामने वेद मौन हो गये, शास्त्र दिवाने हो गये और वाक् भी बन्द हो गयी। सद्गुरुकी कृपादृष्टि जिसपर पड़ती है, उसकी दृष्टिमें सारी सृष्टि श्रीहरिमय हो जाती है।

१६६—धन्य हैं श्रीगुरुदेव जिन्होंने अखण्ड नाम-स्मरण करा दिया।

१६७—सद्गुरुचरणोंका लाभ जिसे हो गया, वह प्रपञ्चसे मुक्त हो गया।

१६८—सारा प्रपञ्च छोड़कर भगवच्चरणोंका ही सदा ध्यान करना चाहिये।

१६९—सद्गुरुका सहारा जिसे मिल गया, कलिकाल उसका कुछ

बिगाड़ नहीं सकता।

१७०—भक्ति, वैराग्य और ज्ञानका स्वयं आचरण करके दूसरोंको इसी आचरणमें लगानेका नाम ही लोकसंग्रह है।

१७१—सिद्धियोंके मनोरथ केवल मनोरंजन है, उनमें परमार्थ नहीं, प्रायः बने हुए लोग ही सिद्धियोंका बाजार लगाते हैं और गरीबोंको ठगते हैं।

१७२—कलिकाल बड़ा भीषण है, इसमें केवल प्रभुके नामका ही सहारा है।

१७३—इन्द्र और चींटी दोनों देहतः समान ही हैं। देहमात्र ही नश्वर है। सबके शरीर नाशवान् हैं। शरीरका पर्दा हटाकर देखो तो सर्वत्र भगवान् ही हैं। भगवान्‌के सिवा और क्या है ? अपनी दृष्टि चिन्मय हो तो सर्वत्र श्रीहरि ही हैं।

१७४—श्रीकृष्ण तो सर्वत्र रम रहे है। वह सम्पूर्ण विश्वके अंदर और बाहर व्याप्त हैं। जहाँ हो वहीं देखो, वहीं तुम्हें वह दर्शन देंगे।

१७५—दृश्य, दर्शन, द्रष्टा—तीनोंको पारकर देखो तो बस श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं।

१७६—भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं। उनका ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य सभी अनन्त है, अपार है। जिसे उसका एक कण भी मिल गया वह धन्य-धन्य हो गया।

१७७—सभी वैभववाले, बड़ी आयुवाले, बड़ी महिमावाले, आखिर चले गये मृत्युपथमें ही। सब चले गये; परंतु एक ही रहे जो स्वरूपाकार हुए—आत्मज्ञानी हुए।

१७८—जिस वाणीमें हरिकथा-प्रेम है, वही वाणी सरस है।

१७९—प्रेमके बिना श्रुति, स्मृति, ज्ञान, ध्यान, पूजन, श्रवण, कीर्तन सब व्यर्थ है।

१८०—संतका जीवन और मरण हरिमय होता है, हरिके सिवा

और है ही क्या कि हो। फिर मृत्युके समय भी हरिस्मरणके सिवा और क्या हो सकता है ?

१८१—जो चीनीकी मिठास है, वही चीनी है। वैसे ही चिदात्मा जो है, वही यह लोक है, संसारमें हरिसे भिन्न और कुछ भी नहीं है।

१८२—जो कुछ सुन्दर दिखायी देता है वह श्रीकृष्णके ही अंशसे है, उससे आँखें ऐसी दीवानी हो गयीं कि भगवान्‌के मयूरपिच्छमें जा लगीं।

१८३—जिसने एक बार श्रीकृष्णको देखा, उसकी आँखें फिर उससे नहीं फिरतीं। अधिकाधिक उसी रूपको आलिङ्गन करती हैं और उसीमें लीन हो जाती हैं।

१८४—कुल-कर्मको मिटाना हो, अपने साथ सबको मिट्टीमें मिलाना हो, जीवतकका अन्त करना हो तो कोई कृष्णको वरण करे।

१८५—उठो ! श्रीकृष्णके चरणोंका वन्दन करो। लज्जा और अभिमान छोड़ दो, मनको निर्विकल्प कर लो और वृत्तिको सावधान करके हरिचरणोंका वन्दन करो।

१८६—श्रीचरणोंका आलिङ्गन होते ही अहं-सोऽहंकी गाँठें खुल गयीं। सारा संसार आनन्दमय हो गया। सेव्य-सेवक भावोंका कोई चिह्न नहीं रह गया। देवी और देव एक हो गये।

१८७—सच्चा विरक्त उसीको कहना चाहिये जो मानके स्थानसे दूर रहता है। वह सत्सङ्गमें स्थिर रहता है। अपना कोई नया सम्प्रदाय नहीं चलाता, नया अखाड़ा नहीं खोलता, अपनी गद्दी नहीं कायम करता। जीविकाके लिये दीन होकर किसीकी खुशामद नहीं करता। वह लौकिक नहीं होता, उसे वस्त्रालंकारकी इच्छा नहीं होती, परान्नमें रुचि नहीं होती, स्त्रियोंको देखना उसे अच्छा नहीं लगता।

१८८—अपनी स्त्रीके सिवा अन्य स्त्रीसे कोई सम्बन्ध न रखे। अपने स्त्रीसे भी केवल समुचित ही सम्बन्ध रखे और चित्तको कभी

आसक्त न होने दे।

१८९—प्रमदासङ्गसे बराबर बचना चाहिये। जो निरभिमान होकर निःसङ्ग हो गया हो, वही अखण्ड एकान्त-सेवन कर सकता है।

१९०—स्त्री, धन और प्रतिष्ठा चिरंजीव-पद-प्राप्तिके साधनमें तीन महान् विघ्न हैं।

१९१—सच्चा अनुताप और शुद्ध सात्त्विक वैराग्य यदि न हो तो श्रीकृष्णपद प्राप्त करनेकी आशा करना केवल अज्ञान है।

१९२—सुनो, मेरा पागल प्रेम ऐसा है कि सुन्दर श्याम श्रीराम ही मेरे अद्वितीय ब्रह्म हैं और कुछ मुझे नहीं मालूम। रामके बिना जो ब्रह्मज्ञान है हनुमान्‌जी गरजकर कहते हैं कि उसकी हमें कोई जरूरत नहीं। हमारा ब्रह्म तो राम है।

१९३—जो मोल लेकर गंदी मदिरा पान करता है, वही उसके नशेमें चूर होकर नाचता-गाता है, तब जिसने भगवत्प्रेमकी दिव्य मदिराका सेवन किया हो, वह कैसे चुपचाप बैठ सकता है?

१९४—भगवान्‌के चरणोंमें अपरोक्ष स्थिति हो जाय तो वहाँ क्षणार्धमें होनेवाली प्राप्तिके सामने त्रिभुवन-विभव-सम्पत्ति भी भक्तके लिये तृणके समान है।

१९५—याचना किये बिना यदृच्छासे जो कुछ मिले उसे साधक मङ्गलमय प्रभुका महाप्रसाद समझकर स्वानन्दसे भोग लगावे।

१९६—दारा, सुत, गृह, प्राण सब भगवान्‌को अर्पण कर देना चाहिये। यह पूर्ण भागवत धर्म है। मुख्यतः इसीका नाम भजन है।

१९७—साधु-संतोंसे मैत्री करो, सबसे पुराना परिचय (प्रेम) रखो, सबके श्रेष्ठ सखा बनो, सबके साथ समान रहो।

१९८—भगवान्‌की आचारसहित भक्ति सब योगोंका योगगह्वर, वेदान्तका निजभाण्डार, सकल सिद्धियोंका परम सार है।

१९९—गृहस्थाश्रममें रहकर भी जिसका चित्त प्रभुके रंगमें रँग गया और इस कारण जिसकी गृहासक्ति छूट गयी, उसे गृहस्थाश्रममें भी भगवत्प्राप्ति होती है और निजबोधमें ही सारी सुखसम्पत्ति मिल जाती है।

२००—जीव और परमात्मा दोनों एक है। इस बातको जान लेना ही ज्ञान है। वह ऐक्य लाभकर परमात्मसुख भोगना सम्यक् विज्ञान है।

२०१—मैं ही देव हूँ, मैं ही भक्त हूँ, पूजाकी सामग्री भी मैं ही हूँ, मैं ही अपनी पूजा करता हूँ यह अभेद-उपासनाका एक रूप है।

२०२—सहज अनुकम्पासे प्राणियोंके साथ अन्न, वस्त्र, दान, मान इत्यादिसे प्रिय आचरण करना चाहिये। यही सबका स्वधर्म है।

२०३—पिता स्वयमेव नारायण हैं। माता प्रत्यक्ष लक्ष्मी हैं। ऐसे भावसे जो भजन करता है, वही सुपुत्र है।

२०४—बहते पानीपर चाहे जितनी लकीरें खींचो एक भी लकीर न खिंचेगी, वैसे ही सत्त्वशुद्धिके बिना आत्मज्ञानकी एक भी किरण प्रकट न होगी।

२०५—धन्य है नरदेहका मिलना, धन्य है साधुओंका सत्सङ्ग, धन्य हैं वे भक्त जो भगवद्भक्तिमें रँग गये।

२०६—वैष्णवोंको जो एक जाति मानता है, शालग्रामको जो एक पाषाण समझता है, सद्गुरुको जो एक मनुष्य मानता है, उसने कुछ न समझा।

२०७—जो निज सत्ता छोड़कर पराधीनतामें जा फँसा, उसे स्वप्नमें भी सुखकी वार्ता नहीं मिलती।

२०८—जो धनके लोभमें फँसा हुआ है, उसे कल्पान्तमें भी मुक्ति नहीं मिल सकती। जो सर्वदा स्त्री-कामी है, उसे परमार्थ या आत्मबोध नहीं मिल सकता।

२०९—जब सूर्यनारायण प्राची दिशामें आते है तब तारे अस्त हो

जाते हैं। वैसे ही भक्तिके प्रबोधकालमें कामादिकोंकी होली हो जाती है।

२१०—सत्यके समान कोई तप नहीं है, सत्यके समान कोई जप नहीं है। सत्यसे सद्रूप प्राप्त होता है। सत्यसे साधक निष्पाप होते हैं।

२११—वर्णोंमें चाहे कोई सबसे श्रेष्ठ क्यों न हो, वह यदि हरिचरणोंसे विमुख है तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जो प्रेमसे भगवद्भजन करता है।

२१२—अन्तःशुद्धिका मुख्य साधन हरिकीर्तन है। नामके समान और कोई साधन है नहीं।

२१३—भक्त जहाँ रहता है, वहाँ सभी दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं। वह जहाँ खड़ा होता है, वहाँ सुखसे महासुख आकर रहता है।

२१४—अभिमानका सर्वथा त्याग ही त्यागका मुख्य लक्षण है।

२१५—सम्पूर्ण अभिमानको त्यागकर प्रभुकी शरणमें जानेसे तुम जन्म-मरणादिके द्वन्द्वोंसे तर जाओगे।

२१६—जो हृदयस्थ हैं उसकी शरण लो।

२१७—प्रभुकी प्राप्तिमें सबसे बड़ा बाधक है अभिमान!

२१८—प्रभुकी शरणमें जानेसे प्रभुका सारा बल प्राप्त हो जाता है, सारा भवभय भाग जाता है। कलिकाल काँपने लगता है।

२१९—समर्पणका सरल उपाय है नामस्मरण। नामस्मरणसे पाप भस्म होते हैं।

२२०—सकाम नामस्मरण करनेसे वह नाम जो इच्छा हो वह पूरी कर देता है। निष्काम नामस्मरण करनेसे वह नाम पापको भस्म कर देता है।

२२१—मनके श्रीकृष्णार्पण होनेसे भक्ति उल्लसित होती है।

२२२—अष्ट महासिद्धियाँ भक्तके चरणोंमें लोटा करतीं हैं, वह उनकी ओर देखतातक नहीं।

२२३—जिस भक्तको प्रभुकी भक्ति प्राप्त हो जाती है, उसके सभी व्यापार भगवदाकार हो जाते हैं।

२२४—भक्त जिस ओर रहता है, वह दिशा श्रीकृष्ण बन जाती है। वह जब भोजन करने बैठता है तब उसके लिये हरि ही षट्रस हो जाते हैं। उसे जल पिलानेके लिये प्रभु ही जल बन जाते है।

२२५—जब भक्त पैदल चलता है तो शान्ति पद-पदपर उसके लिये मृदु पदासन बिछाती और उसकी आरती उतारती है।

२२६—शम-दम आज्ञाकारी सेवक होकर भक्तके द्वारपर हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। ऋद्धि-सिद्धि दासी बनकर घरमें काम करती है। विवेक टहलुआ सदा हाजिर ही रहता है।

२२७—भक्तके प्रत्येक शब्दसे प्रभुकी ही वार्ता उठती है और श्रोता सुनकर तल्लीन हो जाते हैं।

२२८—चारों मुक्ति मिलकर भक्तके घर पानी भरती है और श्रीके साथ श्रीहरि भी उसकी सेवामें रहते हैं—औरोंकी बात ही क्या है?

२२९—भक्त भगवान्‌की आत्मा है, वह भगवान्‌का जीवन है प्राण है।

२३०—प्रभु पूर्णतः भक्तके अंदर हैं और भक्त पूर्णतः भगवान्‌के अंदर है।

२३१—साधनोंमें मुख्य साधन श्रीहरिकी भक्ति ही है। भक्तिमें भी नामकीर्तन विशेष है—नामसे चित्त-शुद्धि होती है—साधकोंको स्वरूप-स्थिति प्राप्त होती है।

२३२—नाम-जैसा और कोई साधन नहीं है। नामसे भव-बन्धन कट जाते हैं।

२३३—मनने सबको बाँध रखा है। मनको बाँधना आसान नहीं। मनने देवताओंको पस्त कर डाला। वह इन्द्रियोंको क्या समझता है।

२३४—मनकी मार बड़ी जबरदस्त है। मनके सामने कौन ठहर सकता है।

२३५—हीरेसे हीरा काटा जाता है। वैसे ही मनसे मन पकड़ा जाता है; पर यह भी तब होता है जब पूर्ण श्रीहरिकृपा होती है।

२३६—मन ही मनका बोधक, मन ही मनका साधक, मन ही मनका बाधक और मन ही मनका घातक है।

२३७—अष्टाङ्गयोग, वेदाध्ययन, सत्यवचन तथा अन्य जो-जो साधन हैं, उन साधनोंसे जो कुछ मिलता है वह सब भगवद्भजनसे प्राप्त होता है।

२३८—निरपेक्ष ही धीर होता है। धैर्य उसके चरण छूता है। जो अधीर है उससे निरपेक्षता नहीं होती।

२३९—कोटि-कोटि जन्मोंके अनुभवके बाद निरपेक्षता आती है। निरपेक्षतासे बढ़कर और कोई साधन है नहीं।

२४०—एकान्त भक्तिका लक्षण यह है कि भगवान् और भक्तका एकान्त होता है। भक्त भगवान्‌में मिल जाता है और भगवान् भक्तमें मिल जाते हैं।

२४१—जिसकी भेदबुद्धि नहीं रही, जिसे समत्वका बोध हो गया, उसीको सर्वत्र भगवत्स्वरूपके अनुभवका परमानन्द प्राप्त होता है।

२४२—जो सदा समभावमें एकाग्र रहते हैं, प्रभुके भजनमें ही तत्पर रहते हैं, वे प्रकृतिके पार पहुँचकर प्रभुके स्वरूपको प्राप्त होते है।

२४३—जिसके हृदयमें विषयसे विरक्ति हो, अभेदभावसे श्रीहरिचरणोंमें भक्ति हो, भजनमें अनन्य प्रीति हो उसके स्वयं श्रीहरि ही आज्ञाकारक हैं।

२४४—जो शिश्नोदरभोगमें ही आसक्त हैं, जो अधर्ममें रत हैं, ऐसे विषयासक्तोंको असाधु समझो। उसका संग मत करो। कर्मणा,

वाचा, मनसा उसका त्याग कर दो।

२४५—जो बड़ा भारी विरक्त बनता है, पर हृदयमें अधर्मकामरत रहता हैं, कामवश द्वेष करता है वह भी निश्चित दुःसङ्ग है।

२४६—जो बड़ा सात्त्विक बनता हैं, पर हृदयमें संतोंके दोष देखता है वह अतिदुष्ट दुःसङ्ग है।

२४७—पर सबसे मुख्य दुःसङ्ग अपना ही काम है, अपनी ही सकामता है। इसे समूल त्याग देनेसे ही दुःसङ्गता त्यागी जाती है। उस काम-कल्पनाको जो नर त्यागता है, उसके लिये संसार सुखरूप होता है।

२४८—उस काम-कल्पनाको त्यागनेका मुख्य साधन केवल सत्सङ्ग है। संतोंके श्रीचरणोंको वन्दन करनेसे काम मारा जाता है।

२४९—सत्सङ्गके बिना जो साधन है, वह साधकोंको बाँधनेवाला कठिन बन्धन है। सत्सङ्गके बिना जो त्याग है, वह केवल पाखण्ड है।

२५०—संतोंकी मामूली बातें महान् उपदेश होती हैं। चित्तमें पड़ी हुई गाँठें उनके शब्दमात्रसे छिद जाती हैं। इसलिये बुद्धिमानोंको चाहिये कि सत्सङ्ग करें। सत्सङ्गसे साधकोंके भवपाश कट जाते हैं।

२५१—हृदयमे प्रभुका नित्य ध्यान हो, मुखसे उनका नामकीर्तन हो, कानोंमें सदा उनकी ही कथा गूँजती हो, प्रेमानन्दसे उनकी ही पूजा हो, नेत्रोंमें हरिकी मूर्ति विराज रही हो, चरणोंसे उनके ही स्थानकी यात्रा हो, रसनामें प्रभुके तीर्थका रस हो, भोजन हो तो वह प्रभुका प्रसाद ही हो। साष्टाङ्ग नमन हो उनके ही प्रति, आलिङ्गन हो आह्लादसे उनके ही भक्तोंका और एक क्या आधा पल भी उनकी सेवाके बिना व्यर्थ न जाय। सब धर्मोंमें यही श्रेष्ठ धर्म है।

२५२—बछड़ेपर गौका जो भाव होता है, उसी भावसे हरि मुझे सँभाले हुए हैं।

२५३—बच्चे अनेक प्रकारकी बोलियोंसे माताको पुकारते हैं, पर

उन बोलियोंका याथातथ्य ज्ञान माताको ही होता हैं।

२५४—संतोंने मर्मकी बात खोलकर बता दी है—हाथमें झाँझ-मंजीरा ले लो और नाचो। समाधिके सुखको इसपर न्यौछावर कर दो। ऐसा ब्रह्मरस इस नाम-संकीर्तनमें भरा हुआ है।

२५५—यह समझ लो कि चारों मुक्तियाँ हरिदासोंकी दासियाँ हैं।

२५६—सदा-सर्वदा नाम-संकीर्तन और हरिकथा-गान होनेसे चित्तमें अखण्ड आनन्द बना रहता है। सम्पूर्ण सुख और शृङ्गार इसीमें मैंने पा लिया और अब आनन्दमें झूम रहा हूँ। अब कहीं कोई कमी ही नहीं रही। इसी देहमें विदेहका आनन्द ले रहा हूँ।

२५७—नामका अखण्ड प्रेम-प्रवाह चला है। राम-कृष्ण, नारायण-नाम अखण्ड जीवन हैं, कहींसे भी खण्डित होनेवाला नहीं।

२५८—वह कुल पवित्र है, वह देश पावन है, जहाँ हरिके दास जन्म लेते हैं।

२५९—बाल-बच्चोंके लिये जमीन-जायदाद रख जानेवाले माँ-बाप क्या कम हैं? दुर्लभ हैं वे ही जो अपनी संततिके लिये भगवद्भक्तिकी सम्पत्ति छोड़ जाते हैं।

२६०—भगवान्‌की यह पहचान है कि जिसके घर आते हैं उसको घोर विपत्तिमें भी सुख-सौभाग्य दिखायी देता है।

२६१—मातासे बच्चेको यह नहीं कहना पड़ता कि तुम मुझे सँभालो। माता तो स्वभावसे ही उसे अपनी छातीसे लगाये रहती है। इसलिये मैं भी सोच-विचार क्यों करूँ? जिसके सिर जो भार है वही सँभाले।

२६२—बिना माँगे ही माँ बच्चेको खिलाती है और बच्चा जितना भी खाय खिलानेसे माता कभी नहीं अघाती। खेल खेलनेमें बच्चा भूला रहे तो भी माता उसे नहीं भुलाती, बरबस पकड़कर उसे छातीसे चिपटा

लेती और स्तनपान कराती है। बच्चेको कोई पीड़ा हो तो माता भाड़की लाईके समान विकल हो उठती है।

२६३—प्रभुका स्नेह माताके स्नेहसे भी बढ़कर है; फिर सोच-विचार क्यों करूँ? जिसके सिर जो भार है वही जाने।

२६४—बच्चेको उठाकर छातीसे लगा लेना ही माताका सबसे बड़ा सुख है। माता उसके हाथमें गुड़िया देती और उसके कौतुक देख अपने जीको ठंढा करती है। उसे आभूषण पहनाती और उसकी शोभा देख परम प्रसन्न होती है। उसे अपनी गोदमें उठा लेती और टकटकी लगाये उसका मुँह निहारती है। माता बच्चेका रोना सह नहीं सकती।

२६५—मातृस्तनमें मुँह लगाते ही माताके दूध भर आता है। माँ-बच्चे दोनों लाड़ लड़ाते हुए एक दूसरेकी इच्छा पूरी करते हैं, पर सारा भार है माताके सिर।

२६६—माताके चित्तमें बालक ही भरा रहता है। उसे अपनी देहकी सुध नहीं रहती। बच्चेको जहाँ उसने उठा लिया वहीं सारी थकावट उसकी दूर हो जाती है।

२६७—बच्चेकी अटपटी बातें माताको अच्छी लगती हैं। चट उसे वह अपनी छातीसे लगा लेती और मुँह चूम लेती है। इसी प्रकार भगवान्‌का जो प्रेमी है, उसका सभी कुछ भगवान्‌को प्यारा लगता है और भगवान् उसकी सब मनःकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

२६८—गाय जंगलमें चरने जाती है, पर चित्त उसका गोठमें बँधे बछड़ेपर ही रहता है। मैया मेरी! मुझे भी ऐसा ही बना ले, अपने चरणोंमें ठाँव देकर रख ले।

२६९—संसार, सच कहिये तो दुःखोंका घर है। जन्म-मरणके महादुःखोंके बीचमें घूमनेवाले इस संसारमें जो भी आया वह दुःखोंका मेहमान हुआ।

२७०—संसार दुःखरूप है, यही तो शास्त्रका सिद्धान्त है और यही जीवमात्रका अन्तिम अनुभव है।

२७१— भगवत्संकल्पके अनुसार ही सृष्टिके सब व्यापार हुआ करते हैं। सामान्य जीव सांसारिक दुःखोंकी चक्कीमें पीस दिये जाते हैं; पर वे ही दुःख भाग्यवान् पुरुषोंके उद्धारका कारण बनते हैं।

२७२—सच्चा प्रेम कभी मरता नहीं, काल भी उसे मार नहीं सकता।

२७३—प्रेम तो निष्काम-निर्विषय ही होता है और उसका एकमात्र भाजन परमात्मा है। ऐसा प्रेम भक्तोंके ही भाग्यमें होता है।

२७४—भक्तोंमें सच्चाई होती है। वैराग्यके अञ्जनसे जब आँखें खुल जाती हैं, तब नश्वर संसारके भेद-भावोंमें बँठे हुए प्रेमको एक जगह बटोरकर वे एक परमात्माको ही अर्पण कर देते हैं। फिर प्रेमामृतकी धारा भगवान्‌के सम्मुख ही प्रवाहित होने लगती है।

२७५—सबके परम सुहृद् प्रभु जो कुछ करते हैं, उसीमें हमारा परम हित है।

२७६—भगवान् भक्तको गृहप्रपञ्च करने ही नहीं देते। सब झंझटोंसे अलग रखते हैं।

२७७—बहुत मारा-मारा फिरा। लुट गया। तड़पते ही दिन बीत रहे हैं। हे दीनानाथ ! संसारमें अपना विरद रखो।

२७८—निःसार है यह संसार। यहाँ सार केवल भगवान् हैं।

२७९—संसार कालग्रस्त, नश्वर और दुःखरूप है। इसका सारा घटाटोप व्यर्थ है। भगवान् मिलें तो ही जन्म सफल है।

२८०—यह सब नाशवान् है, गोपालको स्मरण कर, वही हित है।

२८१—सुख देखिये तो राई-बराबर है और दुःख पर्वतके बराबर।

२८२—यह संसार दुःखसे बँधा है, इसमें सुखका विचार तो कहीं

भी नहीं है।

२८३—देह नाशवान् है। देह मृत्युकी धौंकनी है। संसार केवल दुःखरूप है। सब भाई-बन्धु सुखके साथी हैं।

२८४—संसार मिथ्या है—यह ज्ञात हुआ और आँखें खुलीं। दुःखसे आँखें खुलती हैं, तब दुःख ही अनुग्रह जान पड़ता है।

२८५—खटमलभरी खाटपर मीठी नींदका लगना जैसे असम्भव है, वैसे ही अनित्य संसारके भरोसे सुख मिलना भी असम्भव है।

२८६—वैराग्य परमार्थकी नींव है।

२८७—विरक्तिके बिना ज्ञान नहीं ठहर सकता । देहसहित सम्पूर्ण दृश्यमान संसारके नश्वरत्वकी मुद्रा जबतक चित्तपर अङ्कित नहीं हो जाती, तबतक वहाँ ज्ञान नहीं ठहर सकता।

२८८—यह समस्त संसार अनित्य है, इस अनित्यताको जहाँ जान लिया तहाँ वैराग्य हाथ धोकर पीछे पड़ जाता है। ऐसा दृढ़तर वैराग्य उत्पन्न होना ही तो भगवान्‌की दया है।

२८९—वैराग्य खेल नहीं, भगवान्‌की दया हो तो ही उसका लाभ हो।

२९०—भगवान् जिसपर अनुग्रह करना चाहते हैं, उसे वे पहले वैराग्य-दान करते हैं।

२९१—चित्तसे जबतक प्रपञ्च बिलकुल उतर नहीं जाता, तबतक परमार्थ नहीं सूझता, नहीं भाता, नही ठहरता। मनोभूमि जब वैराग्यसे शुद्ध हो जाती है, तब उसमें बोया हुआ ज्ञानबीज अङ्कुरित होता है।

२९२—सतत सत्सङ्ग, सत्-शास्त्रका अध्ययन, गुरु-कृपा और आत्मारामकी भेंट—यही वह क्रम है जिससे जीव संसारके कोलाहलसे मुक्त होता है।

२९३—प्रारब्धवश जिस जातिमें हम पैदा हुए उसी जातिमें रहकर तथा उसी जातिके कर्म करते हुए प्रेमसे नारायणका भजन करें और

तर जायँ—इतना ही अपना कर्तव्य है।

२९४—भगवान्‌का भजन ही जीवनका सुफल है।

२९५—सुगम मार्गसे चलो और सुखसे राम-कृष्ण-हरिनाम लेते चलो। वैकुण्ठका यही अच्छा और समीपका रास्ता है।

२९६—जिस सङ्गसे भगवत्प्रेम उदय होता है वही सङ्ग सङ्ग है, बाकी तो नरकनिवास है।

२९७—संतोंके द्वारपर श्वान होकर पड़े रहना भी बड़ा भाग्य है, क्योंकि वहाँ प्रसाद मिलता है और भगवान्‌का गुणगान सुननेमें आता है।

२९८—कीर्तनका अधिकार सबको है, इसमें वर्ण या आश्रमका भेद-भाव नहीं।

२९९—कीर्तनसे शरीर हरिरूप हो जाता है। प्रेमछन्दसे नाचो, डोलो। इससे देहभाव मिट जायगा।

३००—हरिकीर्तनमें भगवान्, भक्त और नामका त्रिवेणी-संगम होता है।

३०१—प्रेमी भक्त प्रेमसे जहाँ हरिगुण-गान करते हैं, भगवान् तो वहाँ रहते ही हैं।

३०२—कीर्तनसे संसारका दुःख दूर होता है। कीर्तन संसारके चारों ओर आनन्दकी प्राचीर खड़ी कर देता है और सारा संसार महासुखसे भर जाता है। कीर्तनसे विश्व धवलित होता और वैकुण्ठ पृथ्वीपर आता है।

३०३—भगवान्‌के वचन है—मेरे भक्त जहाँ प्रेमसे मेरा नामसंकीर्तन करते हैं, वहाँ तो मैं रहता ही हूँ—मैं और कहीं न मिलूँ तो मुझे वहीं ढूँढ़ो।

३०४—तेरा कीर्तन छोड़ मैं और कोई काम न करूँगा। लज्जा छोड़कर तेरे रंगमें नाचूँगा।

३०५—कीर्तनका विक्रय महान् मूर्खता है।

३०६—वाणी ऐसी निकले कि हरिकी मूर्ति और हरिका प्रेम चित्तमें बैठ जाय। वैराग्यके साधन बतावे, भक्ति और प्रेमके सिवा अन्य व्यर्थकी बातें कथामें न कहे।

३०७—कीर्तन करते हुए हृदय खोलकर कीर्तन करे, कुछ छिपाकर-चुराकर न रखे। कीर्तन करने खड़े होकर जो कोई अपनी देह चुरावेगा, उसके बराबर मूर्ख और कौन हो सकता है ?

३०८—स्वाँगसे हृदयस्थ नारायण नहीं ठगे जाते। निर्मल भाव ही साधन-वनका बसन्त है।

३०९—भगवान् भावुकोंके हाथपर दिखायी देते हैं, पर जो अपनेको बुद्धिमान् मानते हैं, वह मर जाते हैं तो भी भगवान्‌का पता नहीं पाते।

३१०—ज्ञानके नेत्र खुलनेसे ग्रन्थ समझमें आता है, उसका रहस्य खुलता है, पर भावके बिना ज्ञान अपना नहीं होता।

३११—भावके नेत्र जहाँ खुले वहीं सारा विश्व कुछ निराला ही दिखायी देने लगता है।

३१२—भगवान्‌से मिलन होनेके लिये भाव आवश्यक है।

३१३—चित्त यदि भगवच्चिन्तनमें रँग जाय तो वह चित्त ही चैतन्य हो जाता है, पर चित्त शुद्ध भावसे रँग जाय तब।

३१४—जैसा भाव वैसा फल । भगवान्‌के सामने और कोई बल नहीं चलता।

३१५—पत्थरकी ही सीढ़ी और पत्थरकी ही देव-प्रतिमा, परंतु एकपर हम पैर रखते है और दूसरेकी पूजा करते है। भाव ही भगवान् हैं।

३१६—गङ्गा-जल जल नहीं है, बड़-पीपल वृक्ष नहीं हैं, तुलसी और रुद्राक्ष माला नहीं है, ये सब भगवान्‌के श्रेष्ठ शरीर हैं।

३१७—भाव न हो तो साधनका कोई विशेष मूल्य नहीं।

३१८—तीर्थको जो जल समझता है, प्रतिमामें जो पत्थर देखता है, संतोंको जो मनुष्य समझता है, उसके समान मूर्ख कौन है।

३१९—भूतमात्रमें जब हरिके दर्शन होने लगते हैं, तभी निष्काम और सच्ची भूतसेवा बन पड़ती है।

३२०—यदि तुम भगवान्‌को चाहते हो तो भावसे उनके गीत गाओ। दूसरेके गुण-दोष न सुनो, मनमें भी न लाओ। संतके चरणोंकी सेवा करो। सबके साथ विनम्र रहो और थोड़ा-बहुत जो कुछ बन पड़े उपकार करो। यह सुलभ उपाय है।

३२१—पर-उपकारसे उन्हीं हरिकी ही सेवा बनती है। भूतोंका उपकार ही भूतात्माका पूजन-अर्चन है।

३२२—हृदयका भाव भगवान् जानते हैं, उन्हें जनाना नहीं पड़ता।

३२३—छोटे-बड़े सबका शरीर नारायणका ही शरीर है।

३२४—चित्तमें भगवान्‌को बैठाया कि पर-द्रव्य और पर-नारी विषवत् हो गये।

३२५—निर्लज्ज नामस्मरण ही मेरा सारा धन है और यही मेरा सम्पूर्ण साधन है।

३२६—मेरा चित्त, वित्त, पुण्य, पुरुषार्थ सब कुछ श्रीहरि हैं।

३२७—मेरे माँ-बाप, भाई-बहन सब हरि ही हैं। हरिको छोड़ कुल-गोत्रसे मुझे क्या काम ? हरि ही मेरे सर्वस्व है। उनके सिवा ब्रह्माण्डमें मेरा कोई नहीं।

३२८—संसारमें भटकते-भटकते मैं थक गया। 'नाम' से काया शीतल हुई।

३२९—राम, कृष्ण, हरिका कीर्तन करो, सुजान हो, अजान हो, जो हो हरि-कथा कहो। मैं शपथ करके कहता हूँ कि इससे तर जाओगे।

३३०—निराश मत हो, यह मत कहो कि हम पतित हैं, हमारा

उद्धार क्या होगा। और कहीं मत देखो, श्रीहरिका गीत गाओ। प्रभुके चरण पकड़ लो, उनके नामका आश्रय न छोड़ो।

३३१—हरि-कथा सुखकी समाधि है।

३३२—राम, कृष्ण, हरि, नारायण—बस, इससे बढ़कर और क्या चाहिये ?

३३३—वासनाका मूल काटे बिना यह कोई न कहे कि मेरा उद्धार हो गया।

३३४—अमृतका बीज, आत्मतत्त्वका सार, गुह्यका गुह्य रहस्य श्रीराम-नाम है।

३३५—लोभ, मोह, आशा, तृष्णा, माया सब हरि-गुणगानसे रफूचक्कर हो जाते हैं।

३३६—प्रेमियोंका संग करो। धन-लोभादि मायाके मोहपाश हैं। इस फंदेसे अपना गला छुड़ाओ।

३३७—ज्ञानी बननेवालोंके फेरमें मत पड़ो; कारण—निन्दा-अहंकार, वाद-विवादमें अटककर वे भगवान्‌से बिछुड़े रहते हैं।

३३८—साधुओंका संग करो। संत-संगसे प्रेम-सुख लाभ करो!

३३९—साधककी अवस्था उदास रहनी चाहिये। 'उदास' किसे कहते हैं, जिसे अंदर-बाहर कोई उपाधि न हो, जिसकी जिह्वा लोलुप न हो, भोजन और निद्रा नियमित हों, स्त्री-विषयमें फिसलनेवाला न हो।

३४०—एकान्तमें या लोकान्तमें प्राणोंपर बीत आवे तो भी विषय-वासना और उसके उद्दीपनोंसे दूर रहे।

३४१—सज्जनोंका संग, नामका उच्चारण और कीर्तनका घोष अहर्निश किया करे। इस प्रकार हरि-भजनमें रमे।

३४२—सदाचारमें ढीला रहकर भगवद्भक्तोंके मेलेमें कोई केवल भजन करे तो वह भजन कुछ भी काम नहीं देगा। वैसे ही कोई

सदाचारमें पक्का है, पर भजन नहीं करता तो भी अधूरा ही है।

३४३—सदाचारसे रहे और हरिको भजे, उसीको गुरुकृपासे ज्ञान-लाभ होगा।

३४४—एकान्तवास, गङ्गास्नान, देवपूजन, तुलसी-परिक्रमा नियमपूर्वक करते हुए हरिचिन्तनमें समय व्यतीत करे।

३४५—देह भगवान्‌को अर्पण करे। परमार्थ-लाभ ही महाधन है, यह जानकर भगवान्‌के चरण प्राप्त करे।

३४६—निन्दा और वाद सर्वथा त्याग दे।

३४७—कलियुगमें कीर्तन करो, इसीसे नारायण दर्शन देंगे।

३४८—जिस घरके द्वारपर तुलसीका पेड़ न हो उस घरको श्मशान समझो।

३४९—पर-नारी माताके समान जाने। परधन और परनिन्दा तजे। राम-नामका चिन्तन करे। संतवचनोंपर विश्वास रखे। सच बोले। इन्हीं साधनोंसे भगवान् मिलते हैं और प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं।

३५०—मस्तक नीचा करो, संतोंके चरणोंमें लगो औरोंके गुण-दोष न सुनो, न मनमें लाओ। शक्तिभर उपकार भी किये चलो। यह सुलभ उपाय है।

३५१—जहाँ कोई आशा न रही, वहीं भगवान् रहते हैं। आशाको जड़से उखाड़कर फेंक दे।

३५२—चित्त शुद्ध करके भावसे भगवान्‌का गीत गाओ।

३५३—लोगोंके लिये, लोग अच्छा कहें इसलिये परमार्थ करना चाहते हो तो मत करो। भगवान्‌को चाहते हो तो भगवान्‌को भजो।

३५४—भगवान्‌की लगन हो तो देहभावको शून्य करके भगवान्‌को भजो।

३५५—प्रभु जिसके लिये जो मार्ग ठीक है वह दिखा देता है।

वह बड़ा दयालु है।

३५६—नेत्रोंसे साँवरे प्यारेको देख। देख उन्हें जिनमें छहों शास्त्र, चारों वेद और अठारहों पुराण एकीभूत हैं। एक क्षण भी दुःसंग न कर। विष्णुसहस्रनाम जपा कर।

३५७—अपना हृदय श्रीहरिको दे डाले। चित्त हरिको देनेसे वह नवनीतके समान मृदु होता है।

३५८—भाव-शुद्धि होनेपर हृदयमें जो श्रीहरि हैं उनकी मूर्ति प्रकट हो जाती है।

३५९—श्रीहरिके सगुणरूपकी भक्ति करना ही जीवोंके लिये मुख्य उपासना है। इस सगुण-साक्षात्कारका मुख्य साधन है हरिनाम-स्मरण और सगुण-साक्षात्कारके अनन्तर भी नाम-स्मरण ही आश्रय है।

३६०—नाम-स्मरणसे ही हरिको प्राप्त करो। हरिके प्राप्त होनेपर भी नाम-स्मरण ही करो। बीज और फल दोनों एक हरिनाम ही हैं।

३६१—सारा प्रपञ्च प्रारब्धके सिर पटको और श्रीहरिको ढूँढ़नेमें लगो।

३६२—सच्चा पंडित वही है जो नित्य हरिको भजता है और यह देखता है कि सब चराचर जगत्‌में श्रीहरि ही रम रहे हैं।

३६३—वेदोंका अर्थ, शास्त्रोंका प्रमेय और पुराणोंका सिद्धान्त एक ही है और वह यही है कि सर्वतोभावसे परमात्माकी शरणमें जाओ और निष्ठापूर्वक उसीका नाम गाओ। सब शास्त्रोंके विचारका अन्तिम निरधार यही है।

३६४—उस बड़प्पनमें आग लगे जिसमें भगवद्भक्ति नहीं।

३६५—मूलका सिंचन करनेसे उसकी तरी समस्त वृक्षमें पहुँचती है। पृथक्‌के फेरमें मत पड़ो। जो सार वस्तु है उसे पकड़े रहो।

३६६—पतिव्रताके लिये जैसे पति ही प्रमाण है, वैसे ही हमारे

लिये नारायण हैं।

३६७—बीज भूँजकर लाई बना डाली, अब जन्म-मरण कहाँ रहा ?

३६८—राम हृदयमें हैं; पर भ्रान्त जीव बाह्य विषयोंपर लुब्ध होते है।

३६९—अपनी कोई स्वतन्त्र इच्छा न रखकर भगवान्‌की इच्छाके अनुकूल हो जाय। माली जलको जिधर ले जाता है, जल उधर ही शान्तिके साथ जाता है। वैसे ही तुम बनो।

३७०—अंगारोंकी सेजपर सुखकी नींद ? इस दुःखभरे जगत्‌में सुखकी खोज ?

३७१—संसारमें कालका कलेवा बनकर कौन सुखी हुआ है ?

३७२—चाहे कोई कितना ही दिमाग खर्च करे, वह चीनीको फिरसे ऊख नहीं बना सकता। ठीक उसी प्रकार भगवान्‌को पाकर कोई जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ सकता।

३७३—यह जीवात्मा आप ही अपना तारक, आप ही अपना मारक है। आप ही अपना उद्धारक है। रे नित्यमुक्त आत्मा ! जरा सोच तो सही कि तू कहाँ अटका हुआ है।

३७४—व्यक्त और अव्यक्त निःसंशय तुम्हीं एक हो। भक्तिसे व्यक्त और योगसे अव्यक्त मिलते हो।

३७५—जो कोई जैसा ध्यान करता है, दयालु भगवान् वैसे बन जाते हैं।

३७६—यदि मैं स्तुति करूँ तो वेदोंसे भी जो काम नहीं बना वह मैं कर सकता हूँ। परन्तु क्या किया जाय रसनाको तो दूसरे ही सुखका चसका लग गया है।

३७७—अपने हिस्सेमें जो काम आया वही करता हूँ, पर भाव मेरा तेरे ही अंदर रहे। शरीर शरीरका धर्मपालन करता है, पर भीतरकी बात रे मन ! तू मत भूल।

३७८—कहीं किसी औरका प्रयोजन नहीं। सब जगह मेरे लिये तू-ही-तू है। तन, वाणी और मन तेरे चरणोंपर रखे हैं। अब हे भगवन्! और कुछ बचा नहीं दीखता।

३७९—आत्मबोधके लिये वैसी छटपटाहट हो जैसे जलके बिना मछली छटपटाती है।

३८०—चौपड़के खेलोंमें गोटीका मारना और जीना जैसा है, ज्ञानीकी दृष्टिमें जीवोंका बन्ध-मोक्ष भी वैसा ही है।

३८१—मुखमें अखण्ड नारायण-नाम ही मुक्तिके ऊपरकी भक्ति जानो।

३८२—शरीर न बुरा है, न अच्छा है, इसे जल्दी हरिभजनमें लगाओ।

३८३—श्रीरामके बिना जो मुख है वह केवल चर्मकुण्ड है। भीतर जो जिह्वा है वह चमड़ेका टुकड़ा है।

३८४—एक श्रीहरिकी ही महिमा गाया कर, मनुष्यके गीत न गाये।

३८५—चिन्तनके लिये कोई समय नही लगता, उसके लिये कुछ मूल्य नहीं देना पड़ता, सब समय ही 'राम-कृष्ण-हरि-गोविन्द' नाम जिह्वापर बना रहे। यही एक सत्य-सार है—व्युत्पत्तिका भार केवल व्यर्थ है।

३८६—कथा-कीर्तन करके जो द्रव्य देते या लेते हैं, वे दोनों ही भूले हुए हैं।

३८७—जबतक जीवन है तबतक नाम-स्मरण करे, गीता-भागवत श्रवण करे और हरि-हर-मूर्तिका ध्यान करे।

३८८—कर्माकर्मके फेरमें मत पड़ो। मैं भीतरी बात बतलाता हूँ, सुनो। श्रीरामका नाम अट्टहासके साथ उचारो।

३८९—काम-वासनाके अधीन जिसका जीवन होता है, उस

अधमको देखनेसे भी असगुन होता है।

३९०—विषय-तृष्णाके जो अधीन होता है, उसीके रुखपर नाचता है, वह मदारीका बंदर-जैसा है।

३९१—हरि-हरमें भेद नहीं है, झूठ-मूठ बहस मत करो। दोनों एक दूसरेके हृदयमें हैं, जैसे मिठास चीनीमें और चीनी मिठासमें।

३९२—भगवान् आगे-पीछे खड़े संसारका संकट निवारण करते हैं।

३९३—दो ही अक्षरका काम । उचारो श्रीराम-नाम।

३९४—भौंरा चाहे जैसे कठिन काठको मौजके साथ भेदकर उसे खोखला कर देता है, परन्तु कोमल कलीमें आकर फँस ही जाता है। वह प्राणोंका उत्सर्ग कर देगा, पर कमलदलको नहीं चीरेगा। स्नेह कोमल होनेसे ऐसा कठिन है।

३९५—बच्चा जब बापका पल्ला पकड़ लेता है तब बाप वहीं खड़ा रह जाता हैं, इसलिये नहीं कि बाप इतना दुर्बल है, बल्कि इस कारणसे कि वह स्नेहमें फँसकर वहीं गड़ जाता है। प्रीतिकी यही निराली रीति है।

३९६—जो श्रीहरिको प्रिय न हो वह ज्ञान भी झूठा है और वह ध्यान भी झूठा है।

३९७—भगवन्! मेरा मन अपने अधीन करके बिना दान दिये स्वामित्व क्यों नहीं भोगते!

३९८—बड़ेका लड़का यदि दीन-दुखी दिखायी दे तो हे भगवन्! लोग किसको हँसेंगे? लड़का चाहे गुणी न हो, स्वच्छतासे रहना भी न जानता हो तो भी उसका लालन-पालन तो करना ही होगा। वैसा ही मैं भी एक पतित हूँ, पर आपका मुद्राङ्कित हूँ।

३९९—संतका लक्षण क्या है? प्राणिमात्रपर दया।

४००—भगवान् भक्तके उपकार मानते हैं, भक्तके ऋणी हो जाते हैं।

४०१—हरिभक्तोंकी कोई निन्दा न करे, गोविन्द उसे सह नहीं सकते। भक्तोंके लिये भगवान्‌का हृदय इतना कोमल होता है कि वह अपनी निन्दा सह लेते हैं, परन्तु भक्तकी निन्दा नहीं सह सकते।

४०२—भक्तके पुकारनेकी देर है, भगवान्‌के पधारनेकी नहीं। इसलिये रे मन! जल्दी कर।

४०३—उठते-बैठते भगवान्‌को पुकार। पुकार सुननेपर भगवान्‌से फिर नहीं रहा जाता।

४०४—भगवान् भक्तके आगे-पीछे उसे सँभाले रहते हैं, उसपर जो कोई आघात होते हैं, उनका निवारण करते रहते हैं, उसके योगक्षेमका सारा भार स्वयं वहन करते हैं और हाथ पकड़कर उसे रास्ता दिखाते हैं।

४०५—भगवान्‌ने जिन्हें अङ्गीकार किया, वे जो निन्द्य भी थे, वन्द्य हो गये।

४०६—भगवद्भक्तिके बिना जो जीना है, उसमें आग लगे। अन्तःकरणमें यदि हरि-प्रेम नहीं समाया तो कुल, जाति, वर्ण, रूप, विद्या इनका होना किस कामका? इनसे उलटे दम्भ ही बढ़ता है।

४०७—भगवान्‌को जो पसंद हो वही शुभ है, वही वन्द्य है और वही उत्तम है। भगवान्‌की मुहर जिसपर लगेगी वही सिक्का दुनियामें चलेगा।

४०८—हरिशरणागति ही सब शुभाशुभ कर्मबन्धनोंसे मुक्त होनेका एकमात्र मार्ग है। जो शरणागत हुए वे ही तर गये। भगवान्‌ने उन्हें तारा, उन्हें तारते हुए भगवान्‌ने उनके अपराध नहीं देखे, उनकी जाति या कुलका विचार नही किया। भगवान् केवल भावकी अनन्यता देखते हैं।

४०९—अनन्य प्रेमकी गङ्गामें सब शुभाशुभ कर्म शुभ ही हो जाते हैं।

४१०—तुम्हारे नामने प्रह्लादकी अग्निमें रक्षा की, जलमें रक्षा की, विषको अमृत बना दिया। इस अनाथके नाथ तुम हो यह सुनकर मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ।

४११—भगवान् यदि भक्तपर दुःखके पहाड़ ढाह दें, उनकी घर-गृहस्थीका सत्यानाश कर डालें तो भक्त और भी उत्सुकता, उमंग और भक्तिपूर्वक उनका भजन करेंगे।

४१२—जिससे भगवान् मिलें वह लोकदृष्टिमें हेय-कर्म हो तो भी करें, जिससे भगवान् छूट जायँ वह शुभ दीखनेवाला कर्म भी न करें।

४१३—भगवत्प्राप्तिका मुख्य साधन नामस्मरण है। नामस्मरणसे असंख्य भक्त तर गये।

४१४—भक्तोंके लिये हे भगवन्! आपके हृदयमें बड़ी करुणा है, यह बात अब मेरी समझमें आ गयी। हे कोमलहृदय हरि! आपकी दया असीम है।

४१५—प्रेममें जो तड़पन, व्यथा, विकलता और रुदन आदि होते हैं, वे सभी रति-प्रगाढ़ प्रीतिके अनुभाव हैं। प्रेमके आँसू वरदान हैं और शोकके आँसू अभिशाप।

४१६—भगवान् कल्पवृक्ष हैं, चिन्तामणि हैं। चित्त जो-जो चिन्तन करें उसे पूरा करनेवाले हैं।

४१७—जिसे गुरुका अनुग्रह मिला हो, गुरुसेवाके परमानन्दका जिसने भोग किया हो, वही उसकी माधुरी जान सकता है।

४१८—गुरुकृपाके बिना कोई साधक कभी कृतकार्य नहीं हुआ। श्रीगुरुके चरण-धूलिमें लोटे बिना कोई भी कृतकृत्य नहीं हुआ। श्रीगुरु बोलते-चालते ब्रह्म हैं।

४१९—सद्गुरु शिष्योंके नेत्रोंमें ज्ञानाञ्जन लगाकर उसें दृष्टि देते हैं। ऐसे सद्गुरु बड़े भावसे जब मिलें, तब अत्यन्त नम्रता, विमल

सद्भाव और दृढ़ विश्वासके साथ उनकी शरण लो; अपना सम्पूर्ण हृदय उन्हें अर्पण करो, उनके प्रति अपने चित्तमें परम प्रेम धारण करो, उन्हें प्रत्यक्ष परमेश्वर समझो; इससे भक्तिज्ञानका समुद्र प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाओगे।

४२०—महात्मा सिद्धपुरुष ईश्वरके रूप होते हैं। वे केवल स्पर्शसे, एक कृपाकटाक्षसे, केवल संकल्पमात्रसे भी श्रद्धासम्पन्न साधकको कृतार्थ करते हैं। पर्वतप्राय पापोंका बोझ ढोनेवाले भ्रष्ट जीवको भी अपनी दयासे वे क्षणार्धमें पुण्यात्मा बना देते हैं।

४२१—भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुके नेत्र श्रीगुरु ही खोलते हैं।

४२२—गुरु और शिष्यका सम्बन्ध पूर्वज और वंशजके सम्बन्ध-जैसा ही है। श्रद्धा, नम्रता, शरणागति और आदरभावसे शिष्य गुरुका मन मोह ले तो भी उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है।

४२३—स्वानुभूति ज्ञानकी परम सीमा है। वह स्वानुभूति ग्रन्थोंसे नहीं प्राप्त हो सकती, पृथ्वीपर्यटन करनेसे नहीं मिलती। स्वानुभवका यथार्थ रहस्य श्रीगुरुकी कृपाके बिना त्रिकालमें भी नहीं ज्ञात होगा।

४२४—भगवान्‌की कृपासे जब ऐसा भाग्योदय हो कि श्रीगुरु दर्शन दें तब सर्वान्तःकरणसे श्रीगुरुकी शरण लो, उनके बालक बनकर अनन्यभावसे उनकी सेवा करो, इससे तुम धन्य होगे।

४२५—संत दुर्लभ तो हैं, पर अलभ्य नहीं। चन्दन महँगा मिलता है, पर मिलता तो है।

४२६—भाग्यश्रीका जब उदय होना होता है, तभी संत मिलते हैं।

४२७—मुमुक्षुको गुरु ढूँढ़ना नहीं पड़ता, गुरु ही ऐसे शिष्योंको जो कृतार्थ होनेयोग्य हुए हो, ढूँढ़ा करते हैं।

४२८—फलके परिपक्व होते ही तोता बिना बुलाये ही आकर

उसपर चोंच मारता है। उसी प्रकार विरक्त जीवको देखते ही दयाकुल गुरु दौड़े आते हैं और आत्मरहस्य बतलाकर उसे कृतार्थ करते हैं।

४२९—सब संत सद्गुरुस्वरूप ही हैं तथापि जैसे सब स्त्रियाँ माताके समान होनेपर भी स्तन-पान करानेवाली माता एक ही होती है, वैसे ही सब संत सद्गुरु-समान होनेपर भी स्वानुभवामृतपान करानेवाली ईश्वर-नियुक्त सद्गुरु माता भी एक ही होती है और मुमुक्षु शिशु जब भूखसे व्याकुल होकर रोने लगता है, तब सद्गुरु-मातासे एक क्षण रहा नहीं जाता और वह दौड़ी चली आती और शिशुको अमृतपान कराती है।

४३०—गुरु ईश्वर-नियुक्त होते हैं। गुरु-शिष्यका सम्बन्ध अनेक जन्म-जन्मान्तरोंसे चला आता है और यह गुरु निश्चित समयपर निश्चित शिष्यको कृतार्थ किया करते है।

४३१—भूतदया ही संतोंकी पूँजी है।

४३२—चाभीको दाहिने घुमा रहे हो सो बायें घुमाओ तो ताला खुल जायगा। जिधर जा रहे हो उधर पीठ फेर दो, आगे न देख पीछे देखो, बाहरकी ओर आँख लगाये हो सो अंदरकी ओर लगाओ, प्रवाह छोड़ उद्गमकी ओर मुड़ो तो सचमुच ही तुम मुक्त, सुखी, ब्रह्मस्वरूप होगे।

४३३—कौन किसको बाँधता है, कौन किसको छुड़ाता है? यह सब सङ्कल्पकी माया है।

४३४—मन सरपट भागनेवाला घोड़ा है। वैराग्यकी लगामसे उसकी चाल काबूमें करके उसे वशमें करना होगा। ऐसे दुर्जय मनपर जो सवार होगा, वह बलवानोंसे भी बलवान् है।

४३५—मनकी एक बात बड़ी अच्छी है। जिस चीजका उसे चसका लगता है, उसमें वह लग ही जाता है, इसलिये इसे आत्मानुभवका सुख बराबर देते रहना चाहिये।

४३६—एक ओरसे वैराग्यकी धूनी रमाकर चित्तसे विषयोंका त्याग करना और दूसरी ओरसे हरि-चिन्तनका आनन्द लेना, इस प्रकार वैराग्य और अभ्यास दोनों अस्त्र-शस्त्रोंकी मारसे मनोदुर्गदलन करना होता है।

४३७—ऐसा वैराग्य दृढ़ करना चाहिये कि मन विषयोंसे ऊब जाय और दूसरी ओरसे उसे परमार्थका चसका लगाते हुए हरिभजनमें समाधि देनी चाहिये।

४३८—मनसे ही मनको मारना, हरिभजनमें लगाकर उन्मन करना, हरिस्वरूपमें मिलाकर मनको मनकी तरह रहने ही न देना यही तो मनोजय है।

४३९—इस मनकी एक उत्तम गति है। यदि यह कहीं परमार्थमें लग गया तो चारों मुक्तियोंको दासियाँ बना छोड़ता है और परब्रह्मको बाँधकर हाथमें ला देता है। इतना बड़ा लाभ मनके वश करनेसे होता है।

४४०—उत्तम गति अथवा अधोगति देनेवाला मन है। मन ही सबकी माता है। मनको छोड़कर और कोई खास हेतु नहीं है। अतः पहले इसे प्रसन्न-निर्मल कर लो।

४४१—मनको प्रसन्न करना उसे विषय-प्रवाहसे खींचकर हरिभजनके लंगरमें बाँधना है। मनकी बड़ी रखवाली करनी पड़ती है, यह जहाँ-जहाँ जाय वहाँ-वहाँसे इसे बड़ी सावधानीके साथ खींच लेना पड़ता है।

४४२—नित्य जागकर इस मनको सँभालना पड़ता है। मदोन्मत्त हाथी जैसे अंकुशके बिना नहीं सँभलता, वैसे ही यह चञ्चल मन अखण्ड सावधान रहे बिना ठिकाने नहीं रहता।

४४३—एक क्षणमें पचासों जगह चक्कर लगा आनेवाले इस मनको भगवान् दया करें तो ही रोक सकते हैं।

४४४—यह मन संसारकी बातें ही सोचता रहता है। हे भगवन्! मेरे-तेरे बीच यही एक बड़ी भारी बाधा है। मैं तो भजन-पूजन करता हूँ, पर अंदर मन संसारका ही ध्यान करता रहता है। हे नारायण!

आओ, दौड़ आओ तुम्हीं इस अन्तरमें आकर भरे रहो।

४४५—इस मनके कारण, हे भगवन्! मैं बहुत ही दुःखी हूँ। क्या मनके इन विकारोंको तुम रोक नही सकते ?

४४६—मेरा मन ऐसा चञ्चल है कि एक घड़ी, एक पल भी स्थिर नहीं रहता। अब हे नारायण ! तुम्हीं मेरी सुधि लो, मुझ दीनके पास दौड़े आओ।

४४७—इस मनको बहुत रोको, बंद कर रक्खो तो यह खीज उठता है, फिर चाहे जिधर भागता है। इसे भजन प्रिय नहीं, श्रवण प्रिय नहीं, विषय देखकर उसी ओर भागता है। सोते-जागते इसे कब कहाँतक रोका जाय ! हे हरि ! अब तुम्हीं मेरी रक्षा करो।

४४८—देखता यह हूँ कि यह मन तो बेबस, विषय-लोभी है। इस उलझनको कैसे सुलझाऊँ ? हे भगवन्! क्या आप मेरी असमर्थता नहीं जानते ?

४४९—आपके बिना इस मनका दूसरा कौन चालक है, हे नारायण ! यह तो बताइये।

४५०—मनका निरोध करता हूँ, पर विकार नष्ट नहीं होता। ये विषयद्वार बड़े ही दुस्तर हैं। यदि आप अंदरमें भरे रहते तो मैं निर्विषय होकर तदाकार हो जाता।

४५१—रे मन! यह कह कि मैं 'राम-कृष्ण-हरि' कहूँगा, उल्लासके साथ हरि-कथा सुनूँगा, संतोंके पैर पकड़ूँगा। तू इतना जरूर कर कि मैं जब हरि-प्रेमसे रंगशालामें नाचूँ, तब तू भी अंदरका मैल धोकर तैयार रह और तालपर ताली बजाता चल।

४५२—रे मन ! अब भगवान्‌के चरणोंमें लीन हो जा, इन्द्रियोंके पीछे मत दौड़। वहाँ सब सुख एक साथ हैं और वे कभी कल्पान्तमें भी नष्ट होनेवाले नहीं।

४५३—ऐसी विषम अवस्थामें जब मन और इन्द्रियाँ एक तरफ हो गयी हैं और दूसरी तरफ मैं हूँ—मेरी-उनकी ऐसी तनातनी है, तब हे हरि ! आप ही मध्यस्थ होकर इस कलहको मिटाइये, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

४५४—मेरे दुर्गुण मुझे जान पड़ते हैं, पर क्या करूँ ? मनपर बस नहीं चलता ! अब आप ही हे नारायण ! बीचमें आ जाइये और अपने दया-सिन्धु होनेको सत्य कर दिखाइये।

४५५—मैं जैसा भी हूँ तुम्हारा दास हूँ। मेरे माँ-बाप ! मुझे उदास न करो।

४५६—क्या करूँ अब इस मनको ? यह विषयकी वासना तो नहीं छोड़ती, मनानेसे भी नहीं मानती ! ठीक पतनकी ओर लिये जा रही है। हे हरि ! अब दौड़ो, नहीं तो मैं अब डूबा।

४५७—और कोई नहीं दिखायी देता जो इस मनको रोक रखे ! एक घड़ी भी एक स्थानमें नहीं रहता, बन्धन तड़ातड़ तोड़कर भागता है। विषयोंके भँवरभरे भवसागरमें कूदना चाहता है। आशा-तृष्णा, कल्पना-पापिनी मेरा नाश करनेपर तुली हुई है। हे नारायण ! तुम अभी देख ही रहे हो।

४५८—परमार्थपथमें धन, स्त्री और मान—तीन बड़ी खाइयाँ हैं। पहले तो परमार्थके पथमें चलनेवाले पथिक ही बहुत थोड़े होते हैं, फिर जो होते हैं, उनमेंसे कुछ तो पहले पैसेकी खाईमें ही खो जाते है। इससे जो बचते हैं, वे आगे बढ़ते हैं। इसमेंसे कुछको दूसरी खाई (स्त्रीकी) खा जाती है। इससे भी बचकर जो आगे बढ़े, वे तीसरी खाई (मानकी) में खपते हैं। इन तीनों खाइयोंको जो पार कर जाते हैं, वे ही भगवत्कृपाके पात्र होते हैं, पर ऐसा पुरुष विरला ही होता है।

४५९—विरक्तके लिये धन गोमांस है। स्पर्श करनेको कौन कहे, वह उसकी ओर ताकतातक नहीं।

४६०—रीछनी गुदगुदाकर प्राण हर लेती है, वैसे ही परमार्थी पुरुष यह जाने कि कामिनीका सङ्ग नाश करनेवाला है और उससे दूर रहे।

४६१—प्राण जाय तो भी एकान्तमें या लोकान्तमें कभी स्त्रियोंसे सम्भाषण न करे।

४६२—हे नारायण! स्त्रियोंका सङ्ग न हो। काठ-पत्थर और मिट्टीकी भी स्त्रीकी मूर्तियाँ सामने न हों। उनकी माया ऐसी है कि भगवान्‌का स्मरण नहीं होता, भगवान्‌का भजन नहीं होता, उनसे परचा हुआ मन वशमें नहीं होता। उनके नेत्रोंके कटाक्ष और हाव-भाव इन्द्रियोंके रास्ते मरणके कारण होते हैं। उनका लावण्य केवल दुःखका मूल है।

४६३—वैष्णवके लिये परस्त्री रुक्मिणीमाताके समान है।

४६४—परधन और परदाराकी इच्छा पामरोंके ही चित्तमें उठा करती है।

४६५—नाम और मानके पीछे दुनिया तबाह है।

४६६—परमार्थके साधकको चाहिये कि लोगोंके फेरमें कभी न पड़े। लोग दोमुँहे होते हैं—ऐसा भी कहते हैं, वैसा भी कहते हैं। वमनकी तरह जन-सङ्गको त्याग दे। जो अपना हित चाहता हो, वह जनको त्यागकर हरिभजनका सरल मार्ग आदर और प्रेमसे स्वीकार करे।

४६७—हे मन! मायाजालमें मत फँसो। काल अब ग्रसना चाहता है। आओ, श्रीहरिकी शरण आओ।

४६८—इस संसारसे जो रूठा, उसीने सिद्धपन्थपर पैर रक्खा।

४६९—घर-बाहरकी सब उपाधि दूर करनेके लिये एकान्तवास ही सर्वोत्तम उपाय है।

४७०—केवल एकान्त ही आधी समाधि है।

४७१—भोगोंका स्वरूप जान लेनेपर उनमें रस आना बंद हो

जायगा। फिर अपने आप ही उनमें अरुचि हो जायगी। वे खारे लगने लगेंगे और ज्यों-ज्यों उनमें अरुचि होगी—उनकी इच्छाका नाश होगा, त्यों-ही-त्यों भगवत्प्राप्तिकी—नित्य सुन्दर और अनन्तको पानेकी तीव्र आकाङ्क्षा जाग उठेगी।

४७२—भगवत्प्रेम जैसे-जैसे बढ़ता है—कर्त्ता भगवान् है मैं नहीं; यह जो कुछ है भगवान्‌का है, मेरा नहीं; यह भाव जैसे-जैसे बलवान् हो उठता है वैसे-वैसे अहंकारकी आँधी भी बंद होती जाती है।

४७३—अहंकार, लोकप्रियता, मान-ये सब लोकैषणाओंके बादल उत्कट भक्तिका सूर्योदय होते ही गल गये।

४७४—पापकी मैं गठरी हूँ। दण्ड दो मुझे हे नारायण ! और मेरा मान-अभिमान उतारो। प्रभो ! मैं न तेरा हुआ न संसारका। दोनोंसे गया। केवल चोर बना रहा।

४७५—जन-मान साधकको धरतीपर पटककर उसके परमार्थका सत्यानाश करनेवाला है।

४७६—लोग बड़ी प्रशंसा करते है, पर मुझसे वह सुनी नहीं जाती, जी छटपटाया करता है। तुम जिसमें मिलो, हे हरि ! ऐसी कोई कला बताओ, मृगजलके पीछे मत लगाओ। अब मेरा हित करो, इस जलती हुई आगसे निकालो।

४७७—संतचरणोंकी रज जहाँ पड़ती है वहाँ वासना-बीज सहज ही जल जाता है। तब राम-नाममें रुचि होती है और घड़ी-घड़ी सुख बढ़ने लगता है। कण्ठ प्रेमसे गद्‌गद होता, नयनोंसे नीर बहता और हृदयमें नाम-रूप प्रकट होता है, यह बड़ा ही सुलभ सुन्दर साधन है, पर पूर्वपुण्यसे यह प्राप्त होता है ।

४७८—काय, वचन, मनसे मैं हरिदासोंका दास हूँ।

४७९—संत-मिलनकी बड़ी इच्छा थी, बड़े भाग्यसे वह मिलन

हुआ। इससे सब परिश्रम सफल हो गया।

४८०—हरिभक्त मेरे प्यारे स्वजन हैं। उनके चरण मैं अपने हृदयपर धरूँगा। कण्ठमें जिनके तुलसी-माला है, जो नामके धारक हैं, वे मेरे भव-नदीके तारक हैं। आलस्यके साथ हो, दम्भसे हो अथवा भक्तिसे हो, जो हरिका नाम गाते हैं, वे मेरे परलोकके साथी हैं।

४८१—कोई कैसा भी हो, यदि हरिनाम लेनेवाला है तो वह धन्य है।

४८२—हरि-कथा माताका अमृतक्षीर जिनके सत्सङ्गसे सेवन कर पाता हूँ, उन दयालु हरि-भक्तोंके दासोंका मैं दास हूँ।

४८३—अखण्ड नाम-स्मरणका आनन्द अहर्निश प्राप्त हुए बिना चित्त-शुद्धिका साक्षात्कार नहीं हो सकता।

४८४—नाम-स्मरणका चसका लगना है बड़ा कठिन। पर एक बार जहाँ चसका लगा, वहाँ फिर एक पल भी नामसे खाली नहीं जाता।

४८५—नाम-स्मरण यह हैं कि चित्तमें रूपका ध्यान हो और मुखमें नामका जप हो। अन्तःकरणमें ध्यान जमता जाय, ध्यानमें चित्त रँगता जाय, चित्तकी तन्मयता होती जाय, यही वाणीमें नामके बैठ जानेका लक्षण हैं।

४८६—चित्तमें ध्यान न हो तो न सही, पर वाणीमें तो हो—यह नाम-स्मरणकी पहली सीढ़ी है।

४८७—हे हरि! तुम्हारे प्रेम-सुखके सामने वैकुण्ठ बेचारा क्या है?

४८८—धन्य है वह काल जो गोविन्दके सङ्कल्प-वहन करता हुआ आनन्दरूप होकर बहा जा रहा है।

४८९—गुण गाते हुए, नेत्रोंसे रूप देखते हुए तृप्ति नहीं होती। प्रभु मेरे कितने सुन्दर हैं, जलभरे मेघ-जैसी श्याम कान्ति कैसी शोभा

देती है। सब मङ्गलोंका यह सार है, सुख-सिद्धियोंका भंडार है, यहाँ सुखका क्या वारपार है।

४९०—मुखमें नाम हो तो चरणोंमें मुक्ति लोटती है। बहुतोंको इसकी प्रतीति हो चुकी है।

४९१—जीभको एक बार नामकी चाट लग जानी चाहिये, फिर प्राण जानेपर भी नामको वह नहीं छोड़ती। नामचिन्तनमें ऐसा विलक्षण माधुर्य है।

४९२—चीनी और मिठास जैसे एक हैं, वैसे ही नाम और नामी भी एक ही है, पर वह अनुभव नामस्मरणानन्द भोगनेवालोंको ही प्राप्त होता है।

४९३—नाम-चिन्तनसे जन्म-जरा-भय-व्याधि छूट जाते हैं, भवरोग सदाके लिये नष्ट हो जाता है, संसार-पाश छिन्न-भिन्न हो जाता है।

४९४—हरि-प्रेमका चसका बढ़नेसे रसना रसीली हो जाती है। इन्द्रियोंकी दौड़ थम जाती है, अनुपम सुख स्वयं घर ढूँढता हुआ चला आता है।

४९५—जब हरिप्रेमका चसका लगता है, तब एक हरिके सिवा और कुछ भी नजर नहीं आता।

४९६—नाम लेते मन शान्त होता है, जिह्वासे अमृत झरने लगता है और लाभके बड़े अच्छे शकुन होते हैं।

४९७—जहाँ भी बैठें, खेलें, भोजन करें, वहाँ तुम्हारे नाम गायेंगे। राम-कृष्णके नामकी माला गूँथकर गलेमें डालेंगे।

४९८—आसन, शयन, भोजन, गमन, सर्वत्र सब कामोंमें श्रीहरिका सङ्ग रहे। गोविन्दसे यह अखिल काल सुकाल है।

४९९—अब भगवान्‌को छोड़ और कुछ बोलना ही नहीं है। बस, यही एक नियम बना लिया है। काम, क्रोध भी भगवान्‌को दे चुका है।

५००—वही अन्न पवित्र है जिसका भोग हरिचिन्तनमें है, वही भोजन स्वादिष्ट है जिसमें श्रीहरि मिश्रित हैं।

५०१—तुम्हारा यह श्रीमुख हे हरि ! ऐसा दीखता है जैसे सुखका ही ढला हुआ हो, इसे देख मेरी भूख-प्यास हर जाती है। तुम्हारे गीत-गाते-गाते रसना मीठी हो गयी। चित्त तृप्त हो गया।

५०२—तुम्हारे कोमल चरण चित्तमें धारण कर लिये, कण्ठमें नामकी एकावली डाल ली। काया शीतल हुई, चित्त पीछे फिरकर विश्रान्ति-स्थानमें पहुँच गया, अब आगे संसारकी ओर नहीं आता है। मेरे सब हौसले पूरे हुए। सब कामनाएँ श्रीगोपालने पूरी कर दीं।

५०३—नाम लेनेसे कण्ठ आर्द्र और शरीर शीतल होता है। इन्द्रियाँ अपना व्यापार भूल जाती हैं। यह मधुर सुन्दर नाम अमृतको भी मात करता है। इसने मेरे चित्तपर अधिकार कर लिया है। प्रेमरससे शरीरकी कान्तिको प्रसन्नता और पुष्टि मिली। यह नाम ऐसा है कि इससे क्षणमात्रमें विविध ताप नष्ट होते हैं।

५०४—यह नामस्मरण ऐसा है कि इससे श्रीहरिके चरण चित्तमें, रूप नेत्रोंमें और नाम मुखमें आता है तथा यह जीवको हरिप्रेमका आनन्दामृत पान कराकर उसका जीवत्व हर लेता है। तब हरि ही रह जाते हैं।

५०५—नामस्मरणसे यह चीज ज्ञात हुई जो अज्ञात थी। वह दिखायी देने लगा जो पहले नहीं देखा गया, वह वाणी निकली जो पहले मौन थी, वह मिलन हुआ जो पहले चिरविरहमें छिपा था और यह सब आप-ही-आप हो गया।

५०६—भजनकी ओर चित्त ज्यों-ज्यों झुकता है, त्यों-त्यों भगवत्सान्निध्यका पता लगता है। पर यह अनुभव उसीको मिल सकता है, जो इसे करके देखे।

५०७—श्रीहरिकी शपथ नामको छोड़ उद्धारका और कोई उपाय मेरे नही हैं।

५०८—चारों वेद, छहों शास्त्र और अठारहों पुराणका सार-तत्त्व सुनाता हूँ, वह है श्रीरामका नाम।

५०९—नर-जन्मकी सार्थकता भगवान्‌के मिलनमें ही है।

५१०—भगवान्‌की भक्तिसे ही भगवान्‌का रूप दिखायी देता है।

५११—भक्तिका भेद जो जानता है, उसके द्वारपर अष्ट महासिद्धियाँ लोटा करती हैं, 'जाओ' कहनेसे भी नही जातीं।

५१२—सब रास्ते सँकरे हो गये, कलिमें कोई साधन नहीं बनता। भक्तिका पंथ बड़ा सुलभ है। इस पंथमें सब कर्म श्रीहरिके समर्पित होते हैं, इससे पाप-पुण्यका दाग नहीं लगता और जन्म-मृत्युका बन्धन कट जाता है।

५१३—भक्तिमार्गपर चलनेवालेके सहायक स्वयं श्रीभगवान् होते हैं।

५१४—दोनों हाथ उठाकर भगवान् पुकारकर कहते हैं कि मेरे जो भक्त हैं, उनका मैं ही सहायक हूँ—**'न मे भक्तः प्रणश्यति'**।

५१५—भक्तिमार्ग ही ऐसा मार्ग है कि जीव अनन्यभावसे भगवान्‌की शरणमें जब जाता है, तब भगवान् उसे गोदमें उठा लेते हैं।

५१६—जप करो, तप करो, अनुष्ठान करो, यज्ञ-योग करो, संतोंने जो-जो मार्ग चलाये हैं, उन सबको चलाओ।

५१७—संतोंके वचनोंको सत्य मानकर नारायणकी शरणमें जाओ।

५१८—प्रेम बोला नहीं जा सकता, बताया नहीं जा सकता, उठाकर हाथपर रखा नहीं जा सकता।

५१९—प्रेम चित्तका अनुभव है, इसे चित्त ही जान सकता है।

५२०—भगवान्‌का चिन्तन करना, उनका नाम लेना, उनके रुपमें तन्मय हो जाना ही मेरा तप है, यही मेरा योग, यही मेरा यज्ञ, यही मेरा ज्ञान, यही मेरा जप-ध्यान, यही मेरा कुलाचार और यही मेरा सर्वस्व है।

५२१—कर्म-ज्ञान-योगमें जो-जो कमी हो उसकी पूर्ति हरिप्रेमसे हो जाती है, इसलिये भक्तियोग ही सबसे श्रेष्ठ योग है। नारायण भक्तिके वश होते हैं।

५२२—भक्ति-प्रेम-सुख औरोंसे नहीं जाना जाता; चाहे वे पण्डित, बहुपाठी या ज्ञानी हों। आत्मनिष्ठ जीवन्मुक्त भी हों तो भी उनके लिये भक्ति-सुख-दुर्लभ है। नारायण यदि कृपा करें तो ही यह रहस्य जाना जा सकता है।

५२३—सगुण और निर्गुण दोनों ही जिसके अङ्ग हैं, वही हमारे संग खेला करता है।

५२४—सगुणका स्वरूप देखते ही भूख-प्यास भूल जाती है और मन प्रेममय हो जाता हैं।

५२५—दीपक हाथमें ले लेनेसे घरमें सब जगह उजाला हो जाता है। वैसे ही प्रभुकी मूर्ति जब ध्यानमें बैठ जाती है, तब समग्र चैतन्य दृष्टिमें समा जाता है।

५२६—भगवान्‌की मूर्तिका दर्शन, स्पर्श, भजन-पूजन, कथन-कीर्तन, मनन-चिन्तन करते रहनेसे जिन उपास्यदेवकी वह मूर्ति है, वह उपास्यदेव ध्यानमें बैठकर चित्तमें खेलने लगते हैं, स्वप्न देकर आदेश सुनाते हैं। ऐसी प्रतीति होती है कि वह पीठपर हैं और उनका प्रेम बढ़ता जाता है, तब उनसे मिलनेके लिये जी छटपटाने लगता है, तब प्रत्यक्ष दर्शन भी होते हैं और यह अनुभूति होती है कि वह निरन्तर हमारे समीप

हैं और अन्तमें यह अवस्था आती है कि अन्दर-बाहर वही हैं और वही सब भूतोंके हृदयमें हैं। उन्हें छोड़ ब्रह्माण्डमें और कोई नहीं, मेरे अन्दर वही हैं और मैं भी वही हूँ।

५२७—समरस हुए भक्त भक्तिका आनन्द लूटनेके लिये भगवान् और भक्तका द्वैत केवल मनकी मौजसे बनाये रहते हैं।

५२८—हवाको हिलाकर देखनेसे वह आकाशसे अलग जान पड़ती है, पर आकाश तो ज्यों-का-त्यों ही रहता है, वैसे ही भक्त शरीरसे कर्म करता हुआ भक्त-सा जान पड़ता है, पर अन्तःप्रतीतिसे वह भगवत्स्वरूप ही रहता है।

५२९—सिद्धान्त अद्वैतका और मजा भक्तिका, यही तो भागवत धर्मका रहस्य है।

५३०—वसुदेवसुत देवकीनन्दन ही सर्वरूपाकार सर्वदिक्-नेत्र और सर्वदेशनिवास परमात्मा हैं और भक्तोंकी प्रीतिके वश अमूर्त होकर भी व्यक्त हुए हैं।

५३१—जैसा जिसका भाव हो, भगवान् वैसे ही हैं।

५३२—मार्गकी प्रतीक्षा करते-करते नेत्र थक गये। इन नेत्रोंको अपने चरण-कमल कब दिखाओगे। तुम मेरी मैया हो; दयामयी छाया हो। मेरे लिये तुम्हारा ऐसा कठोर हृदय कैसे हो गया ? मेरी बाँहें, हे मेरे प्राणधन हरि ! तुमसे मिलनेको फड़क रही हैं।

५३३—हे हरि, हे दीनजनतारक ! तुम्हारा यह सुन्दर सगुणरूप मेरे लिये सब कुछ है। पतितपावन ! तुमने बड़ी देर लगायी, क्या अपना वचन भूल गये ? घर-गिरस्ती जलाकर तुम्हारे आँगनमें आ बैठा हूँ। इसकी तुम्हें कुछ सुध ही नहीं है। हे मेरे जीवनसखा ! रिस मत करो, अब उठो और मुझे दर्शन दो।

५३४—जीकी बड़ी साध यही है कि तुम्हारे चरणोंसे भेंट हो। इस निरन्तर वियोगसे चित्त अत्यन्त व्याकुल है।

५३५—आत्मस्थितिका विचार क्या करूँ ? क्या उद्‌गार करूँ ? चतुर्भुजको देखे बिना धीरज ही नहीं बँध रहा है। तुम्हारे बिना कोई बात हो यह तो मेरा जी नहीं चाहता। नाथ ! अब चरणोंके दर्शन कराओ।

५३६—मेरे प्राण ! एक बार मिलो और अपनी छातीसे लगाओ।

५३७—ये आँखें फूट जायँ तो क्या हानि है। जब ये पुरुषोत्तमको नहीं देख पातीं। अब प्रभुके बिना एक क्षण भी जीनेकी इच्छा नहीं।

५३८—अब अपना श्रीमुख दिखाओ, इससे इन आँखोंकी भूख मिटेगी।

५३९—अब आकर मिलो। पीठपर हाथ फेरकर अपनी छातीसे लगा लो।

५४०—मुझसे आकर मिलोगे, दो-एक बातें करोगे तो इसमें तुम्हारा क्या खर्च हो जायगा ?

५४१—जो लोग अरूपकी इच्छा करते हों उनके लिये आप अरूप बनिये। पर मैं तो सरूपका प्रेमी हूँ। मैं तो आपके सगुण-साकार रूपरसका प्यासा हूँ।

५४२—आपके चरणोंमें मेरा चित्त लगा है। मैं तो अज्ञानी ही हूँ। भला, बच्चा भी कहीं आपसे दूर रहने योग्य बननेके लिये सयानोंकी बराबरी कर सकता है ?

५४३—ज्ञानी पुरुषोंकी बराबरी मैं अजान होकर कैसे कर सकता हूँ। बच्चा जब सयाना हो जाता है तब माता उसे दूर रखती है; अजान शिशु तो माताकी गोदमें ही स्थान पाता है।

५४४—जो ब्रह्मज्ञानी हों उन्हें मोक्ष (छुटकारा) दे दो, पर मुझे मत

छोड़ो। मुझे मोक्ष नहीं चाहिये।

५४५—तुम्हारे नामका जो नेह लगा है, वह अब छूटनेवाला नहीं।

५४६—रसना तुम्हारे ही नामका रसिक हो गयी है, आँखें तुम्हारे ही चरणोंके दर्शनकी प्यासी हैं। यह भाव अब मेरा बदलनेवाला नही। इसलिये तुम अब मेरे इस प्रेमरसको सूखने मत दो । अपनेसे मुझे अब दूर मत करो। मैं तुम्हारा मोक्ष नहीं चाहता, तुम्हींको चाहता हूँ।

५४७—ऐसे मौन साधे क्यों बैठे हो । मेरी बातका जवाब दो । मेरा पूर्वसंचित सारा पुण्य तुम हो, तुम्हीं मेरे सत्कर्म हो, तुम्हीं मेरे स्वधर्म हो, तुम्हीं नित्य-नियम हो। हे नारायण ! मैं तुम्हारे कृपावचनोंकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

५४८—प्रेमियोंके हे प्रियतम ! हे सर्वोत्तम ! मुझसे बोलो । महाराज ! शरणागतको पीठ न दिखाओ, यही मेरी विनय है । जो तुम्हें पुकार रहे हैं, उन्हें चट उत्तर दो; जो दुःखी हैं, उनकी टेर सुनो; उनके पास दौड़े आओ। जो थके हैं उन्हें दिलासा दो और हमें न भूलो, यही तो हे नारायण ! मेरी तुमसे प्रार्थना है।

५४९—कम-से-कम एक बार यही न कह दो कि 'क्यों तंग कर रहे हो, यहाँसे चले जाओ।' हे हरि ! तुम ऐसे निठुर क्यों हो गये।

५५०—साधु-संतोंसे तुम पहले मिले हो, उनसे बोले हो; वे भाग्यवान् थे, क्या मेरा इतना भाग्य नहीं ? आजतक तुमने किसीको निराश नहीं किया; और मेरे जीकी लगन तो यही है कि तुमसे मिलूँ, इसके बिना मेरे मनको कल नहीं पड़ती।

५५१—अब तुम्हारी ही शरण ली है; क्योंकि तुम्हारा कोई भी दास विफलमनोरथ नही हुआ।

५५२—अकालपीड़ित भूखेके सामने मिष्टान्न परोसा हुआ थाल

आ जाय अथवा घातमें बैठी हुई बिल्ली मक्खनका गोला देख ले तो उसकी जो हालत होती है, वही मेरी हालत हुई है। तुम्हारे चरणोंमें मन ललचाया है, मिलनेके लिये प्राण सूख रहे हैं।

५५३—तुम्हारे बिना हे प्राणेश्वर ! मुझपर ममत्व रखनेवाला इस विश्वमें और कौन है ? किससे हम अपना सुख-दुःख कहें, कौन हमारी भूख-प्यास बुझायेगा ?

५५४—हमारे तापको हरनेवाला और कौन है ? हम अपना सवाल किससे लगावें ? कौन हमारी पीठपर प्यारसे हाथ फेरेगा ?

५५५—दौड़ी आओ, मेरी मैया ! अब क्या देखती हो ? अब धीरज नहीं रहा। वियोगसे व्याकुल हो रहा हूँ । अब जीको ठंडा करो, अबतक रोते ही बीता है। कब यह मस्तक तुम्हारे चरणोंमें रखूँगा, यही एक ध्यान है।

५५६—सोलह हजार तुम बन सकते हो, सोलह हजार नारियोंके लिये तुम सोलह हजार रूप धारण कर सकते हो, पर इस अधमके लिये एक रूप धारण करना भी तुम्हारे लिये इतना कठिन हो गया है।

५५७—भगवन् ! तुम्हारी उदारता मैं समझ गया। मैं तो तुम्हारे चरणोंपर मस्तक रखूँ और तुम अपने गलेका हार भी मेरी अञ्जलिमें न डालो। हाँ, समझा ! जो छाछ भी नहीं दे सकता, वह भोजन क्या करावेगा।

५५८—द्वारपर खड़ा मैं कबसे पुकार रहा हूँ, पर 'हाँ' तक कहनेकी जरूरत आप नहीं समझते ? कोई अतिथि आ जाय तो शब्दोंसे उसको संतोष दिलानेमें क्या खर्च हुआ जाता है ?

५५९—भगवन् ! तुम भरमाने-भटकानेमें बड़े कुशल हो तो मैं भी बड़ा अड़ियल हूँ। तुम्हें मौन साधे बैठे रहना ही अच्छा लगता है तो क्या

इतनेसे ही मैं तुम्हारा पल्ला छोड़ दूँगा ?

५६०—सचमुच ही परमात्मन्! तुमसे ही तो मैं निकला हूँ। तब तुमसे अलग कैसे रह सकता हूँ ?

५६१—भगवन्! तुम्हारे प्रेमकी खातिर, तुम्हारी एक बातके लिये, तुम्हारे दर्शन पानेके लिये मैं क्या नहीं कर सकता! पर आज्ञा तो दो, कुछ बोलो तो।

५६२—मेरा चित्त तुमसे मिलनेके लिये छटपटा रहा है और तुम ऐसे हो कि शायद देख रहे हो! मैं दोषी हूँ, अपराधी हूँ, पापी हूँ, इसलिये मुझपर क्रोध मत करो। इस अनजान बालकको रुलाओ मत।

५६३—अपनेको पापी कहूँ तो आपके चरणोंका स्मरण करता हूँ। मेरा पाप क्या आपके चरणोंसे भी अधिक बलवान् है ?

५६४—भगवन्! हम विष्णुदास हैं। हमारा सब बल-भरोसा तुम हो। पर इस कालको देखता हूँ हमारे ही ऊपर हुकूमत चला रहा है।

५६५—भगवन्! मैं तो आपका बच्चा हूँ न ? बच्चेसे क्या जोर अजमाना ? देखो, दीनानाथ! अपने विरदकी लाज रखो।

५६६—भगवन्! अब मेरा तिरस्कार करते हो ? ऐसा ही करना था तो पहले अपने चरणोंका स्नेह क्यों दिया ? हमारे प्राण ही लेने थे तो दृष्टिमें ही क्यों आये ?

५६७—भगवन्! मैंने अपना सम्पूर्ण शरीर आपके चरणोंमें समर्पित किया है और आप क्या मेरा छूत मानते हैं या मेरे सामने आते हुए लजाते हैं ? हृदयेश! प्रेम-दानकर मुझे मना लो।

५६८—आपके चरणोंमें क्या जोर अजमाऊँ ? मेरा तो यही अधिकार है कि दास होकर करुणाकी भिक्षा माँगूँ।

५६९—तुम्हारे श्रीमुखके दो शब्द सुन पाऊँ, तुम्हारा श्रीमुख देख लूँ, बस, यही एक आस लगी है।

५७०—भगवन् ! मुझसे आप कुछ बोलते नहीं । क्यों इतना दुखी कर रहे हैं । प्राण कण्ठमें आ गये हैं । मैं आपके वचनकी बाट जोह रहा हूँ । मैं भगवान्‌का कहाता हूँ और भगवान्‌से ही भेंट नहीं । इसकी मुझे बड़ी लज्जा आती है ।

५७१—भगवन् ! मेरे प्रेमका तार मत तोड़ो । आपकी कृपा होनेपर मैं ऐसा दीन-हीन न रहूँगा । पेट भरनेपर क्या संसारसे कहना पड़ता है कि मेरा पेट भरा ? तृप्ति चेहरेसे ही मालूम हो जाती है, चेहरेकी प्रसन्नता ही उसकी पहचान है ।

५७२—सतीको वस्त्रालङ्कार पहनाकर चाहे जितना सिंगारिये, पर जबतक पतिका सङ्ग उसे नहीं मिलता, तबतक वह मन-ही-मन कुढ़ा करती है, वैसे ही तुम्हारे दर्शन बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।

५७३—भगवन् ! तुमसे यदि मेरी प्रत्यक्ष भेंट नहीं हुई और कोरी बातें ही करते रहे तो ये संत मुझे क्या कहेंगे । इसको भी तनिक विचारो !

५७४—जिसने भगवान्‌के साक्षात् दर्शन नहीं किये, संतोंमें उसकी मान्यता नहीं । संत और भक्त वही है जिसे भगवान्‌का सगुण-साक्षात्कार हुआ हो । भोजनके बिना तृप्ति कहाँ ?

५७५—भगवान् आलिङ्गन देकर प्रीतिसे इन अङ्गोंको शान्त करेंगे और अमृतकी दृष्टि डालकर मेरे जीको ठंडा करेगे । गोदमें उठा लेंगे और भूख-प्यास भी पूछेंगे और पीताम्बरसे मेरा मुँह पोंछेंगे । प्रेमसे मेरी ओर देखते हुए मेरी ठुड्डी पकड़कर मुझे सान्त्वना देंगे । मेरे माँ-बाप हे विश्वम्भर ! अब ऐसी ही कुछ कृपा करो !

५७६—मेरे माँ-बाप ! मुझे प्रत्यक्ष बनकर दिखाइये । आँखोंसे देख लूँगा तब तुमसे बातचीत भी करूँगा, चरणोंमें लिपट जाऊँगा । फिर चरणोंमें दृष्टि लगाकर हाथ जोड़कर सामने खड़ा रहूँगा । यही मेरी उत्कट वासना है । नारायण ! मेरी यह कामना पूरी करो ।

५७७—अभिलाषा मेरी यह है कि आपकी-मेरी बातचीत हो और उससे सुख बढ़े ! आँखें भरकर आपका श्रीमुख देखूँ। यह मैं आपके चरणोंकी साक्षी रखकर सच-सच कहता हूँ।

५७८—तुम्हारा प्रेम-सुख छोड़कर हम जीवन्मुक्त किसलिये हों ? कौन ऐसा अभागा होगा जो इसे लात मार दे ?

५७९—हे गोपिकारमण ! अब मुझे अपना रूप दिखाओ, जिसमें मैं अपना मस्तक आपके चरणोंपर रखूँ। तुम्हारा श्रीमुख देखूँगा। तुम्हें आलिङ्गन करूँगा, तुम्हारे ऊपरसे राई-नोन उतारूँगा। तुम पूछोगे तब अपनी सब बात कहूँगा। एकान्तमें बैठकर तुमसे सुखकी बातें करूँगा।

५८०—मुझ अनाथके लिये हे नाथ ! अब तुम एक बार चले ही आओ।

५८१—तुम्हारे लिये जीव तड़फ रहा है। हृदय अकुला रहा है। चित्त तुम्हारे चरणोंमें लगा है। तुम्हारे बिना अब रहा नहीं जाता।

५८२—गरुड़के पैरोंपर बार-बार मस्तक रखता हूँ। हे गरुड़जी ! उन हरिको शीघ्र ले आइये, मुझ दीनको तारिये। भगवान्‌के चरण जिन लक्ष्मीजीके हाथोंमें हैं; उनसे गिड़गिड़ाता हूँ कि हे लक्ष्मीजी ! उन हरिको शीघ्र ले आइये और मुझ दीनको तारिये। हे शेषनाग ! आप हृषीकेशको जगाइये।

५८३—हे नारायण ! तुम्हें उन गोपालोंने अपने पुण्यवान् नेत्रोंसे कैसा देखा होगा। उनके उस सुखके लोभसे मेरा मन ललचाया है। मुझे वह आनन्द कब मिलेगा ? तुम्हारे श्रीमुखकी ओर टकटकी लगाये रहनेका आनन्द कैसा होगा ? अनुभवके बिना मैं उसे कैसे जानूँ ? तुम्हारा रूप इन आँखोंसे कब देखूँगा ? तुम्हारे आलिङ्गनका आनन्द कब लाभ करूँगा, चित्त प्रतिक्षण यही सोचता है।

५८४—वह श्यामघननील, उनका वह पीताम्बर, वह मुकुट, वे

कुण्डल, वह चन्दनकी खौर, वह निर्मल कौस्तुभमणि और वह वैजयन्ती माला, वह सुखनिर्मित श्रीमुख, ऐसे वह सुकुमार मदन-मूर्ति श्रीकृष्ण सामने खड़े हैं और उनके सखा गोपाल अनिमेष लोचनोंसे उनके सुन्दर मुखकमलकी ओर आनन्दानुभवसे स्थिर होकर देख रहे हैं, यह सम्पूर्ण दृश्य नेत्रोंके सामने नाच रहा है।

५८५—अपने नेत्रोंसे श्रीकृष्णको जीभर कब देखूँगा, श्रीकृष्ण अपनी बाँहोंसे मुझे कब अपनी छातीसे लगावेंगे, प्रतिक्षण मेरे चित्तमें यही लालसा लगी रहती है।

५८६—निगमके वनमें भटकते-भटकते क्यों थके जा रहे हो ? ग्वालोंके घर चले आओ, यहाँ वह रस्सीसे बँधे हैं।

५८७—गीताका जिन्होंने उपदेश किया वही मेरे कन्हैया यहाँ खड़े हैं।

५८८—तुम्हारा श्रीमुख और श्रीचरण मैं देखूँगा—जरूर देखूँगा। उसीमें मन लगा अधीर हो उठा है। पाण्डवोंको जब-जब कष्ट हुआ, तब-तब स्मरण करते ही तुम आ गये। द्रौपदीके लिये तुमने उसकी चोलीमें गाँठ बाँध दी। गोपियोंके साथ कौतुक करते हो, गौओ और ग्वालोंको सुख देते हो, अपना वही रूप मुझे दिखा दो। तुम तो अनाथके नाथ और शरणागतोंके आश्रय हो। मेरी यह कामना पूरी करो।

५८९—कृष्ण ही मेरी माता हैं, कृष्ण ही मेरे पिता हैं, जीके जीवन एक कृष्ण ही हैं।

५९०—अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके उदरमें हैं, वह हरि नन्दके घर बालक हैं।

५९१—अंदर हरि, बाहर हरि, हरिने ही अपने अंदर बंद कर रखा है।

५९२—कटिमें सुवर्णाम्बर सुशोभित हो रहा है और गलेमें

पैरोंतक वनमाला लटक रही है, उन सुन्दर मधुर घनश्यामको देखते हुए नेत्रोंसे मानों प्राण निकल पड़ते हैं।

५९३—श्रीकृष्ण लीलाविग्रह हैं, उनका शरीर लोकाभिराम और ध्यान-धारण मङ्गलप्रद है। वेदोंका जन्मस्थान, षट्शास्त्रोंका समाधान, षड्दर्शनोंकी पहेली—ऐसा यह श्रीकृष्णका पूर्णावतार है।

५९४—भक्तिका रहस्य जानना हो तो आओ, श्रीवृन्दावन-लीलाका आश्रय करो।

५९५—चारों वेद जिसकी कीर्ति बखानते हैं, योगियोंके ध्यानमें जो एक क्षणभरके लिये भी नहीं आता, वह ग्वालिनोंके हाथ बँध जाता है, भावुक ग्वालिनें उसे पकड़ रखती हैं। इन भक्तिनोंके पास वह गिड़गिड़ाता हुआ आता है और सयाने कहते हैं कि वह तो मिलता ही नहीं।

५९६—इन भोरी अहीरिनोंके पूर्वपुण्यका हिसाब कौन लगा सकता है, जिन्होने मुरारिको खेलाया-अन्तःसुखसे खेलाया और बाह्यसुखसे भी उन्हें पाकर अपनेको अर्पण कर दिया। भगवान्ने उन्हें अन्तःसुख दिया, जिन्होंने एकनिष्ठभावसे उन्हें जाना। श्रीकृष्णमें जिनका तन-मन लग गया, जो घर-द्वार और पति-पुत्रतकको भूल गयी, जिनके लिये धन, मान और स्वजन विष-से हो गये, वे एकान्तवनमें भगवान्के साथ जा मिलीं।

५९७—देहकी सारी भावना, सारी सुध-बुध बिसार दी; तब वही नारायणकी सम्पूर्ण पूजा-अर्चा है। ऐसे भक्तोंकी पूजा भगवान्, भक्तोंके जाने बिना ले लेते हैं और उनके माँगे बिना उन्हें अपना ठाँव दे देते हैं।

५९८—उन ग्वालिनोंका भी कैसा महान् पुण्य था, वे गाय, बछड़े और अन्य पशु भी कैसे भाग्यवान् थे। ग्वालिनोंको जो सुख मिला वह दूसरोंके लिये, ब्रह्मादिके लिये भी दुर्लभ है।

५९९—गोपियाँ रास-रंगमें समरस हुईं, उसी प्रकार हमारी चित्त-वृत्तियाँ श्रीकृष्णप्रेममें सराबोर हो जायँ।

६००—भक्तसमागमसे सब भाव हरिके हो जाते हैं, सब काम बिना बताये हरि ही करते हैं। हृदयसम्पुटमें समाये रहते हैं और बाहर छोटी-सी मूर्ति बनकर सामने आते हैं।

६०१—श्रीहरि सब भूतोंमें रम रहे है, जल, थल, काठ, पत्थर सबमें विराज रहे हैं; पृथ्वी, जल, अग्नि, समीर, गगन-इन पञ्च महाभूतोंको और स्थावर-जङ्गम सब पदार्थोंको व्यापे हुए हैं। उनके सिवा ब्रह्माण्डमें दूसरी कोई वस्तु ही नहीं, यही शास्त्र-सिद्धान्त हैं और यही संतोंका अनुभव है।

६०२—मनुष्य किसी भी वर्ण या जातिमें पैदा हुआ हो वह यदि सदाचारी और भगवद्भक्त है तो वही सबके लिये वन्दनीय और श्रेष्ठ है। कसौटी जाति नहीं है, कसौटी है साधुता-भगवद्भक्ति।

६०३—मैं अपना दोष और अपराध कहाँतक कहूँ ? मेरी दयामयी मैया ! मुझे अपने चरणोंमें ले ले। यह संसार अब बस हुआ। अब मेरा चिन्ता-जाल काट डालो और हे हृदयधन ! मेरे हृदयमें आकर अपना आसन जमाओ।

६०४—अपना चित्त शुद्ध हो तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं; सिंह और साँप भी अपना हिंसाभाव भूल जाते हैं, विष अमृत हो जाता है, आघात हित होता है, दुःख सर्वसुखस्वरूप फल देनेवाला बनता है, आगकी लपट ठंडी-ठंडी हवा हो जाती है । जिसका चित्त शुद्ध है, उसको सब जीव अपने जीवनके समान प्यार करते हैं । कारण, सबके अन्तरमें एक ही भाव है।

६०५—आघात करनेवाला लोहा भी पारसके स्पर्शमात्रसे सोना हो जाता है। दुष्टजन भी संतोंके स्पर्शमें आकर संत बन जाते हैं।

६०६—जो कोई नारायणका प्रिय हो गया, उसका उत्तम या कनिष्ठ वर्ण क्या? चारों वर्णोंका यह अधिकार है, उसे नमस्कार करनेमें कोई दोष नहीं।

६०७—चित्तकी उलटी चालमें मैं फँस गया था, मृगजलने मुझे भी धोखा दिया था, पर भगवान्‌ने बड़ी कृपा की जो मेरी आँखें खोल दीं। तुमने मेरी गुहार सुनी, इससे मैं निर्भय हो गया हूँ।

६०८—प्रभु अपने भक्तको दुःखी नहीं करते, अपने दासकी चिन्ता अपने ही ऊपर उठा लेते हैं। सुखपूर्वक हरिका कीर्तन करो, हर्षके साथ हरिके गुण गाओ। कलिकालसे मत डरो, कलिकालका निवारण तो सुदर्शनचक्र आप ही कर लेगा। भगवान् अपने भक्तोंको कभी छोड़ते ही नहीं।

६०९—हरिका नाम ही बीज है और हरिका नाम ही फल है। यही सारा पुण्य और सारा धर्म है। सब कलाओंका यही सार मर्म हैं। निर्लज्ज नामसंङ्कीर्तनमें सब रसोंका आनन्द एक साथ आता है।

६१०—सब तीर्थोंकी मुकुटमणि यह हरिकथा है—यह ऊर्ध्व-वाहिनी परमामृतकी धारा भगवान्‌के सामने बहती रहती है। भगवान्‌पर इस सुधाधाराका अभिषेक होता रहता है।

६११—संतोंका मुख्य कार्य जीवोंको मोह-मायाकी निद्रासे जगा देना होता है स्वयं जगे रहते हैं, दूसरोंको जगा देते हैं, जीवोंको अभय दान देते हैं और उनका दैन्य नष्ट कर उन्हें स्वानन्द साम्राज्यपदपर आरूढ़ करते हैं।

६१२—संतोंके उपकार माता-पिताके उपकारसे भी अधिक हैं। सब छोटी-बड़ी नदियाँ जिस प्रकार अपने नाम-रूपोंके साथ जाकर समुद्रमें ऐसी मिल जाती हैं जैसे उनका कोई अस्तित्व ही न हो, उसी प्रकार त्रिभुवनके सब सुख-दुःख संतोंके बोधमहार्णवमें विलीन हो जाते हैं।

६१३—खोल, खोल, आँखें खोल। बोल अभीतक क्या आँख नहीं खुली ? अरे, अपनी माताकी कोखसे क्या तू पत्थर पैदा हुआ ? तैंने जो यह नर-तनु पाया है, यह बड़ी भारी निधि है, जिस विधिसे कर सके इसे सार्थक कर। संत तुझे जगाकर पार उतर जायँगे, तू भी पार उतरना चाहे

तो कुछ कर।

६१४—अनेक योनियोंमें भटकनेके बाद यह नर-नारायणकी जोड़ी मिली है। नर-तनु-जैसा ठाँव मिला है, नारायणमें अपने चित्तका भाव लगा।

६१५—सुन रे सजन! अपने स्वहितके लक्षण सुन। मनसे गोविन्दका सुमिरन कर, नारायणका गुणगान कर, फिर बन्धन कैसा?

६१६—जो मन करेगा वही पाओगे। अभ्याससे क्या नहीं होता?

६१७—श्रीहरिकी शरणमें जाओ, उन्हींके होकर रहो, उनके गुणगानमें मग्न हो जाओ, संसार जो हौआ बनकर सामने आया है, इसे भगा दो और इसी देहसे, इन्हीं आँखोंसे मुक्तिका आनन्द लूटो।

६१८—दिन-रातका पता नहीं। यहाँ तो अखण्ड ज्योति जगमगा रही है। इसका आनन्द जैसे हिलोरें मारता है; उसके सुखका वर्णन कहाँतक करूँगा।

६१९—श्रीहरिके प्रसादसे सब दुःख नष्ट हो जाते हैं। यही भवरोगकी ओषधि है। जन्म, जरा, सब व्याधि और मृत्यु इससे दूर हो जाती हैं। उस श्यामसुन्दरकी छबिको अपनी आँखों देख लो, कुटिल, खल कामियोंका स्पर्श अपनेको न होने दो। मुखसे निरन्तर विष्णुसहस्रनामकी माला फेरते रहो।

६२०—बहुत बोलना छोड़ दो और सावधान होकर कुसङ्गसे बचते रहो।

६२१—अनुताप करते हुए भगवान्‌से यह कहो, मैं तो अनाथ हूँ, अपराधी हूँ, कर्महीन हूँ, मन्दगति और जडबुद्धि हूँ। हे कृपानिधे! हे मेरे माता-पिता! अपनी वाणीसे कभी मैंने तुम्हें याद नहीं किया। तुम्हारा गुण-गान भी न सुना और न गाया। अपना हित छोड़ लोकलाजके पीछे मरा फिरा। हरिकीर्तन, संतोंका सङ्ग कभी मुझे अच्छा नहीं लगा।

परनिन्दामें बड़ी रुचि थी, दूसरोंकी खूब निन्दा की। परोपकार न मैंने किया; न दूसरोंसे कभी कराया। दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेमें कभी दया न आयी। ऐसा व्यवसाय किया जो न करना चाहिये और उससे पाया तो क्या, अपने कुटुम्बका भार ढोता फिरा। तीर्थोंकी कभी यात्रा नहीं की, केवल इस पिण्डके पालन करनेमें ही हाथ-पैर मारता रहा। मुझसे न संत-सेवा बनी, न दान-पुण्य बना, न भगवान्‌की मूर्तिका दर्शन और पूजन-अर्चन ही बना। कुसङ्गमें पड़कर अनेक अन्याय और अधर्म किये। मैंने अपना-आप ही सत्यानाश किया, मैं अपना-आप ही वैरी बना। भगवन्! तुम दयाके निधान हो, मुझे इस भवसागरके पार उतारो!

६२२—भवसागरको तैरकर पार करते हुए चिन्ता किस बातकी करते हो? उस पार तो 'वह' कटिपर कर धरे खड़े हैं। जो कुछ चाहते हो उसके वही तो दाता हैं। उनके चरणोंमें जाकर लिपट जाओ! वह जगत्स्वामी तुमसे कोई मोल नहीं लेंगे, केवल तुम्हारी भक्तिसे ही तुम्हें अपने कंधेपर उठा ले जायँगे। प्रभु जहाँ प्रसन्न हुए तहाँ भुक्ति और मुक्तिकी चिन्ता क्या? वहाँ दैन्य और दारिद्र्य कहाँ?

६२३—संसारमें बने रहो, पर हरिको न भूलो। हरिनाम जपते हुए न्याय-नीतिसे सब काम करते चलो। इससे संसार भी सुखद होता है।

६२४—सुख-यव-बराबर है तो दुःख पहाड़-बराबर। संसारके विषयमें सबका यही अनुभव है। माँ-बाप, स्त्री-पुत्र, संगी-साथी, धन-दौलत, राजा-महाराजा कोई भी हमें क्या मृत्युसे बचा सकता है? यह शरीर तो कालका कलेवा है।

६२५—कौड़ी-कौड़ी जोड़कर करोड़ रुपये इकट्ठे करो, पर साथ तो एक लँगोटी भी न जायेगी।

६२६—संगी-साथी एक-एक करके चले। अब तुम्हारी भी बारी आवेगी। क्या गाफिल होकर बैठे हो? काल सिरपर सवार है, अब भी

सावधान हो जाओ, इससे निस्तार पानेका कुछ उपाय करो।

६२७—तुम्हारी देह तो नहीं रहेगी, इसे काल खा जायगा। अब भी जागो, नहीं तो धोखा खाओगे, नशेके बीच मारे जाओगे।

६२८—पर उपकार करो, पर-निन्दा मत करो, परस्त्रियोंको माँ-बहन समझो। प्राणिमात्रमें दया-भाव रखो।

६२९—घर-गृहस्थीके प्रपञ्चमें लगे रहते हुए भी एक बात न भूलना-यह क्षणकालीन द्रव्य, दारा और परिवार तुम्हारा नहीं है। अन्तकालमें जो तुम्हारा होगा वह तो एक श्रीहरि ही हैं, उसीको जाकर पकड़ो।

६३०—भगवान्‌को चाहते हो तो चित्तको मलिन क्यों रखते हो ? अभिमान, अकड़, आलस्य, लोकलज्जा, चञ्चलता, असद्‌व्यवहार, मनोमालिन्य इत्यादि कूड़ा-करकट किस लिये जमा किये हुए हो ? केवल बाहरी भेष बना लेनेसे थोड़े ही कोई भक्त होता है।

६३१—आग लगे उस बनावटी स्वाँगमें जिसके भीतर कालिमा भरी हुई है। वस्त्रोंको लपेटकर पेट बड़ा कर लेनेसे, गर्भवती होनेकी बात उड़ानेसे, दोहदका स्वाँग भरनेसे बच्चा थोड़े ही पैदा होता है, केवल हँसी होती है।

६३२—इन्द्रियोंका नियमन नही, मुखमें नाम नहीं, ऐसा जीवन तो भोजनके साथ मक्खी निगल जाना है। ऐसा भोजन क्या कभी सुख दे सकता है ?

६३३—संसारकी सारी आशाओं और अभिलाषाओंका त्याग किये बिना भगवान् नहीं मिलते ।

६३४—जो जी-जानसे भगवान्‌को चाहते हैं, वे अपने प्रेमको सावधानीसे बचाये रहें, प्रतिष्ठाको शूकरीविष्ठा समझ लें, वृथा वादमें न उलझें अहंकारी तार्किकोंके सङ्गसे दूर रहें और कोई ढोंग-पाखण्ड न रचें।

६३५—स्वाँग बनानेसे भगवान् नहीं मिलते। निर्मल चित्तकी प्रेमभरी चाह नहीं तो जो कुछ भी करो, अन्त केवल 'आह' है।

६३६—सबके अलग-अलग राग हैं। उनके पीछे अपने मनको मत बाँटते फिरो। अपने विश्वासको जतनसे रखो, दूसरेके रंगमें न आओ।

६३७—मिलो उन्हींमें जो सर्वतोभावसे समरसमें हों, वे ही तुम्हारे कुल-परिवार हैं। वाद-विवादमें पड़ोगे तो फन्देमें फँसोगे।

६३८—भक्तोंके मेलेका जो आनन्द है, उसका कुछ भी आस्वाद अविश्वासीको नहीं मिलता। वह सिद्धान्नमें कंकड़ीकी तरह अलग ही रहता है।

६३९—भगवान्‌की पूजा करो तो उत्तम मनसे करो। उसमें बाहरी दिखावेका क्या काम? जिसको जनाना चाहते हो वह अन्तरकी बात जानता है। कारण, सच्चोंमें वही सच है।

६४०—भक्तिकी जाति ऐसी है कि सर्वस्वसे हाथ धोना पड़ता है।

६४१—नेत्रोंमें अश्रु-बिन्दु नहीं, हृदयमें छटपटाहट नहीं तो भक्ति काहेकी? वह तो भक्तिकी विडम्बना है, व्यर्थका जन-मन-रंजन है। जबतक दृष्टिसे दृष्टि नहीं मिली तबतक मिलन नहीं होता।

६४२—अहंता नष्ट हो, भगवान्‌के स्तुति-पाठमें सच्ची भक्ति हो, हृदयकी सच्ची लगन हो, हरिचरणोंमें पूरी निष्ठा हो तब काम बने।

६४३—सेवकके तनमें जबतक प्राण हैं तबतक स्वामीकी आज्ञा ही उसके लिये प्रमाण है।

६४४—भगवान्‌के होकर रहो। ज्ञानलव-दुर्विदग्ध तार्किकोंकी अपेक्षा अपढ़, अनजान, भोले-भाले लोग ही अच्छे होते हैं। मूर्ख बल्कि अच्छे है, वे विद्वान् तार्किक तो किसी कामके नहीं।

६४५—भगवान्‌के लिये सर्वस्वसे हाथ धोनेको तैयार हो जाना पूर्व-पुण्यके बिना नसीब नहीं होता।

६४६—इस संसारमें आये हो तो अब उठो, जल्दी करो और उन उदार प्रभुकी शरणमें जाओ। यह देह तो देवताओंकी है, धन सारा कुबेरका है, इसमें मनुष्यका क्या है ? देने-दिलानेवाला, ले जाने-लिवा ले जानेवाला तो कोई और ही है। इसका यहाँ क्या धरा है; रे मूरख ! क्यो नाशवान्‌के पीछे भगवान्‌की ओर पीठ फेरता है ?

६४७—भगवान्‌ने जो इन्द्रियाँ दी हैं उन्हें भगवान्‌के काममें क्यों नहीं लगा देते ? मुखसे हरिका कीर्तन करो, कानोंसे उनकी कीर्ति सुनो, नेत्रोंसे उन्हींका रूप देखो । इसीके लिये तो ये इन्द्रियाँ हैं।

६४८—संसारका बोझ सिरपर लादे हुए दौड़नेमें बड़े खुश हैं। अरे निर्लज्ज ! अपने संसारीपनपर—बैलकी तरह इस बोझके ढोनेपर इतना क्यों इतराता है ?

६४९—परद्रव्य और परनारीका अभिलाष जहाँ हुआ वहींसे भाग्यका ह्रास आरम्भ हुआ।

६५०—परस्त्री और परधन बड़े खोटे हैं । बड़े-बड़े इनके चक्करमें मटियामेट हो गये। इन दोनोंको छोड़ दे, तभी अन्तमें सुख पायेगा।

६५१—राम और कृष्ण नाम सीधे-सीधे लो और उस श्यामरूपको मनसे स्मरण करो।

६५२—पेटमें अन्न न हो तो शृंगारकी क्या शोभा। उसी प्रकार श्रीहरिके प्रेम बिना कोई ज्ञान किसी कामका नहीं।

६५३—श्रीहरि-गोविन्द-नामकी धुन जब लग जायगी तब यह काया भी गोविन्द बन जायगी, भगवान्‌से कोई दुराव, कोई भेद-भाव नहीं रह जायगा। मन आनन्दसे उछलने लगेगा, नेत्रोंसे प्रेम बहने लगेगा। कीट भृङ्ग बनकर जैसे कीटरूपमें फिर अलग नहीं रहता वैसे तुम भी भगवान्‌से अलग नहीं रहोगे।

६५४—सकुचकर ऐसे छोटे क्यों बन गये हो। ब्रह्माण्डका

आचमन कर लो। पारण करके संसारसे हाथ धो लो। बहुत देर हुई, अब देर मत करो।

६५५—शास्त्र जिस चीजको छोड़ देनेको कहे, उसे, चाहे वह राज्य ही क्यों न हो, तृणवत् त्याग दे। शास्त्र जिसे ग्रहण करनेको कहे,चाहे वह विष ही क्यों न हो, उसे जरूर ग्रहण करे।

६५६—मार्गमें अंधेके आगे जैसे आँखवाला चलकर उसे रास्ता बताता है, उसी तरह संत महापुरुष भी धर्मका आचरण करके जो अज्ञानी हैं उन्हें धर्मका तत्त्व बतलाते हैं।

६५७—संत पहाड़की चोटीपर खड़े होकर पुकार रहे हैं—भगवान्‌की शरण लो, प्राणिमात्रमें उसीका भजन करो। गो, खर, गज, श्वान सबको समानरूपसे वन्दन करो।

६५८—जन्मके प्रसङ्गसे स्त्री-देहका जो स्पर्श हुआ सो हुआ, पर उसके बाद सम्पूर्ण जीवनमें कभी वह स्पर्श न हो—ऐसा जिसका कठिन ब्रह्मचर्य है वही सच्चा ब्रह्मचारी है।

६५९—फिर चलो, फिर चलो रे जीव! नही तो गोते खाओगे। मायानदीकी इस बाढ़में बह जाओगे। भवनदीका पानी, प्यारे! बड़े वेगसे खींचता है और बड़े-बड़े तैराकोंको उठाकर नीचे गिराता है। संसार क्षणभङ्गुर है, इसका कोई भरोसा नहीं। यह दुर्लभ नरतन छूट जायगा तब पीछे पछताओगे।

६६०—जो गये हुएका स्मरण नहीं करता, मिले हुएकी इच्छा नहीं रखता, अन्तःकरणमें मेरुके समान अचल रहता है, जिसका अन्तःकरण मैं-मेरा भूला रहता है वही निरन्तर संन्यासी है।

६६१—निरन्तर सदभ्यास करो, चित्तको परमपुरुषके मार्गमें लगा दो, फिर शरीर रहे चाहे जाय।

६६२—अपनी पूज्यता अपनी आँखों न देखे, अपनी कीर्ति अपने

कानों न सुने, ऐसा न करे जिससे लोग यह पहचान लें कि यह अमुक है। बृहस्पतिके समान सर्वज्ञता प्राप्त हो तो भी महिमाके भयसे अज्ञानियोंकी भाँति रहे। अपना चातुर्य छिपावे, अपना महत्त्व बिसार दे और अपना बावलापन लोगोंको दिखावे।

६६३—दुलत्ती झाड़नेवाली गौ जैसे अपना दूध चुराती है, वेश्या जैसे अपनी वयस् चुराती है, कुलवधू जैसै अपने अङ्ग छिपाती है वैसे ही अपना सत्कर्म छिपाओ।

६६४—कमलपर भौंरे जो पैर रखते है, बड़े हल्के रहते हैं; इस भयसे कि कहीं केसर कुचल न जाय । उसी प्रकार सर्वत्र परमाणुवत् जीव भरे हुए हैं, यह जानकर संत-महात्मा दयावृत्तिसे धरतीपर बहुत ही हल्के पैर रखता है। वह समस्त प्राणियोंके नीचे अपना जी बिछाता है।

६६५—ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे संत स्वभावतः सह न ले; और वह सह लेता है इसका उसे कोई स्मरण भी नहीं रहता।

६६६—साधुके लिये अपना-पराया कुछ भी नही, सारे विश्वसे ही उसकी जान-पहचान है, बड़ा पुराना नाता है। हवाका चलना जैसे सीधा होता है वैसे ही उसका भाव सरल होता है, उसमें शङ्का या आकांक्षा नही होती।

६६७—माँके पास जाते बच्चेको जैसे कोई सोच-संकोच नहीं होता, वैसे ही संतके लिये लोगोंको अपना मन देते कोई शङ्का नहीं होती। उसके लिये कोई कोना-अँतरा नहीं हुआ करता। उसकी दृष्टिमें कपट नहीं होता, बोलनेमें संदेह नहीं होता। दसों इन्द्रियाँ उसकी सरल, निष्प्रपञ्च और निर्मल होती हैं और उसके पञ्चप्राणोंके स्तर आठों प्रहर मुक्त रहते हैं।

६६८—भागते हुए मेघोंके साथ आकाश नहीं दौड़ता, वैसे ही संत पुरुषका मन चलते हुए शरीरके साथ नहीं चला करता, ध्रुव-जैसा स्थिर रहता है।

६६९—समुद्रमें गङ्गाजल जैसे मिलकर भी मिलता रहता है, वैसे ही संत पुरुष भगवत्स्वरूप होकर भी भगवान्‌को सर्वस्व देकर भजता रहता है।

६७०—जो तीर्थोंमें, पवित्र जलाशयोंके किनारे, सुन्दर तपोवनोंमें और गुहाओंमें रहना पसंद करता है, एकान्तसे जिसकी अत्यन्त प्रीति होती और जनपदसे जिसका जी ऊबा हुआ होता है, उसे ज्ञानकी मनुष्याकार मूर्ति ही जानो।

६७१—पञ्चतत्त्वोंकी देह बनी और फिर कर्मोंके गुणोंसे बँधकर जन्म-मृत्युका चक्कर काट रही है। कालानलके कुण्डमें यह मक्खनकी आहुति है। मक्खीका पङ्ख हिलते-न-हिलते इसका काम तमाम हो जाता है। इस देहकी तो यह दशा है!

६७२—भगवान् प्रेम, सुख और शान्तिके निकेतन हैं। प्रेम, सुख और शान्ति उनका स्वरूप ही है।

६७३—शक्ति, बुद्धि, स्वतन्त्रता रहते दूसरोंकी देखा-देखी कल्याणकारी धर्ममार्गकी उपेक्षा करके सर्वथा अहितकर अधर्मके मार्गपर चलना अपनी ही आन्तरिक दुर्बलताका द्योतक है।

६७४—कायेन, वाचा, मनसा अपने पास जो द्रव्य हो उसके द्वारा वैरी भी आर्त होकर आवे तो उसे विमुख न जाने देना; वृक्ष जैसे फूल, फल,छाया, मूल, पत्र सब कुछ जो कोई पथिक आ जाय उसके सामने हाजिर करनेमें नहीं चूकता, वैसे ही प्रसङ्गानुसार श्रान्त पथिक कोई आ जाय तो अपने धन-धान्यादिके द्वारा उसके काम आना। इसका नाम है दान।

६७५—दान सर्वस्व देना ही है, अपने लिये खर्च करना व्यर्थ गँवाना है। ओषधि दूसरोंको फल देती है और स्वयं सूख जाती है। उसी प्रकार हे वीर! स्वरूपकी प्राप्तिके लिये प्राण, इन्द्रिय और शरीरको घिसना ही तप है।

६७६—अपने गुणोंसे दूसरोंके दोष दूर करके उनकी ओर देखना

चाहिये।

६७७—सात्त्विक ज्ञान वही है जिसमें उस ज्ञानके साथ ज्ञाता और ज्ञेय हृदयमें एक हो जाते हैं। सूर्य जैसे अन्धकारको नहीं देखता, नदियाँ समुद्रको नहीं देखतीं, अपनी छाया अपनेसे अलग करके पकड़ी नहीं जाती, वैसे ही जिस ज्ञानको शिवादिसे लेकर तृणपर्यन्त अपनेसे भिन्न नहीं दिखायी देते वह सात्त्विक ज्ञान है, वही मोक्ष-लक्ष्मीका भुवन है।

६७८—अरे! अदनेसे राजाके साथ सोनेवाली दासी भी राजाकी बराबरी करती है। फिर मैं तो साक्षात् विश्वेश्वर हूँ। मेरे मिलनेपर भी जीव-ग्रन्थि न छूटे ऐसा कैसे हो सकता है? ऐसा निपट झूठ कानमें भी न पड़ने दो।

६७९—दोनों दर्पण उठकर एक दूसरेके आमने-सामने आ गये। अब बताइये कौन किसको देख रहा है।

६८०—हौएसे डरना बचपनमें होता है। पर जो बच्चे नहीं हैं, उनके लिये हौआ क्या? वैसे ही मृत्युको भी कौन माने।

६८१—फल देकर फूल सूख जाता है, फल रस पकनेपर नष्ट होता है। रस भी तृप्ति देकर समाप्त होता है। आहुतिको अग्निमें डालकर हाथ हट जाता है। गीत आनन्द पाकर मौन हो जाता है। वैसे ही सत्-चित्-आनन्द-पद द्रष्टाको दिखाकर मौन हो जाते हैं।

६८२—भगवान्के द्वारपर पलभर तो खड़े रहो।

६८३—चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारहों पुराण हरिके ही गीत गाते हैं।

६८४—दिन-रात प्रपञ्चके लिये इतना कष्ट करते हो, भगवान्को क्यों नहीं भजते?

६८५—जप, तप, कर्म, धर्म, हरिके बिना सब श्रम व्यर्थ हैं।

६८६—हरि, हरि, हरि! जिसकी वाणी यह मन्त्र जपती है उसे

मोक्ष मिलता है।

६८७—शास्त्रका प्रमाण है, श्रुतिका वचन है कि 'नारायण' ही सब जापोंका सार है।

६८८—भाव मत छोड़। संदेह छोड़ दे; गला फाड़कर राम-कृष्णको पुकार।

६८९—एक नामका ही तत्त्व मनसे दृढ़ धर ले। हरि तुझपर करुणा करेंगे।

६९०—'राम-कृष्ण-गोविन्द' नाम सरल है। गद्गद होकर वाणीसे इसका पहले जप कर।

६९१—नामसे बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है। व्यर्थ और रास्तोंमें मत भटक।

६९२—हरिके बिना यह सारा संसार झूठा व्यवहार है; व्यर्थका आना-जाना है।

६९३—नाम-मन्त्र-जपसे कोटि पाप नष्ट होगा। कृष्णनामका संकल्प पकड़े रह।

६९४—निरन्तर हरिका ध्यान करनेसे सब कर्मोंके बन्धन कट जाते हैं। राम-कृष्ण-नाम-उच्चारणसे सब दोष दिगन्तमें भाग जाते हैं।

६९५—हे गोपाल ! हे हरि ! हे जगत्त्रयजीवन ! यह मन तेरे ही ध्यानमें लग जाय, एक क्षण भी खाली न जाय।

६९६—तन-मन तेरे ही चरणोंमें शरणालङ्कृत किये है। रुक्मिणीदेवी-वर मेरे बाप हैं। मैं और कुछ नहीं जानता।

६९७—हरि आदिमें हैं, हरि अन्तमें है, हरि सब भूतोंमें व्यापक हैं। हरिको जानो, हरिको बखानो, वही मेरे माँ-बाप है।

६९८—हृदयमें भगवान्‌के निराकार रूपका ध्यान नेत्रोंसे भगवत्-लीलाका दर्शन और जीभसे राम-नामका जप। इतना हो सके तो

फिर और करना ही क्या रहा ?

६९९—श्रीरामके नामका स्मरण करो। यह संजीवनी ओषधि है।

७००—जिसकी कहीं गति नहीं, उसके लिये एकमात्र अवलम्बन राम-नाम है।

७०१—अलख-अलख क्या बकता फिरता है, एक सीधा मुक्तिका मार्ग श्रीराम-नाम जप।

७०२—अनेक जन्मोंकी बिगड़ी हुई आज अभी सुधर जाय, यदि तू बुरी संगति छोड़कर श्रीरामका होकर श्रीराम-नामका जप करने लगे।

७०३—राम-नाम स्मरण करनेसे सब सिद्धियाँ हाथ आ जाती है और प्रत्येक पगपर परम आनन्द प्राप्त होता है।

७०४—श्रीरामका मुझे सहारा हो; रामका बल हो, राम-नाममें विश्वास हो और आनन्द-मङ्गलके साथ मैं श्रीराम-नामका स्मरण करूँ। लोक और परलोकका बनानेवाला श्रीराम-नाम ही है।

७०५—श्रीरामका स्मरण करते ही जो हृदय प्रेमसे पिघल नहीं उठता, वह फट जाय; जिन नेत्रोंमें आँसू नहीं आते, वे फूट जायँ और जो शरीर पुलकित नहीं होता, वह जल जाय।

७०६—हरिका सुयश सुनकर जिन नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक न आवें उनमें तो मुट्ठीभर धूल डाल देनी चाहिये।

७०७—हे मन ! सबसे फीका हो, केवल श्रीहरिसे ही सरस रह।

७०८—अब तुझे पाकर औरोंके सामने हाथ क्या पसारूँ ? प्रभुका होकर जगत्से अब क्या याचना ?

७०९—जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष और श्रीहरि-चरणोंमें प्रीति। बस, इसके आगे सुख है क्या वस्तु।

७१०—अपने निर्वाहके लिये जो चिन्ता अथवा प्रपञ्च नहीं करता वही सच्चा विश्वासी है।

७११—जिसका मन पवित्र नहीं उसका कोई काम पवित्र नहीं होता।

७१२—जो आँखें ईश्वरकी ताबेदारीमें रहना भला नहीं मानतीं, उनका तो फूट जाना ही अच्छा है। जो जीभ ईश्वरकी चर्चा नहीं करती, वह गूँगी ही रहे तो अच्छा। जो कान सत्य नहीं सुनते वे बहरे ही रह जायँ तो अच्छा और जो तन ईश्वरकी सेवामें नहीं लगता, उसका न रहना ही अच्छा है।

७१३—जन्मके पहले तू ईश्वरका जितना प्यारा था, उतना ही मृत्युपर्यन्त बना रहे ऐसा आचरण कर।

७१४—धन-दौलत कमानेके पीछे क्यों पड़े हुए हो? तुम्हारी जरूरियातोंको पूरा करने और तुम्हारी देखभाल रखनेका सारा भार तो ईश्वरने ही ले रक्खा है। यदि उसका भरोसा करोगे तो सब तरहसे शान्ति और सुख पाओगे।

७१५—जो इस नाशवान् संसारमें आसक्त नहीं है, वही अनुभवसिद्ध ज्ञानी ऋषि है। तल्लीन होकर ईश्वरका गुण गाना, मत्त होकर संगीत सुनना और प्रभुकी अधीनता मानकर काम करना ही संतका धर्म है।

७१६—प्रायश्चित्तकी तीन सीढ़ियाँ हैं—आत्मग्लानि, दूसरी बार पाप न करनेका निश्चय और आत्मशुद्धि।

७१७—प्रभुके मार्गमें प्राणतक देनेकी तैयारी न हो तो उसके प्रति प्रेम है, ऐसा मानना ही नहीं चाहिये।

७१८—ईश्वरमें निमग्न होनेमें ही अपने मनका नाश है।

७१९—अन्तःकरणमें उपजा हुआ ईश्वर-दर्शनका एक कण-जितना उत्साह भी स्वर्गके लाखों मन्दिरोंमें जानेकी मिठाससे भी अधिक मीठा है।

७२०—सच्चा संत जब बाहरसे चुपचाप होता है तब वह भीतर-ही-भीतर ईश्वरसे बात करता रहता है और जब उसके नेत्र मुँदे होते हैं तब वह ईश्वरकी महिमा अथवा उसके स्वरूपको देखता रहता है।

७२१—भले ही तुम पैदल चलते रहो; परन्तु मनपर तो सवारी गाँठे

ही रहना।

७२२—ईश्वरको जानकर भी उससे प्रेम न करना असम्भव है। जो परिचय प्रेमशून्य है, वह परिचय ही नही।

७२३—ईश्वर जिसपर खुश होता है, उसे नदीकी-सी दानशीलता, सूर्यकी-सी उदारता और पृथ्वीकी-सी सहनशीलता प्रदान करता है।

७२४—ये सब वाद-विवाद शब्दाडम्बर और अहंता-ममता तो परदेके बाहरकी बातें है। परदेके भीतर तो नीरवता, स्थिरता, शान्ति और आनन्द व्याप्त है।

७२५—साधनाके लिये जो कुछ करना पड़े सब करना, परन्तु उसमें भी प्रभुकृपाका प्रताप ही समझना, अपना पुरुषार्थ नहीं।

७२६—जो ईश्वरके नजदीक आ गया, उसे किस बातकी कमी ? सभी पदार्थ और सारी सम्पत्ति उसकी ही है; क्योंकि उसका परमप्रिय सखा सर्वव्यापी और सारी सम्पत्तिका स्वामी है।

७२७—जो अपना परिचय ईश्वर-ज्ञानी कहकर देता है वह मिथ्याभिमानी है, जो यह कहता है कि मैं उसे नहीं जानता वही बुद्धिमान् है।

७२८—सारी दुनिया तुझे अपना ऐश्वर्य और स्वामित्व भी सौंप दे तो तू फूल न जाना और सारी दुनियाकी गरीबी भी तेरे हिस्सेमें आ जाय तो उससे नाराज न होना। चाहे जैसी हालत हो, एक उस प्रभुका काम बजानेका ध्यान रखना।

७२९—जो मनुष्य लौकिक लालसाके वशमें होकर ऋषि-मुनियोंके हृदयस्थ हरिकी आवाजकी अवगणना करता है, उसे तो ग्लानिका कफन ओढ़कर अपमानकी श्मशान-भूमिमें ही जलना पड़ता है; और जो इन्द्रियों और भोगेच्छाको दुर्बल बनाकर लौकिक पदार्थोंसे दूर रहता है, वह सत्य, सुख; शान्तिकी चादर ओढ़कर सम्मानकी भूमिमें स्वयं श्रीहरिकी गोदमें सो जाता है।

७३०—ईश्वरको जाननेवालेका हृदय निर्मल काँचकी हाँड़ीमें जलते हुए दीपकके समान है। उसका प्रकाश सर्वत्र फैलता है। खुद उसे तो फिर डर ही कैसा ?

७३१—इन असंख्य तारों और नभमण्डलके सिरजनहारकी नजर तू जहाँ कहीं भी होगा वहीं रहेगी—ऐसा विचारकर सदा-सर्वदा, सावधान और पवित्र रहना।

७३२—किन-किन बातोंसे ईश्वरकी प्राप्ति होती है ? गूँगे, बहरे और अन्धेपनसे। प्रभुके सिवा न कुछ बोलो, न सुनो और न देखो।

७३३—मनुष्यका सच्चा कर्तव्य क्या है ? ईश्वरके सिवा किसी दूसरी चीजसे प्रीति न जोड़ना।

७३४—ईश्वरके भजन-पूजनमें जो दुनियाकी सारी चीजोंको भूल जाता है, उसे सभी चीजोंमें ईश्वर-ही-ईश्वर दिखलायी देने लगता है।

७३५—सभी हालतोंमें प्रभु और प्रभुभक्तोंका दास होकर रहना ही अनन्य और एकनिष्ठ भक्ति करना है।

७३६—अपने प्यारेके श्रवण, मनन, कीर्तन आदिमें जो बाधाएँ है, उन्हें दूर करना सच्चे प्रभु-प्रेमका चिह्न है।

७३७—भीतरसे प्रभुकी प्रगाढ़ भक्ति करना, किंतु बाहरसे उसे प्रकट न होने देना साधुताका मुख्य चिह्न है।

७३८—ईश्वरकी उपासनामें मनुष्य ज्यों-ज्यों डूबता जाता है, त्यों-त्यों प्रभुदर्शनके लिये उसकी आतुरता बढ़ती जाती है। यदि एक पलके लिये भी उस प्रभुका साक्षात्कार हो जाता है तो वह उस स्थितिकी अधिकाधिक इच्छामें लीन हो जाता है।

७३९—जो साधक हजारों भवनोंकी दौलतके भी लुभाये न लुभा, वही ईश्वरके बारेमें बात करने लायक है।

७४०—जो मनकी मलिनतासे रहित, दुनियाके जंजालसे मुक्त और लौकिक तृष्णासे विमुख है, वही सच्चा संत है।

७४१—जिस किसीने साधु पुरुषोंका सहवास किया है, वही ईश्वरको पा सका है।

७४२—जब मेरी जीभ अद्वितीय ईश्वरकी महिमा और गुण गाने लगी, तब मैंने देखा भूलोक और स्वर्गलोक मेरी प्रदक्षिणा कर रहे हैं। हाँ, लोग इसे देख नहीं पाये।

७४३—ईश्वरको पानेके लिये जिसका हृदय तरस रहा है, उसीका जन्म धन्य है, उसीकी माता धन्य है। कारण, उसका सर्वस्व तो उस ईश्वरमें समाया हुआ है।

७४४—जो मनुष्य ईश्वरमें लीन रहता है और सुनने तथा देखने लायक उसीको समझता है, उसने सब कुछ सुन लिया है, देख लिया है और जान लिया है।

७४५—अगर तुम दुनियाकी खोजमें जाओगे तो दुनिया तुमपर चढ़ बैठेगी, उससे विमुख होओगे तब ही उसे पार कर सकोगे।

७४६—फकीर वह है जिसे आज और कल—किसी दिनकी परवा नहीं, जो अपने और प्रभुके सम्बन्धके आगे लोक और परलोक दोनोंको तुच्छ समझता है।

७४७—बिना ईश्वरका नाम लिये कोई भी बात विचारने अथवा करनेसे बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ता है।

७४८—जो प्रभुको पाता है, वह अपने रूपमें न रहकर प्रभुके रूपमें समा जाता है।

७४९—मुँह बंद रखो। ईश्वरके सिवा दूसरी बात ही मत करो। मनमें भी ईश्वरके सिवा और किसी बातका चिन्तन न करो। इन्द्रियों और अपने कार्योंके द्वारा वैसे ही काम करो जिनसे ईश्वर खुश हो।

७५०—एकान्तमें प्रभुके साथ बैठनेवालेका लक्षण है संसारकी सब वस्तुओं और दूसरे सब मनुष्योंकी अपेक्षा प्रभुहीको अधिक प्यार करना।

७५१—जो छोटे-छोटे प्राणियोंसे प्यार नहीं कर सकता, वह ईश्वरसे क्या प्यार करेगा ?

७५२—संतों और भक्तोंकी सेवा करना, उनके उपदेशोंको श्रवण करना, उनके संग रहना और उनके आचरणोंका अनुकरण करना यही सच्चा सुख प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है।

७५३—भगवान् नारायण ही सर्वोपरि हैं और उनके चरणोंमें अपनेको सर्वतोभावेन समर्पित कर देना ही कल्याणका एकमात्र उपाय है।

७५४—यदि माता खीझकर बच्चेको अपनी गोदसे उतार भी देती है तो भी बच्चा उसीमें अपनी लौ लगाये रहता है और उसीको याद करके रोता-चिल्लाता और छटपटाता है। उसी प्रकार हे नाथ ! तुम चाहे मेरी कितनी उपेक्षा करो और मेरे दुःखोंकी ओर ध्यान न भी दो तो भी मैं तुम्हारे चरणोंको छोड़कर और कहीं नहीं जा सकता। तुम्हारे चरणोंके सिवा मेरे लिये कोई गति ही नहीं।

७५५—यदि पति अपनी पतिव्रता स्त्रीका सबके सामने तिरस्कार भी करे तो भी वह उसका परित्याग नहीं कर सकती। इसी प्रकार चाहे तुम मुझे कितना ही दुतकारो, मैं तुम्हारे अभय-चरणोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं जानेकी बात भी नहीं सोच सकता। तुम चाहे मेरी ओर आँखें उठाकर भी न देखो, मुझे तो केवल तुम्हारा और तुम्हारी कृपाका ही अवलम्बन है।

७५६—तुम्हारे चरणोंको छोड़कर मैं जाऊँ भी कहाँ ? मेरे लिये और आश्रय ही क्या है ? तुम चाहे मेरे कष्टोंका निवारण न करो, मेरा हृदय तो तुम्हारी ही दयासे द्रवीभूत होगा।

७५७—बादल चाहे किसानको भूल जाय, परंतु किसान तो सदा निर्निमेष दृष्टिसे बादलकी ओर ही ताकता रहता है। इसी प्रकार हे नाथ!

मेरी अभिलाषाके एकमात्र विषय तुम ही हो। जो तुम्हें चाहता है, उसे त्रिभुवनकी सम्पत्तिसे कोई मतलब नहीं।

७५८—जिसका चित्त अखिल सौन्दर्यके भण्डार भगवान् नारायण-के चरणकमलोंका चंचरीक बन चुका है, वह क्या एक नारीके रूपपर आसक्त हो सकता है ? जबतक जगत्के किसी भी पदार्थमें आसक्ति है तबतक प्रभुचरणोंमें प्रीति कहाँ ?

७५९—हे प्रभो ! अब ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी वाणी केवल तुम्हारा ही गुणगान करे, मेरे हाथ तुम्हारे ही पैर पलोटें, मेरा मस्तक तुम्हारे ही चरणोंमें झुके, मेरे नेत्र सर्वत्र तुम्हारे ही दर्शन करें; मेरे कान तुम्हारे ही गुणोंका श्रवण करें, मेरे चित्तके द्वारा तुम्हारा ही चिन्तन हो और मेरे हृदयको तुम्हारा ही स्पर्श प्राप्त हो।

७६०—किसी जंगली हिरनको फँसानेके लिये पालतू हिरनकी आवश्यकता होती है, इसी प्रकार भगवान् नारायण भी भक्तोंके द्वारा ही संसारासक्त जीवोंका उद्धार करते हैं।

७६१—जो आदमी अपना सारा संसार और अपने जीवनको प्रभुके अर्पण नहीं कर देता, वह दुनियाके इस भयानक जंगलको पार कर ही नहीं सकता।

७६२—ईश्वरका स्मरण करो तो ऐसा कि फिर दूसरी बार उसे याद ही न करना पड़े।

७६३—शरीर, वाणी, मन तीनों मेरे नहीं। उन्हें तो मैं ईश्वरको सौंप चुका हूँ। मेरा न लोक है, न परलोक। दोनोंकी जगह हैं परमेश्वर।

७६४—अपने सब काम भूलकर सदा ईश्वरका स्मरण करते रहो।

७६५—अगर उस करुणासागरकी करुणाकी एक बूँद भी तुमपर गिर जाय, तो दुनियामें किसीसे कुछ भी माँगनेकी तुम्हें जरूरत नही रह जायगी।

७६६—बस, यही करना है कि हम केवल भगवान्‌पर निर्भर करना सीख लें; अपना सब कुछ उन्हें सौंपकर उनके हाथकी कठपुतली बन जायँ। वे जब, जो, जैसे करें—उसीमें हमें आनन्दका अनुभव हो।

७६७—भगवदाश्रय और भगवन्नामसे पापोंका समूल नाश हो जाता है, यह निश्चित है।

७६८—मनुष्यके किसी भी प्रयत्नसे भगवान्‌की प्राप्ति असम्भव ही है। प्रभुकी प्राप्तिका एकमात्र मार्ग प्रेम ही है। यह प्रेम शुद्ध, सात्त्विक और निष्काम होना चाहिये।

७६९—ईश्वर आनन्दमय हैं, वे लीला-रस-विस्तारके लिये ही सृष्टि-रचना करते हैं। इस सृष्टिमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। अनादिकालसे विलग हुए जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही उनके द्वारा सृष्टिलीलाका सूत्रपात होता है।

७७०—परमात्माके दर्शनमें लीन होकर उसका स्मरण करना भी भूल जाओ, यही ऊँचा-से-ऊँचा स्मरण है।

७७१—सारे संसारका एक ग्रास बनाकर भी यदि बालकके मुँहमें दे दिया जाय तो भी वह भूखा ही रहेगा। जिसका मन खान-पान और गहने-कपड़ेमें ही बसा है, उसकी स्थिति पशुसे भी गयी-बीती है।

७७२—दुनियाकी सारी चीजोंसे मुँह मोड़कर एकमात्र प्रभुकी ओर लग जाओ। इस दुनियाको आज नहीं तो कल छोड़ना ही है।

७७३—ईश्वर अपने भक्तसे बार-बार कहता है कि तू दुनियासे विमुख हो जा और मेरी ओर आ। और कुछ चाहे जितना करता रह, पर याद रख, बिना मेरी ओर आये तुझे सच्ची शान्ति और सुख मिलनेका ही नहीं। इसलिये पूछता हूँ—कबतक तू मुझसे भागता फिरेगा, कबतक मुझसे विमुख रहेगा ?

७७४—पहनने-ओढ़नेमें सादगीका ख्याल रखना। शौकीनीकी

पोशाक और आडंबरसे परे ही रहना।

७७५—भक्त ज्यों ही प्रभुका सर्वभावसे आश्रय लेता है, त्यों ही परमेश्वर उसकी रक्षा, योगक्षेमका सारा भार अपने हाथोंमें ले लेते हैं।

७७६—ईश्वरपर सतत दृष्टि रखना ही ईश्वरीय ज्ञानका फल है।

७७७—पूरे जागे हुए मनका यही अर्थ है कि ईश्वरके सिवा दूसरी किसी चीजपर चले ही नहीं। जो मन हरिकी प्रीतिमें डूब गया, फिर उसे दूसरे किसीकी क्या जरूरत ?

७७८—जैसे मलसे धोनेपर मल दूर नहीं होता, वैसे ही भोग-प्राप्ति-जनित सुखसे भोगकी अप्राप्तिजनित दुःख नही मिट सकता। कीचड़से कीचड़ धुलता नहीं वरं और भी बढ़ता है।

७७९—हे प्रभो ! आपके सिवा मेरा कोई नहीं। आप मेरे हैं तो फिर सब कुछ मेरा है। मुझे अपनेसे जरा भी अलग न करिये। मेरे सामने अपने सिवा और किसीको न आने दें।

७८०—मनुष्यका सच्चा कर्तव्य क्या है ? ईश्वरके सिवा किसी दूसरी चीजसे प्रीति न जोड़ना।

७८१—विधि-विधानके सारे जालको छिन्न-भिन्न करके मन, बुद्धि, चित्त और प्राणको प्रभुमें एकनिष्ठ होकर अर्पित करे।

७८२—संसारके समस्त राग-द्वेषको मिटाकर मनुष्य प्रभु-प्रेम और हृदयकी सच्ची प्रार्थनाकी साधना करे।

७८३—किसी भी लौकिक अथवा पारलौकिक पदार्थको प्रभुसे न जाँचो। वह तुम्हारी आवश्यकताको तुम्हारी अपेक्षा अधिक जानता है और तुम्हें जब जिस वस्तुकी आवश्यकता होगी, वह दयालु प्रभु पहुँचा देगा। तुम्हारा बस, एक काम है, चारों ओरसे चित्तको समेटकर प्रभुके चरणोंमें बसा दो।

७८४—ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि, पण्डित, गुणी—कौन है

इस संसारमें जिसे मोहने भरमाया नहीं, कामने नचाया नहीं। यह जगत् तो काजलकी कोठरी है, कलंकसे बचनेका बस, एक ही उपाय है भगवान्‌का सतत स्मरण।

७८५—जिस पापके आरम्भमें ईश्वरका भय और अन्तमें ईश्वरसे याचना होती है, वह पाप भी साधकको ईश्वरके समीप ले जाता है; किंतु जिस तपश्चर्याके आरम्भमें अहंभाव और अन्तमें अभिमान होता है, वह तप भी तपस्वीको ईश्वरसे दूर ले जाता है।

७८६—अहंकारी साधकको 'साधक' नहीं कहा जा सकता, वह तो महा अपराधी है; परंतु प्रभुकी प्रार्थना करनेवाला एक पापी भी 'साधक' है।

७८७—बिना पश्चात्तापके सच्ची साधनाका आरम्भ नहीं होता। इसीलिये ईश्वरसाधनाका पूर्व अङ्ग है पश्चात्ताप। ईश्वर-स्मरणके समय तो पश्चात्तापके विचारोंको भी दूर कर देना चाहिये, जिससे सब इष्ट वस्तुओंका स्थान एक ईश्वर ग्रहण कर ले।

७८८—जिस समय लोग 'उन्मत्त' और 'मस्त' कहकर मेरी निन्दा करेंगे तभी मेरे मनमें गूढ़ तत्त्वज्ञान उदय होगा।

७८९—सहनशील ऋषि और कृतज्ञ धनवान्‌में श्रेष्ठ कौन? सहनशील ऋषि। धनवान् चाहे जितना भला हो, पर उसका मन लक्ष्मीमें लिप्त रहता है; किंतु एक ऋषिका हृदय तो लगा रहता है अपने प्रभुमें।

७९०—जो मनुष्य जीवन-निर्वाहके लिये नीतिपूर्वक व्यवहार करता है वह भी ईश्वरकी महिमाको समझता है; परंतु जो मनुष्य ईश्वरके लिये ही जीवन-निर्वाह करता है, वह तो ईश्वरको प्राप्त करता है।

७९१—तुम प्रभुको तो जानते हो न? तो अब तुम और कुछ भी न जानो तो कोई हानि नही। ईश्वर तुम्हें जानता है न; तो अब कोई

दूसरा तुम्हें नहीं जाने तो कोई हानि नहीं।

७९२—जो मनुष्य ईश्वरको छोड़कर दूसरेसे स्नेह करता है, वह क्या कभी सुखी हो सकता है ?

७९३—जबतक ममत्व है तभीतक दुःख है। जहाँ ममत्व दूर हुआ कि सब अपना-ही-अपना है। आसक्तिको छोड़कर व्यवहार करो, धन, स्त्री तथा कुटुम्बियोंमें अपनेपनके भावको भुलाकर व्यवहार करो।

७९४—परपुरुषसे सम्बन्ध रखनेवाली स्त्री बाहरसे घरके कार्योंमें व्यस्त रहकर भी भीतर-ही-भीतर उस नूतन जारसङ्गमरूपी रसायनका ही आस्वादन करती रहती है। इसी प्रकार बाहरसे तो राजकार्योंको भले ही करते रहो; किंतु हृदयसे सदा उन्हीं हृदयरमणके साथ क्रीडा-विहार करो।

७९५—जो स्त्रियोंके हाव-भाव और कटाक्षोंसे घायल नहीं होता, जिसके चित्तको क्रोधरूपी अग्नि संताप नही पहुँचा सकती और जिसे प्रचुर विषयलोभरूपी बाण विद्ध नहीं कर सकते, यानी जिसकी दृष्टिमें संसारी सभी भोग तृणके समान हैं, वह धीर महापुरुष इस सम्पूर्ण त्रिलोकीको बात-की-बातमें जीत सकता है।

७९६—सर्वोत्तम सिद्धान्त तो यह है कि घरका पूर्ण रीतिसे परित्याग ही कर देना चाहिये; किंतु यदि घरको पूर्णरीत्या त्याग करनेका सामर्थ्य न हो तो घरमें रहकर सब कार्य श्रीकृष्णके ही निमित्त-उनके प्रीत्यर्थ ही करे; क्योंकि श्रीकृष्ण सभी प्रकारके अनर्थोंको मोचन करनेवाले हैं।

७९७—संग किसीका करना ही न चाहिये। सभी प्रकारके संगोंका एकदम परित्याग कर देना चाहिये; किंतु यदि सब प्रकारके संगोंका परित्याग करनेमें समर्थ न हो सके तो सज्जन और संत-महात्माओंका ही संग करना चाहिये, क्योंकि संगसे जो काम उत्पन्न होता है, उसकी ओषधि संत ही हैं।

७९८—भगवत्सेवामें जो अनुकूल पड़े, उसीका चिन्तन करना और जो भगवत्तत्त्वोंमें विघातक हों, उनका सर्वथा त्याग करना।

७९९—जिस प्रकार पतिव्रता स्त्रीको इस बातका पूर्ण विश्वास होता है कि जिसने मेरा एक बार अग्निके सम्मुख पाणिग्रहण किया है वह मेरी अवश्य रक्षा करेगा, उसी प्रकार श्रीकृष्णपर भरोसा रखना कि वे हमारी अवश्य ही रक्षा करेंगे।

८००—भगवान्‌को आत्मनिवेदन करनेपर उनके प्रति भारी दीनता रखना।

८०१—छायाको छोड़कर असली आनन्दको खोजो, तुम्हें शान्ति मिलेगी।

८०२—जब हृदयमें किसीसे कुछ लेनेकी इच्छा ही नहीं तब जैसा ही धनी वैसा ही गरीब।

८०३—कीर्ति तो पतिव्रता है, पुंश्चली नहीं। उसने तो एक ही पुरुष श्रीहरिको वरण कर लिया है, इसलिये तुम उसकी आशाको छोड़ दो, छोड़ दो, छोड़ दो।

८०४—भक्तिमार्गकी ओर बढ़नेवाले साधकको कामिनी, काञ्चन और कीर्तिके स्वरूप पद, प्रतिष्ठा, पैसा, पुत्र, परिवार आदि जो यावत् प्रेमपदार्थ हैं, उनका परित्याग करके तब इस पथकी ओर अग्रसर होना चाहिये।

८०५—जिसके हृदयमें सच्ची श्रीकृष्णभक्ति है, उससे बढ़कर श्रेष्ठ कोई हो ही नही सकता। श्रेष्ठपनेकी यही पराकाष्ठा है।

८०६—श्रवण, कीर्तन ही प्रभु-प्रेम-प्राप्तिका मुख्य उपाय है और सब उपाय तथा आश्रयोंका परित्याग करके श्रीहरिकी ही शरण लेनी चाहिये।

८०७—गङ्गाकी धाराकी तरह मनकी गति श्रीहरिकी ही ओर बहती

रहे। फिर श्रीकृष्ण दूर नहीं रहते। वे तो आकर भक्तसे लिपट जाते है। यही तो उनकी भक्तवत्सलता है।

८०८—साधु-महात्मा-संत तथा भगवद्भक्तोंके चरणोंमें दृढ़ अनुराग रखो। वे कैसे भी हों उनकी निन्दा कभी मत करो। सबको ईश्वर-बुद्धिसे नम्र होकर प्रणाम करो। तुम्हारा कल्याण होगा।

८०९—श्रीकृष्ण-कृष्ण रटिये और वृन्दावनमें बसिये, इसीमें परम कल्याण है।

८१०—वैराग्य होनेपर मान-प्रतिष्ठा, इन्द्रियस्वाद और लोक-लाजकी परवा ही नहीं रहती।

८११—त्यागी होकर भी जो परमुखापेक्षी बना रहता है, वह तो कुक्कुरके समान है।

८१२—त्यागीको अपनी वृत्ति सदा स्वतन्त्र रखनी चाहिये। भिक्षा माँगकर खाना ही उसके लिये परम भूषण है।

८१३—जो त्यागी होकर अपनी जिह्वाको वशमें नहीं कर सकता, घर छोड़नेपर भी जिसे भिक्षाका संकोच है, वह तो इन्द्रियोंका गुलाम है। परमार्थका पथ उससे बहुत दूर है।

८१४—विरागीको निरन्तर नाम-जप करते रहना चाहिये।

८१५—समयपर रूखा-सूखा जो भी भिक्षामें प्राप्त हो जाय, उसीपर निर्वाह करके केवल कृष्णकथा-कीर्तनके निमित्त इस शरीरको धारण किये रहना चाहिये।

८१६—सभी शास्त्रोंका सार यही है कि श्रीकृष्णकीर्तन और नामस्मरण ही संसारमें सुखका सर्वश्रेष्ठ साधन है। प्रेमकी उपलब्धि नामस्मरणसे ही हो सकती है।

८१७—जिसे प्रेमकी प्राप्ति करनी हो, उसे सबसे पहले साधु-संग करना चाहिये।

८१८—भजन, कीर्तन, सत्संग, भगवत्-लीलाओंका स्मरण यही मुख्य धर्म है।

८१९—अदोषदर्शी होना वैष्णवोंके लिये सबसे मुख्य काम है।

८२०—ग्राम्यकथा कभी श्रवण नहीं करनी चाहिये। ग्राम्यकथा सुननेसे चित्तमें वे ही बातें स्मरण होती हैं जिससे भजनमें चित्त नहीं लगता।

८२१—विषयी लोगोंकी बातें करनेसे चित्त विषयमय बन जाता है।

८२२—सुस्वादिष्ट अन्न और चमकीले वस्त्रसे बचना चाहिये!

८२३—हृदयमें अभिमान आते ही सभी साधन नष्ट हो जाते हैं।

८२४—सदा-सर्वत्र और सब अवस्थाओंमें भगवन्नामका जप करते रहना चाहिये। नाम-जपसे श्रीकृष्ण-चरणोंमें प्रीति उत्पन्न होती है।

८२५—मानसिक पूजा ही सर्वश्रेष्ठ पूजा है।

८२६—जहाँतक हो, विषयी धनिक पुरुषोंके अन्नसे तो बचना चाहिये।

८२७—आध्यात्मिक शास्त्रोंके श्रवण, भगवान्‌के नाम-कीर्तन, मनकी सरलता, सत्पुरुषोंका समागम, देहाभिमानके त्यागका अभ्यास इन भागवतधर्मोंके आचरणसे मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, फिर वह अनायास ही भगवान्‌में आसक्त हो जाता है।

८२८—सोच करनेसे कोई लाभ नहीं है, सोच करनेवाला केवल दुःख ही भोगता है। जो मनुष्य सुख और दुःख दोनोंको त्याग देता है, जो ज्ञानसे तृप्त है और बुद्धिमान् है, वही सुख पाता है।

८२९—सदाचारके पालनसे मनुष्य दीर्घ आयु, मनचाही संतान और अटूट सम्पत्ति पाता है। इससे अल्पमृत्यु आदिका भी नाश होता है।

८३०—सब प्रकारसे अपने हितके कार्य करने चाहिये। जो बहुत

बोलते हैं, उनसे कुछ नही होता । संसारमें ऐसा कोई उपाय नहीं, जिससे सब लोग प्रसन्न हो सकें।

८३१—अरे, विषयोंमें इतना क्यों रम रहा है ? कभी उनसे मुख नहीं मोड़ता, श्रीहरिका भजन कर जिससे यमके फंदेमें न पड़ना पड़े।

८३२—जिस गृहस्थमें सत्य, धर्म, धृति और त्याग नामक चार धर्म होते हैं, उसे मरकर इस लोकसे परलोकको प्राप्त होनेपर सोच नहीं करना पड़ता।

८३३—जिसके चित्तसे राग-द्वेषका नाश हो गया है, वही ज्ञानी, गुणी, दानी और ध्यानी है।

८३४—मनके अहंकारको छोड़कर ऐसी जबान बोलनी चाहिये जिससे दूसरोंको भी शान्ति पहुँचे और अपनेको भी शान्ति मिले।

८३५—रातको सोना और दिनका खाना भूलकर, सारी बकवाद छोड़कर दिन-रात श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये।

८३६—जैसे शत्रु हुए बिना मित्रकी कीमत नहीं मालूम होती, वैसे ही प्रेमकी शक्तिके व्यवहारका स्थान न हो तो प्रेमकी शक्तिका भी पता नहीं लगता।

८३७—लोग भाँति-भाँतिकी चर्चा किया करते हैं, परन्तु उन्हें अपने भीतरी और बाहरी जीवनकी जाँच तथा समालोचना करनी चाहिये; अपने कार्य तथा स्वभावकी ओरसे सदा सावधान रहना चाहिये और सन्मार्ग कभी नहीं छोड़ना चाहिये। यही सर्वोत्तम कार्य है।

८३८—प्रेमका परिचय केवल स्तुतियोंसे नहीं मिलता, अनेक दुःख झेलकर, समस्त स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर प्रेमको प्रमाणित करना पड़ता है ।

८३९—जो स्वच्छ मनसे ईश्वरका स्मरण किया करता है, उसके लिये किसी दूसरे मित्रकी आवश्यकता नहीं है।

८४०—जिसके संगसे सत्य, पवित्रता, दया, मौन, बुद्धि, श्री, लज्जा, कीर्ति, क्षमा, शम, दम और सौभाग्यका नाश हो, ऐसे अशान्त, मूर्ख, स्त्रियोंके वशमें रहनेवाले, देहाभिमानी मनुष्योंका संग कभी नहीं करना चाहिये।

८४१—कुसंग बिल्कुल छोड़ देनी चहिये; क्योंकि उसमें काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश और अन्तमें सर्वनाश हो जाता है।

८४२—मूर्खलोग ही असंतोषी होते हैं। असंतोषकी कोई सीमा नहीं है, परन्तु संतोषसे ही परम सुख मिलता है।

८४३—दुराचारी मनुष्यकी जगत्‌में निन्दा होती है, वह सदा दुःख भोगता है, रोगी रहता है और उसकी आयु बहुत कम होती है।

८४४—संतोष हुए बिना कामका नाश नहीं होता और कामना रहते कभी स्वप्नमें भी सुख नहीं हो सकता। कामना श्रीरामके भजन बिना नहीं मिटती।

८४५—जो तेरे लिये काँटे बोवें, तू उनके लिये भी फूल बो।

८४६—धनकी लालसासे जमीनको खोदा, पहाड़ोंकी धातुओंको फूँका, समुद्र-यात्रा की, बड़े प्रयत्नसे राजाओंको खुश किया, मन्त्रसिद्धिके लिये श्मशानमें रातें बितायीं, पर कहीं भी एक फूटी कौड़ी न मिली। हे तृष्णे ! तू अब तो मेरा पिण्ड छोड़।

८४७—प्रेम ही प्रभुका ऐश्वर्य है। जिसको प्रेम मिल जाता है, उसे सब कुछ मिल जाता है।

८४८—केवल उपासनासे ही आत्माकी उन्नति और पूर्णता नही होती, उसके लिये प्रेम चाहिये। प्रेमसे ही आत्माका पूर्ण विकास होता है।

८४९—तुम जितना प्रयत्न संसारके विषयोंकी प्राप्तिके लिये करते हो, उतना यदि परमधामके लिये करो तो तुम्हें वहाँ अवश्य ही स्थान मिले।

८५०—यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि कोई मनुष्य भला-बुरा नहीं कर सकता, जो कुछ होता है, ईश्वरहीका किया होता है।

८५१—गोविन्दके गुण नहीं गानेसे जीवन व्यर्थ जा रहा है, रे मन ! श्रीहरिको वैसे ही भज जैसे मछली जलको भजती है।

८५२—दृढ़निश्चयी, कोमलस्वभाव, इन्द्रियविजयी, क्रूर कर्म करनेवालोंका संग न करनेवाला अहिंसक पुरुष इन्द्रियदमन और दानके द्वारा स्वर्गको जीत लेता है।

८५३—ब्रह्मचर्य, तप, शौच, संतोष, प्राणिमात्रके साथ मैत्री और भगवान्‌की उपासना—ये सबके पालन करने योग्य धर्म हैं।

८५४—काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिको छोड़कर यह देखो कि 'मैं कौन हूँ !' आत्मज्ञानसे रहित मूर्खोंको घोर नरकोंमें गिरना पड़ता है।

८५५—अच्छी हालतमें सभी बन्धु हैं, बुरी हालतके बन्धु दुर्लभ हैं। जो बिगड़ी हालतका साथी है, वही सच्चा बन्धु है। मित्र वही जो विपत्तिके समय मनुष्यका साथ दे, न कि बीती हुई बातोंके लिये उलाहना देनेमें ही सिर खपावे।

८५६—नीतिको जाननेवाले, प्रारब्धको जाननेवाले, वेदके ज्ञाता और शास्त्रके ज्ञाता बहुत है, ब्रह्मको जाननेवाले भी मिल सकते हैं, परंतु अपने अज्ञानको जाननेवाले तो बिरले ही होते है।

८५७—मुक्तपुरुषको कष्ट अवश्य होता है, पर उसको उस कष्टमें राग-द्वेष नहीं होता, वह उसे संसारका धर्म समझकर सहता है, सुख-दुःखोंसे उसकी वृत्तिमें चञ्चलता नहीं आती, यही बद्ध और मुक्तका भेद है।

८५८—भगवान्‌की पूजाके लिये सात पुष्प उपयोगी है—१—अहिंसा, २—इन्द्रिसंयम, ३—प्राणियोंपर दया, ४—क्षमा, ५—मनको वशमें करना, ६—ध्यान और ७—सत्य इन्हीं फूलोंसे

भगवान् प्रसन्न होते हैं।

८५९—तारे तभीतक जगमगाते हैं, जबतक कि सूर्य नहीं उगता। इसी प्रकार जबतक ज्ञानका उदय नहीं होता, तभीतक मनुष्य विषयोंमें लगा रहता है।

८६०—भगवत्प्राप्त पुरुष भगवद्भजनको छोड़कर दूसरेका पथप्रदर्शक नहीं बनता; क्योंकि वह अपने प्रभुके सिवा किसीको भी रक्षक, शिक्षक या मार्गदर्शक नहीं देखता।

८६१—बिना विश्वासके भक्ति नहीं होती, भक्ति बिना भगवान् प्रसन्न नहीं होते और भगवत्कृपा बिना जीवको सपनेमें भी शान्ति नहीं मिल सकती।

८६२—जैसे पक्षी रातको आकर पेड़पर बसेरा करते हैं और दिन उगते ही उड़ जाते हैं, वैसी ही हालत कुटुम्बकी समझनी चाहिये।

८६३—धन, स्त्री और पुत्रोंमें ही चित्त लगा रक्खा है; विपत्तिमें काम आनेवाले मित्र भगवान्‌की खोज क्यों नहीं करता ?

८६४—जो असंतोषी है, वही दरिद्र है; जो इन्द्रियोंके वशमें है, वही कृपण है; जिसकी बुद्धि विषयोंमें फँसी हुई नहीं है, वही स्वतन्त्र है।

८६५—दुःख पानेपर भी सामनेवालेको कड़वे बचन नहीं कहने चाहिये। ऐसे किसी काममें बुद्धि नहीं लगानी चाहिये जिससे दूसरेका द्रोह होता हो, ऐसी वाणी नहीं बोलनी चाहिये जिससे लोगोंको उद्वेग हो।

८६६—जिसके घरसे अतिथि निराश लौट जाता है, उसका सैकड़ों घड़े घीका होम भी व्यर्थ है। अतिथिकी जात-पाँत, विद्या आदि न पूछकर देवता समझकर उसका सत्कार करना चाहिये; क्योंकि अतिथिमें सब देवता बसते हैं।

८६७—तुममें-हममें तथा सब प्राणियोंमें सर्वत्र एकमात्र भगवान्

विष्णु ही व्याप्त हैं, फिर असहिष्णु होकर क्यों वृथा कोप करते हो ? सबके अंदर एकमात्र आत्माको देखो और भेदज्ञानको नष्ट कर दो।

८६८—किसीकी हिंसा न करो या किसीको कष्ट न दो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, शरीर, मन और वचनसे न्याय करो, किसीसे कोई आशा न करो।

८६९—एक दिन सुमेरु पर्वत भी गिर पड़ता है; समुद्र भी सूख जाता है, पृथ्वी भी नष्ट हो जाती है, फिर इस क्षणभङ्गुर शरीरकी तो बात ही कौन-सी है।

८७०—लोगोंके सामने अपना दोष स्वीकार करनेमें जिसको जरा-सा भी संकोच नहीं होता; इतना ही नहीं, परंतु जो इसीमें अपनी भलाई समझता है तथा अपने अच्छे काम दूसरोंको जनानेकी जो बिल्कुल इच्छा नहीं रखता और जो दृढ़ संकल्पवाला है, वही सत्यनिष्ठ और सच्चा साधक है।

८७१—पिता-माताका सम्मान करो, व्यभिचार मत करो। चोरी मत करो, झूठी गवाही न दो, दूसरेकी चीजपर मन न चलाओ।

८७२—अपने अंदरके बुरे भाव, अहंकार, भय और अज्ञानको पहले दूर करना चाहिये, तभी जीवन प्रभुमय बन सकता है।

८७३—आत्मा नित्य सिद्ध है, इसकी प्रतीतिके लिये देश, काल अथवा शुद्धि आदि किसीकी भी अपेक्षा नहीं है।

८७४—भगवान्‌के नाममें रुचि, जीवोंपर दया और भक्तोंका सेवन—इन तीन साधनोंके समान और कोई साधन नहीं।

८७५—जिस गृहस्थमें सत्य, धर्म, धृति और त्याग नामक चार धर्म होते हैं, वही मरकर इस लोकसे परलोकको प्राप्त होकर सोच नहीं करता।

८७६—जो दूसरेको बदनाम करके नाम कमाना चाहते हैं, उनके

मुँहपर ऐसी कालिख लगेगी जो मरनेपर भी नहीं धुलेगी।

८७७—जिस घरमें साधुकी निन्दा होती है, वह समूल नष्ट हो जाता है, उसकी नींव, नाम और जगहका भी पता नहीं लगता।

८७८—हरिनामरूपी गोलीके साथ प्रेम, भक्ति, निष्ठा, एकाग्रता और निष्ठारूप अनुपान रहनेसे इन्द्रियरूप रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

८७९—माया-मोहको छोड़कर श्रीरामका भजन करना चाहिये। (ऐसे भजनरूपी) पारसका स्पर्श किये बिना (मनुष्य-शरीररूपी) लोहा दिन-दिन छीज रहा है।

८८०—जबतक मनुष्य पहले गाँवको नहीं छोड़ देता, तबतक दूसरे गाँवको नहीं पहुँच सकता। इसी प्रकार जबतक संसारका सम्बन्ध नहीं छोड़ा जाता, तबतक प्रभुके धाममें नहीं पहुँचा जा सकता।

८८१—आदमी वह काम तो नहीं करता जो उसके वशमें है, परंतु वह करता है जो दूसरोंके वश है अर्थात् वह अपने दोषोंका त्याग तो नहीं करता पर दूसरोंके दोष छुड़ाना चाहता है।

८८२—हम यदि अपने आसुरी गुणोंसे ही दूसरेके साथ बर्ताव करेंगे, तो उसके अंदरसे भी वे आसुरी गुण निकलकर बर्ताव करने लगेंगे।

८८३—नम्रताका कवच पहन लेनेपर कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। कपासकी रूई तलवारसे भी नहीं कटती।

८८४—वही पूत सपूत है जो मन लगाकर भगवान्‌की भक्ति करता है, जिससे जरा-मरणसे छूटकर अजर-अमर हो जाता है।

८८५—चराचर सभी दृश्य केवल मनके कारण है। जब यह मन अमन हो जाता है, तब द्वैतका कोई अनुभव ही नहीं रहता।

८८६—ममता और अभिमानसे शून्य तथा चिन्तासे परे रहनेवाला पुरुष अपने घरमें रहता हुआ भी कभी किसी कर्ममें आसक्त नहीं होता।

८८७—जो दूसरेसे वैर रखते है, परायी स्त्री और पराये धनकी ओर ताकते हैं तथा परनिन्दा करते हैं, वे पापी पामर मनुष्य देहधारी राक्षस हैं।

८८८—साधुकी जाति न पूछो, उससे तो ज्ञानका उपदेश लो; तलवारका मोल करो; म्यानसे क्या काम है ?

८८९—सदा सच बोलना चाहिये। कलियुगमें सत्यका आश्रय लेनेके बाद और किसी साधन-भजनकी आवश्यकता नहीं। सत्य ही कलियुगकी तपस्या है।

८९०—जब मिले तभी मित्रका आदर करो, पीछेसे प्रशंसा करो और जरूरतके वक्त बिना संकोच सहायता करो।

८९१—दुर्जन यदि विद्वान् हो तो भी उसका सङ्ग नहीं करना चाहिये; क्योंकि मणिसे सुशोभित साँप क्या भयानक नहीं होता ?

८९२—तन, मन और वचनकी एकता रखनी चाहिये।

८९३—जो मनुष्य दूसरे लोगोंके सामने तो भगवान्‌की बातें करता है और अपने मनमें सदा मान प्राप्त करनेकी तथा दूसरी सांसारिक चिन्ताओंमें लगा रहता है, वह कभी-न-कभी बेइज्जत होकर जरूर आफतमें पड़ेगा।

८९४—स्वार्थ ही सारे अपराधों और पापोंकी जड़ है और स्वार्थकी जड़ अज्ञान है।

८९५—जिसने कामनाओंका नाश कर मनको जीत लिया और शान्ति प्राप्त कर ली, वह राजा हो या रंक, संसारमें उसको सुख-ही-सुख है।

८९६—कुमार्गपर चलनेवाला बिना जीता हुआ मन ही परम शत्रु है। मनको जीतकर समत्वको प्राप्त होना ही भगवान्‌की मुख्य आराधना है।

८९७—संसारमें वैराग्यरूपी सौभाग्यका पात्र, प्रसन्नचित्त, विषयोंकी आशासे रहित और यथाप्राप्त प्रारब्धफल भोगनेवाला पुरुष इसी जन्ममें कृतार्थ हो जाता है।

८९८—विश्वास, प्रेम और नियमसे रामनामका जप करो, फिर आदि, मध्य और अन्त-तीनों ही कालमें कल्याण है।

८९९—मूर्खोंका संग न करना, विद्वानोंका संग करना और पूजनीय पुरुषोंका सत्कार करना उत्तम और शुभकारक कर्म है।

९००—मन, वचन और शरीरसे पूर्णरूपसे संयमी रहना ही ब्रह्मचर्य है।

९०१—धनकी तीन गतियाँ हैं—दान, भोग और नाश। जो मनुष्य न तो दान देता है और न भोगता है, उसके धनका नाश हो जाता है।

९०२—पापोंके कटनेके लक्षण ये हैं—१-पाखण्डियोंसे अलग रहना, २—असत्यका त्याग करना, ३—अहंकारी मनुष्योंसे दूर रहना, ४—भगवान्‌की तरफ आगे बढ़ना, ५—केवल कल्याणके ही मार्गपर चलना, ६—अधर्म , अनीति और पापकर्मोंको छोड़नेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करना, ७—किये हुए पापोंको नष्ट करनेके लिये योग्य प्रायश्चित्त करना और ८—नालायकके साथ नालायकी न करना।

९०३—यदि अपना मन बदल जाय—साफ हो जाय तो अपने-आप ही व्यवहार—बर्तावमें परिवर्तन हो जायगा और उसका असर प्रतिपक्षीपर देर-सबेर पड़ेगा ही।

९०४—जो मनुष्य यह चाहता है कि प्रभु सदा मेरे साथ रहें उसे सत्यका ही सेवन करना चाहिये। भगवान् कहते है कि मैं केवल सत्यप्रिय लोगोंके ही साथ रहता हूँ।

९०५—बहुत प्रश्न करना मूर्खताकी निशानी है। मूर्ख घंटेभरमें

जितने प्रश्न कर बैठता है, बुद्धिमान् उनका पूरा उत्तर सात वर्षोंमें भी नहीं दे सकता।

९०६—इच्छाको रानी बना लो या दासी, रानी बनाकर उसकी आज्ञामें चलोगे तो वह दुःखके कुण्डमें डुबो देगी और दासी बनाकर अपनी आज्ञामें रक्खोगे तो सारे सुखोंकी प्राप्ति होगी।

९०७—हरिसे नहीं, तू तो हरिके जनसे प्रेम कर, हरि तो माल-मुल्क ही देते हैं, पर हरि-जन तो साक्षात् हरिको ही दे देते हैं।

९०८—जरा-सी कामना रहते भगवान् नहीं मिलते। तागेमें अगर जरा-सा भी खूदा हो तो वह सूईमें नहीं जा सकता।

९०९—सभी प्राणियोंके अन्दर भगवान् श्रीहरि आत्मरूपसे विराजमान हैं; अतः सब प्राणियोंको भगवान्‌का निवासस्थान समझकर किसीसे भी द्रोह न कर; ऐसा करनेसे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं।

९१०—शान्त, धर्ममय, प्रिय और सत्यवचन ही सुभाषण हैं। ऐसी बात कहनी चाहिये जो आत्माके विरुद्ध न हो और जिससे किसीको दुःख न पहुँचे।

९११—सज्जनको झूठ जहर-सा लगता है और दुर्जनको सच विषके समान लगता है। वे इनसे वैसे ही दूर भागते हैं, जैसे आगसे पारा।

९१२—जहाँतक हो, चुप रहो और जरूरत पड़नेपर उतना ही बोलो, जितना काम हो।

९१३—जबतक मनुष्य लौकिक जीवनमें रहता है, तबतक वह अलौकिक सुख-सम्पत्तिका मजा नही पा सकता।

९१४—सच्ची माता वह है जो अपने बालकोंके क्रोध, द्वेष और ईर्ष्यारूपी रोगोंको प्रेमरूपी दवासे नष्ट करना सिखाती है और असली वैद्य वह जो आनन्दी स्वभाव और शुभ भावना रखने और उत्तम कर्म

करनेकी शिक्षा देता है, जिनसे शरीर और हृदयको बल मिलता है। आनन्दी स्वभाव ही सबसे श्रेष्ठ दवाका काम देता है।

९१५—मनुष्य-देह बार-बार नहीं मिलेगी, इसलिये इसको पाकर भगवान्‌का भजन, सेवन और सुकृतका सौदा कर लो।

९१६—सबके साथ दयालुताका बर्ताव करो, चाहे वे किसी भी दशामें क्यों न हों। क्रोधकी अवस्थामें भी दयापूर्ण शब्दोंका ही प्रयोग करो।

९१७—लोभ महापापकी खान है। अधर्मी झूठ लोभका मन्त्री है, तृष्णा स्त्री है, जो उसे अन्धा कर देती है। लोभसे मनुष्यको न तो उन्नति-अवनतिका पता रहता है और न कालका भय।

९१८—जैसे माता अपने गर्भको जतनसे रखती है, जिसमें कहीं ठेस न लग जाय, इसी प्रकार भक्तिको भी जतनसे छिपाकर रखना चाहिये।

९१९—जो मनुष्य पापके द्वारा कुटुम्बका भरण-पोषण करता है, उसको महाघोर अन्धतामिस्रनामक नरकमें जाना पड़ता है, उस नरकको भोगनेके बाद वह और भी नीची योनियोंमें जाकर भाँति-भाँतिके कष्ट भोगता है। फिर जब पापका फल भोगकर शुद्ध होता है, तब उसे मनुष्य-योनि मिलती है।

९२०—शरीरके द्वारा किये हुए दोषोंसे मनुष्योंको स्थावर (वृक्ष आदि) योनि मिलती है, वाणीद्वारा किये हुए कर्मोंके दोषसे पशु-पक्षी-योनि मिलती है और मनद्वारा किये हुए कर्मोंके दोषसे चाण्डालकी योनि मिलती है।

९२१—पिताके कर्जको चुकानेवाले तो पुत्र आदि भी होते हैं, परंतु भव-बन्धनको छुड़ानेवाला तो अपने सिवा और कोई नहीं है।

९२२—लालच बुरी बला है। जिन्होंने धन पैदा करके उसे अच्छे

कामोंमें लगाना नहीं सीखा, उनकी बुरी दशा होती है, इससे तो धन न होना ही अच्छा है, जो व्यर्थकी चिन्ता तो न हो।

९२३—जो लोग सुखकी आशासे विषयोंके पीछे भटकते रहते हैं, उनकी दशा मणिको पानेकी आशासे उसकी परछाईंको पकड़नेके लिये व्यर्थ प्रयास करनेवाले मूढ़ मनुष्यकी-सी है।

९२४—जो कुछ मिले उसीमें संतोष करना और दूसरोंसे डाह न करना, यही शान्तिके खजानेकी कुंजी है।

९२५—दुर्बल मस्तिष्कके मनुष्य ही संकटोंसे घबराकर उसके वशमें हो जाते है, मनोबलसे सम्पन्न पुरुष तो संकटोंको पैरों-तले दबाकर उनपर सवार हो जाता है।

९२६—सत्यके पायेपर खड़े रहनेसे जो आनन्द मिलता है, उसकी तुलना अन्य किसी प्रकारके आनन्दसे नहीं की जा सकती।

९२७—जो मनुष्य सदा चिन्तामें डूबे रहते हैं, निरन्तर भयभीत रहते हैं, मनको सदा क्रोधसे पूर्ण रखते है, वे सदा ही प्रायः आधे बीमार रहते हैं। चिन्तामें डूबे रहनेवालेको अन्न अच्छी तरह कभी नहीं पचता ।

९२८—हृदयकी सरलता और निर्मलता ही ईश्वरीय ज्योति है, यह ज्योति ही ईश्वरके मार्गको दिखलाती है।

९२९—अधिक जनसमुदायमें बसनेकी रुचि ही बाँधनेवाली रस्सी है, पुण्यात्मा लोग इस रस्सीको तोड़कर एकान्तमें तप करते हैं, पापीलोग इसी रस्सीमें दिनोंदिन दृढ़ताके साथ बँधते जाते हैं।

९३०—भगवान् संसारके आश्रय-स्थल हैं, जगत्‌के बन्धु हैं, वे सभीके प्राणोंके रक्षक हैं, सर्वथा प्रेममय हैं, इसी कारण सबमें अभेद-भाव रखते और सबकी रक्षा करते हैं, उनका स्नेह सबपर समान रहता है। इस बातको ज्ञानी जानते हैं, इसीसे वे प्रेम रखते हैं, मूढ़ इस रहस्यको नही जानते, इसीलिये उनसे द्वेष करते हैं।

९३१—प्रसन्नता, आत्मानुभव, परमशान्ति, तृप्ति, आनन्द और परमात्मामें स्थिति—ये विशुद्ध सत्त्वगुणके धर्म हैं। इनसे मुमुक्षु पुरुष नित्यानन्द-रसको प्राप्त करता है।

९३२—चन्दनके पेड़ जब उगते हैं, तभी वे अपने आसपास सुगन्ध नहीं फैला देते, जब उनकी कलम की जाती है, तभी वे चारों ओर अपनी सुगन्ध फैलाते हैं। इसी प्रकार संकटमें मनुष्यके गुणोंका विकास होता है।

९३३—चित्तको पवित्र करने-जैसा कल्याणकारक साधन और कोई है नहीं; क्योंकि चित्त ही चिन्तामणिकी भाँति सब पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाली भूमि है।

९३४—जिसके विचार और चिन्तन पवित्र हैं, उससे अपवित्र क्रिया बन ही नहीं सकती, उससे तो विशुद्ध कर्म ही होते हैं।

९३५—हे भिक्षुओ ! जबतक तुमलोग ब्रह्मचारियोंसे कायिक, वाचिक, मानसिक मित्रता रक्खोगे, भीखका अन्न समान भावसे बाँटकर खाओगे तथा सत्-धर्मकी रक्षा करोगे और सत्-धर्मपर ही दृष्टि रक्खोगे, तबतक तुमलोगोंका पुण्य क्षय नहीं होगा।

९३६—इन्द्रियोंको वशमें रखना, जीभको काबूमें रखना, सत्कार्यमें दृढ़संकल्प रहना और भगवान्‌की इच्छापर खुश रहना, चाहे वह तुम्हारे प्रतिकूल ही हो, बस, यही सच्ची शूरता है।

९३७—दया, नम्रता, दीनता, क्षमा, शील और संतोष—इन छःको धारण करके जो भगवान्‌को स्मरण करता है वह निश्चय ही मोक्ष पाता है।

९३८—शरीर खेत है, मनुष्य किसान है, पाप-पुण्य दो बीज हैं। जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही फल होता है।

९३९—ईश्वरके आश्रित मनुष्यमें ये बातें होती है, १—उसकी

विचारधारा सदा ईश्वरकी तरफ ही बहती है, २—ईश्वरमें ही उसकी स्थिति होती है और ३—ईश्वरकी प्रीतिके लिये ही उसके सारे कर्म होते हैं।

९४०—जिस प्रकार रात्रि तारागणोंको प्रकाश देती है, उसी प्रकार संकट भी मनुष्य को प्रकाश देता है।

९४१—हम जो अपने शत्रुओंके गुप्त इतिहासको पढ़ें तो हमें प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें इतना दुःख और शोक भरा मिलेगा कि फिर हमारे मनमें उनके प्रति जरा-सा भी शत्रुभाव नहीं रहेगा।

९४२—धन, वैभव, कुटुम्ब, विद्या, दान, रूप, बल और कर्म आदिके गर्वसे अन्धे होकर दुष्टलोग भगवन् और भगवान्‌के भक्त महात्माओंका तिरस्कार किया करते है।

९४३—जैसे मुसाफिर राह चलते, रास्तेमें किसी एक जगहपर मिल जाते हैं, फिर थोड़ी देर विश्राम करनेके बाद अपनी-अपनी राह चले जाते हैं, वही हाल हमारे सांसारिक सम्बन्धोंका है। पहले प्रारब्धवश दो आदमी मिलते हैं, फिर प्रारब्धवश ही दोनों बिछुड़ जाते हैं। जो मनुष्य सांसारिक सम्बन्धोंके इस मिथ्या रूपको अच्छी तरह समझ लेता है, उसे कोई दुःख नहीं सता सकता।

९४४—सम्पूर्ण भूत परमात्मासे ही उत्पन्न होते हैं, अतएव ये सब ब्रह्म ही हैं। ऐसा निश्चय करना चाहिये।

९४५—प्रेम-प्रेम सब चिल्लाते हैं, पर प्रेमको पहचानता कोई नहीं। जब आठों पहर तल्लीनता रहे, तभी प्रेम समझना चाहिये।

९४६—कवियोंने संतोंके हृदयको नवनीत-जैसा बतलाया है। परंतु उन्होंने भूल की; क्योंकि नवनीत अपने तापसे ही पिघल जाता है, पर संत तो दूसरोंके दुःखसे द्रवित होते हैं।

९४७—रातको पहले पहर सब जागते है, दूसरे पहर भोगी जागते हैं, तीसरे पहर चोर जागते हैं और चौथे पहर योगी जागते हैं।

९४८—पण्डित तो वह है जिसके प्रेम-चक्षु खुल गये हैं, जो ज्ञान और प्रेमके आवेशमें पशु, वनस्पति और पाषाणतकमें अपने ठाकुरको देखता और पूजता है।

९४९—लोग भला कहें या बुरा, उनकी बातोंपर ध्यान नहीं देना चाहिये। संसारके यश और निन्दाकी कोई परवा न करके ईश्वर-पथमें चलना चाहिये।

९५०—जैसे नमक और कपूर एक ही रंगके होते हैं, पर स्वादमें फर्क होता है, इसी प्रकार मनुष्योंमें भी पापी और पुण्यात्मा होते है।

९५१—संसारमें वैसे ही रहो जैसे मुँहमें जीभ रहती है, जीभ कितना ही घी खा ले, परंतु चिकनी नहीं होती।

९५२—जो दुखियोंपर दया करता है, धर्ममें मन रखता है, घरसे वैराग्यवान् होता है और दूसरोंका दुःख अपना-सा जानता है, उसीको अविनाशी भगवान् मिलते हैं।

९५३—जिसने युद्धमें लाखों आदमियोंको जीत लिया वही असली विजयी नही है, वास्तविक विजयी तो वह है जिसने अपने-आपको जीत लिया है।

९५४—मनुष्योंके द्वारा जितना व्यवहार होता है, सब ब्रह्मकी सत्तासे होता है; किंतु अज्ञानवश वे उस बातको नही जानते। वास्तवमें घड़ा आदि सब मिट्टी ही तो हैं। पर हम घड़ेको मिट्टीसे भिन्न समझते हैं। यही तो अज्ञान है।

९५५—बार-बार दुःख पानेपर भी मनुष्य विषयोंसे सुख पानेकी आशाको छोड़ता नहीं और बार-बार उन्हींको पकड़ता है। यही तो मोहकी महिमा है।

९५६—जो मनुष्य अपनी वर्तमान स्थितिपर भलीभाँति विचार नहीं करता और इस विचारसे कि अन्तमें मुक्ति हो ही जायेगी, पुरुषार्थकी

ओर कोई ध्यान नहीं देता; वह मृत्युके अनिवार्य चक्रसे कभी नहीं बच सकता।

९५७—अगर अपने भीतर और बाहर प्रकाश चाहते हो तो जीभरूप देहलीद्वारपर रामनामरूपी मणि-दीपकको रख दो-अर्थात् जीभसे रामनाम जपते रहनेसे बाहर-भीतर ज्ञानका प्रकाश हो जायेगा।

९५८—गाफिलके लिये साईंका घर दूर है; परंतु जो बंदा उनकी हाजिरीमें सदा मौजूद है, उसके लिये तो साईं हाजराहजूर है।

९५९—जिसके आचरणमें वैराग्य उतर आया हो वही सच्चा विरागी है। वाणीका वैराग्य सच्चा वैराग्य नहीं है।

९६०—भगवान्‌का साकार रूप भी सत्य है और निराकार भी सत्य है। तुम्हें जो अच्छा लगे, उसीमें विश्वास कर, तुम उसे पुकारो तो तुम उसी एकको पाओगे। मिसरीकी डली चाहे जिस ओरसे, चाहे जिस ढंगसे तोड़कर खाओ, वह मीठी लगेगी ही।

९६१—उस विश्वासको लाओ जो ध्रुवमें, प्रह्लादमें और नामदेवमें आया था। इसी विश्वासकी बदौलत सम्पूर्ण शङ्का, संदेह और झगड़े दूर हो जाते है।

९६२—कामातुर मनुष्य ही कंगाल है। जो सदा संतुष्ट है, वह यथार्थ धनी है। इन्द्रियाँ ही मनुष्यत्वकी शत्रु हैं। विषयोंका अनुराग ही बन्धन है। संसार ही मनुष्यका चिररोग है। संसारसे निर्लिप्त होकर रहना ही इसकी एकमात्र दवा है।

९६३—जैसे स्त्री नैहरमें रहती है, परंतु उसकी सुरति पतिमें लगी रहती है। इसी प्रकार भक्त जगत्‌में रहता है, परंतु वह हरिको कभी नही भूलता।

९६४—ऊँची जातिका अहंकार कोई मत करो। साहेबके दरबारमें केवल भक्ति ही प्यारी है!

९६५—पृथ्वीकी ओर देखकर पैर रखना, जलको कपड़ेसे छानकर पीना, वाणीको सत्यसे पवित्र करके बोलना और मनमें विचारकरनेपर जो उत्तम प्रतीत हो, वही करना।

९६६—मनको सन्मार्गपर ले जानेका पहला साधन 'सत्य' है, दूसरा 'संसारसे उपरामता' है, तीसरा 'आचरणकी उच्चता और पवित्रता' है और चौथा 'अपने अपराधोंके लिये प्रभुसे क्षमाकी प्रार्थना करना' है।

९६७—कभी चरित्रसे पतित न होना चाहिये। गिरनेमें गौरव नहीं है। पतितावस्थासे पुनः-पुनः उठकर खड़े होओ, इसीमें परम गौरव है।

९६८—जिस प्रकार दवाके बिना बीमारीको शमन करना कठिन है, उसी प्रकार ज्ञानके बिना सांसारिक प्रभुताको सँभालना दुस्साध्य है। मनुष्य चारों ओर अज्ञानसे घिरा हुआ है, इसलिये वह भोग-लिप्साके पीछे पड़ जाता है।

९६९—किसी चीजसे भी न चिढ़ो। काम उसी निर्लिप्त भावसे करो, जिस तरह वैद्यलोग अपने रोगियोंकी चिकित्सा करते है और रोगको अपने पास नहीं फटकने देते। सब उलझनोंसे मुक्त अथवा साक्षीकी भावनासे काम करो। स्वतन्त्र रहो।

९७०—जब देहमेंसे श्वास निकल जायेगा तब पछतायेगा। इसलिये जबतक शरीरमें श्वास है, तभीतक रामका स्मरण करके उनका गुण गा ले।

९७१—क्षणमात्रको प्राप्त होनेवाले थोड़े-से जीभके स्वादके लिये जीवोंकी हत्या करनी बड़ी ही नृशंसता है। भगवान्‌के भेदोंसे भरे हुए अपने पेटको जानवरोंकी कब्र बनाना उसका निरादर करना है। एक चींटीको भी न सताओ; क्योंकि वह भी जीवधारी है और अपना जीव हर एकको प्यारा है।

९७२—अगर तेरे घटमें प्रेम है तो उसका ढिंढोरा न पीट। तेरे

हृदयके भावको अन्तर्यामी जानते ही हैं।

९७३—रे मन ! तू बड़ा ही कठोर है, मेरे अंदरसे तू निकल क्यों नही जाता ? उस सुन्दर, साँवरे, सलोने रूप बिना तू रात-दिन कैसे जीता है ?

९७४—तीन चीजें हैं, जिनको जितना बढ़ाओगे, उतनी ही बढ़ती रहेंगी, इनसे सावधान रहो—भूख, नींद और भय।

९७५—भगवान्‌की अनन्य भक्तिसे मनुष्य सर्वलोकोंके महेश्वर, समस्त जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले, वेदोंको उत्पन्न करनेवाले परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है।

९७६—मेरे सद्‌गुण मेरे साथ कभी बीमार नहीं पड़ते। इसी प्रकार वे मेरी कब्रमें भी मेरे साथ नहीं गड़ सकते।

९७७—जो मनुष्य मानव-जीवनका मूल्य नहीं समझता, वह दुखी और साधु पुरुषोंकी सेवासे मिलनेवाले माधुर्यका अनुमान नहीं कर सकता।

९७८—ईश्वरपर अपनी मर्जी मत चलाओ। शारीरिक आवश्यकताओंके सम्बन्धमें ईश्वरकी इच्छाको पूर्ण होने दो। सांसारिक आवश्यकताओंमें ईश्वरकी मर्जीको ही अपनी मर्जी बना लो।

९७९—जो मनुष्य अपने सुखके लिये किसी भी प्राणीको मारता है, वह जीते हुए और मरनेपर कहीं भी सुख नहीं पाता।

९८०—चारों अवस्थाओंको व्यर्थ खो दिया, श्रीहरिका नाम नहीं लिया। जब शरीर छूट जायगा, तब यमराजके यहाँ यमकी यातनाएँ सहनी पड़ेंगी। फिर पछतानेसे कुछ नहीं होगा।

९८१—जिसने प्रेमका नियम नही लिया, जिसने कामको नहीं जीता और जिसने नेत्रोंसे अलखपुरुष भगवान्‌के दर्शन नहीं किये, उसका जीवन व्यर्थ है।

९८२—बुद्धिमान् मित्र, विद्वान् पुत्र, पतिव्रता स्त्री, दयालु मालिक, सोच-बिचारकर बोलनेवाला और विचारकर काम करनेवाला—इन छःसे हानि नहीं हो सकती।

९८३—जो श्रीहरिके प्रेम-रसमें मतवाले हो रहे हैं, उनका विचार बहुत गहरा है। ऐसे साधु त्रिभुवनकी सम्पत्तिको तृणके समान समझते हैं।

९८४—निरंतर भगवत्-तत्त्वका चिन्तन करो, नश्वर धनका चिन्तन छोड़ो। देखो, सारा संसार व्याधिरूप सर्पसे डसा जा रहा है और सब लोग शोकसे पीड़ित हो रहे है।

९८५—दान, पश्चात्ताप, संतोष, संयम, दीनता, सत्य और दया—ये सात वैकुण्ठके दरवाजे हैं।

९८६—भगवद्-भजनमें दूसरोंकी निन्दा करना तथा भक्तोंके प्रति द्वेषभाव रखना महान् पाप है। जो अभक्त है, उनकी उपेक्षा करो, उनके सम्बन्धमें कुछ सोचो ही नहीं, उनसे अपना सम्बन्ध ही मत रक्खो। जो भगवद्भक्त हैं, उनकी चरणरजको सदा अपने सिरका आभूषण समझो। उसे अपने शरीरका सुन्दर सुगन्धित अङ्गराग समझकर सदा भक्तिपूर्वक शरीरमें मला करो।

९८७—तपसे सब प्रकारके संताप नष्ट होते हैं, तपसे सभी दुःख, भय, शोक और मनका क्षोभ आदि विकार दूर होते है, तपस्वी भक्त ही यथार्थमें भगवन्नामका अधिकारी है।

९८८—धर्मका निवास कहीं दूर नहीं है, धर्म सदा अपने ढूँढ़नेवालेके बगलमें ही बसता है। जिसने एक बार भी धर्मके लिये चेष्टा की, उसीको धर्म मिल जाता है। सज्जनोंको दूसरोंके दोषोंमें भी धर्मके दर्शन होते हैं।

९८९—विवेकरहित वैराग्य हठवादिताका पागलपन है और

केवल शाब्दिक ज्ञानसे तो मनुष्य स्वयं ही घबड़ा उठता है। इसलिये जिसमें विवेक और वैराग्य दोनों हैं, वही पुरुष भाग्यवान् साधु है।

९९०—श्रद्धालु मनुष्यका हृदय ईश्वरका गुणानुवाद गाने और सुननेसे अत्यन्त पवित्र हो जाता है, भगवच्चर्चा ही उसका अन्न है, प्रभु-प्रेम उसकी शान्ति है, हरिका स्थान ही उसकी दूकान है, भजनकीर्तन उसका व्यापार है, धर्मग्रन्थ उसकी सम्पत्ति है, भूलोक उसका खेत है, परलोक उसका खलिहान है और प्रभु-प्राप्ति ही उसके परिश्रमका फल है।

९९१—'चलो-चलो' की पुकार तो सभी मचाते हैं, परंतु पहुँचता कोई विरला ही है; क्योंकि इस मार्गमें 'कनक' और 'कामिनी'की दो बड़ी घाटियाँ है।

९९२—किसीके मनमें सच्चा प्रेम पैदा हो और वह साधन-भजन करनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो जाय तो उसे मार्ग बतलानेवाले सद्‌गुरु आप ही मिल जाते है, उसे गुरुकी खोज नहीं करनी पड़ती।

९९३—बहुत अधिक बोलनेसे व्यर्थ और असत्य शब्द निकल जाते हैं। इसलिये कर्मक्षेत्रमें जितना कम बोलनेसे काम चले, उतना ही कम बोलना चाहिये।

९९४—केवल मुँहसे ही ज्ञान बघारनेवाला पण्डित नहीं है, वह तो ठग है। पण्डित तो वही है जो ज्ञानके अनुसार बर्ताव करता है यानी जो कुछ कहता है वही करता है।

९९५—जो पीछे बीत चुका या आगे होनेवाला है, उसकी चिन्ता न करो। लेकिन जो समय तुम्हारे हाथमें है, उसे अच्छे-से-अच्छे कार्यमें लगाओ।

९९६—जो इस प्रकार जानता है कि यह महान् अजन्मा आत्मा अजर, अमर और अभय है, वह निश्चय ब्रह्म ही हो जाता है।

९९७—तप करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है, दान देनेसे ऐश्वर्य मिलते हैं, ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और तीर्थस्नानसे पाप नष्ट होते हैं।

९९८—भगवान्‌के पवित्र, सुन्दर और मनोहर नामोंका तथा उनके अर्थोंका ज्ञान और उनकी अलौकिक लीलाओंका लज्जा छोड़कर कीर्तन करते हुए श्रेष्ठ भक्तको आसक्तिरहित होकर पृथ्वीपर विचरण करना चाहिये।

९९९—क्रोध मनुष्यका बड़ा भारी बैरी है, लोभ अनन्त रोग है, सब प्राणियोंका हित करना साधुता है और निर्दयता ही असाधुपन है।

१०००—जो चेतनको जड़ और जड़को चैतन्य कर सकते हैं ऐसे समर्थ श्रीरघुनाथजीको जो जीव भजते है, वे ही धन्य हैं।

१००१—भगवान्‌का भजन-ध्यान करनेवाला मनुष्य उनकी कृपासे परमानन्द और शान्तिको प्राप्त कर ले इसमें तो आश्चर्य ही क्या है, भगवान्‌के भक्तोंका आश्रय ग्रहण करके उनके वचनोंके अनुसार चलनेवाला अतिशय मूढ़ पुरुष भी दुःखोंसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

१००२—सदा याद करते रहनेकी तो एक ही वस्तु है। सदा-सर्वदा सर्वत्र श्रीकृष्णके सुन्दर नामोंके ही स्मरणसे प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है सदा उसीका स्मरण करते रहना चाहिये।

१००३—मनमें कामना रखकर भजन करनेसे सिर्फ उसका फल मिलता है परंतु निष्काम भजनसे भगवान्‌की प्राप्ति होती हैं। सांसारिक फल तो मनुष्यको भगवान्‌से दूर करता है, इसलिये निष्कामभावसे भगवान्‌का भजन करना ही श्रेष्ठ है।

१००४—जबतक यह शरीर स्वस्थ है, जबतक वृद्धावस्था दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हुई है और जबतक आयु शेष नहीं

हुई है, तभीतक परमात्माको पानेके लिये उपाय कर लो। जो मनुष्य यह सोचकर चुपचाप बैठा रहता है कि घरमें आग लग जानेपर कुआँ खोदेंगे, उसे जैसे जलना ही पड़ता है, यही दशा तुम्हारी होगी।

१००५—भगवान्‌का नाम ही भव-रोगकी दवा है। अच्छा न लगनेपर भी नाम-कीर्तन करते रहना चाहिये, करते-करते क्रमशः नाम-में रुचि हो जायेगी।

१००६—विषयी पुरुष नीचे लिखी तीन बातोंके लिये अफसोस करते हुए मरते हैं—(१) इन्द्रियोंके भोगोंसे तृप्ति नहीं हुई, (२) मनकी बहुत-सी आशाएँ अधूरी ही रह गयीं और (३) परलोकके लिये कुछ साथ न ले चले।

१००७—ज्ञानरूप अग्निके द्वारा सब कर्मोंका नाश हो जानेके कारण मनुष्य बिना किसी प्रतिबन्धके मुक्त हो जाता है।

१००८—सबसे प्रेम बढ़ाइये, 'मेरे द्वारा दूसरेका कैसे हित हो'—निरन्तर यही बात सोचते रहिये और यथाशक्ति सबकी सेवा सहायता कीजिये।

१००९—यदि कोई कमजोर मनुष्य प्रभुके कार्यमें लग जाता है तो उसको भी अन्तमें प्रभुका बल मिल जाता है। इसी प्रकार यदि कोई बलवान् पुरुष लौकिक स्वार्थोंमें ही लगा रहता है तो अन्तमें उसे बलहीन तथा लाञ्छित होना पड़ता है।

१०१०—जो मूढ़ लोग बाहरकी कामनाओंमें लगे रहते हैं, वे विषयासक्त पुरुष आधि-व्याधिरूपसे फैले हुए मृत्युके पाशमें बँधते हैं। इसलिये धीर पुरुष नित्य अमृतत्त्वको जानकर अनित्य वस्तुओंकी इच्छा नहीं करते।

१०११—शान्तस्वभाव रहो, किसीके द्वारा अपनेपर कैसा भी लाञ्छन लगाये जानेपर भी अपने मनको मत बिगाड़ो।

१०१२—जो लोभी विषयोंकी आशाओंके दास बने हुए हैं, वे तो सभीके गुलाम हैं। जिन्होंने भगवान्‌में विश्वास करके आशाको जीत लिया है, वे ही भगवान्‌के सच्चे सेवक हैं।

१०१३—बाहरी स्वाँगमें और सच्चे साधुमें उतना ही अन्तर है जितना पृथ्वी और आकाशमें। साधुका मन राममें लगा रहता है और स्वाँगधारीका जगत्‌के विषयोंमें।

१०१४—जो फलके लिये भगवान्‌की सेवा करते हैं और मनसे कामनाका त्याग नहीं करते, वे चीजका चौगुना दाम चाहनेवाले लोग सेवक नहीं है।

१०१५—जिसका मन परमात्मामें रहता है, परमात्मा उसकी सँभाल रखते हैं।

१०१६—मनुष्य जब किसी उत्तम कार्यमें लग जाता है, तब उसके नीची श्रेणीके कार्य दूसरे लोग आप ही सँभाल लेते हैं। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों अपने ध्येयकी ओर आगे बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों उसके सांसारिक और शरीरिक कार्य कुदरतके नियमसे उलटे अच्छी तरह होने लगते हैं।

१०१७—जिस विद्यासे लोग जीवन-संग्राममें शक्तिमान् नहीं होते, जिस विद्यासे मनुष्यके चरित्रका विकास नहीं होता और जिस विद्यासे मनुष्य परोपकार-प्रेमी और पराक्रमी नहीं बनता, उसका नाम विद्या नहीं है।

१०१८—बदला लेनेका ख्याल छोड़कर क्षमा करना अन्धकारसे प्रकाशमें आना है और जीते-ही-जी नरककी जगह स्वर्गका सुख भोगना है।

१०१९—असली सत्त्वगुणी भक्त लोग रातको मशहरीमें पड़े-पड़े ध्यान किया करते हैं। लोग समझते हैं कि वे सोते हैं; परंतु जिस

समय सब लोग सोते हैं, उस समय वे परलोकका काम बनाया करते हैं। वे बाहरका दिखावा बिल्कुल ही पसन्द नहीं करते।

१०२०—इस जगत्में करोड़ों आदमी प्रभुके उपासक कहलाते हैं; परंतु सच्चे उपासक कौन हैं तथा प्रभु किनके साथ हैं? जो ईश्वरसे डरकर चलते हैं तथा अपने स्वार्थका नाश करके भी दूसरोंका हित करते हैं, वे ही सच्चे उपासक हैं और भगवान् भी उन्हींके साथ हैं।

१०२१—मान-बड़ाई अथवा प्रतिष्ठाकी इच्छा करना मृत्युकी इच्छा करनेके समान है। अच्छे-अच्छे पुरुष भी इसमें फँसकर साधनसे च्युत हो जाते हैं। प्राण चाहे छूट जायँ, परंतु प्राणप्रियतम परम प्रेमास्पद प्रभुकी स्मृति एक क्षणके लिये भी हृदयसे न हटे।

१०२२—जगत्‌की प्रभुता कैसी है, जैसे सपनेमें मिला हुआ पराया खजाना। जागनेपर जैसे उस खजानेका कुछ भी नहीं रहता, वैसे ही जगत्‌की प्रभुता भी वास्तवमें कुछ भी नहीं है।

१०२३—जैसे एक ही अग्नि भिन्न-भिन्न काठोंमें प्रवेश करके अनेक प्रकारके रूपवाला हो जाता है, इसी प्रकार एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न भूतोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका हो जाता हैं।

१०२४—अहंकारके कारण ही आत्माको 'मैं देह हूँ' ऐसी बुद्धि होती है और इसीके कारण यह सुख-दुःखादि देनेवाले जन्म-मरणरूप संसारको प्राप्त होता है।

१०२५—यदि कोई पिता या पुत्र मर जाता है तो मूढ़ लोग ही उसके लिये छाती पीटकर रोया करते हैं। ज्ञानियोंके लिये तो इस असार संसारमें किसीका वियोग होना वैराग्यका कारण होता है और वह सुख-शान्तिका विस्तार करता है।

१०२६—कछुएके पीठपर चाहे बाल उग जायँ, बन्ध्याका पुत्र किसीको मार डाले, आकाशमें फूल फूल जायँ, मृग-जलसे प्यास मिट

जाय खरगोशके सींग आ जायँ, अन्धकार सूर्यका नाश कर दे और बर्फमें अग्नि प्रकट हो जाय, परंतु रामसे विमुख मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता।

१०२७—ज्ञानीकी बुद्धिमें फल और हेतुसे आत्माकी पृथक्ता प्रत्यक्ष है, इसलिये उनके मनमें अनात्म-पदार्थोंमें 'मैं यह हूँ' ऐसा आत्मभाव नहीं हो सकता।

१०२८—गोविन्द-विरहमें मेरा निमेषकाल भी युगके समान बीतता है। मेरी आँखोंने वर्षा-ऋतुका रूप धारण किया है और समस्त जगत् मुझे शून्य-सा प्रतीत होता है।

१०२९—प्रभुको प्राप्त करनेका पहला साधन है—प्रभुको प्राप्त करनेका निश्चय । यह निश्चय होनेपर ही इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है, कुविचार क्षीण हो जाते हैं और उच्च अवस्था प्राप्त हो जाती है।

१०३०—अरी बुद्धि चकवी ! तू भगवान्के चरण-सरोवरमें जा बस, जहाँ न तो कभी प्रेम-वियोग होगा और न रोग, दुःख या शोक ही है तथा रात-दिन 'राम-राम' की वर्षा हो रही हैं।

१०३१—कल करना हो सो आज ही कर लो और जो आज करना हो, उसे अभी कर लो, पलमें मृत्यु हो जायेगी, फिर कब करोगे । लोग कैसे बावले हैं जो झूठे सुखको सुख कहते हैं और मनमें मोद मानते हैं। अरे ! यह जगत् तो कालका चबैना है। कोई कालके मुखमें है तो कोई हाथमें।

१०३२—जगत्का जीवन पानीके बुल्लेके समान है, एक उठता है तो दूसरा बिला जाता है।

१०३३—कामवासना जाग्रत् होनेपर नामकी धुन लगा देनी चाहिये। जोर-जोरसे कीर्तन करने लगना चाहिये। कामवासना नाम-जप

तथा नाम-कीर्तनके सामने कभी ठहर नहीं सकती।

१०३४—परमात्मदेवको जान लेनेपर सारे बन्धनोंका नाश हो जाता है। क्लेशोंके क्षीण हो जानेसे जन्म-मृत्युका अभाव हो जाता है। परमात्माका ध्यान करनेसे तीनों देहोंका भेदन हो जाता है और वह केवल आप्तकाम विश्वके ऐश्वर्यको प्राप्त होता है।

१०३५—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध-इन इन्द्रियोंके विषयोंमें कामनासे प्रवृत्त नहीं होना चाहिये और मनसे उनके विरुद्ध भावना करके, यानी विषय मिथ्या हैं और परिणाममें नरकोंमें ले जानेवाले हैं, ऐसा विचार करके उनके अति प्रसङ्गको छोड़ देना चाहिये।

१०३६—यह समस्त विश्व भगवान्‌का ही विस्तृत रूप है। अतएव बुद्धिमानोंको चाहिये कि सबको अभेद-दृष्टिसे अपने ही समान देखें।

१०३७—रागके समान संसारमें दुःखका अन्य कोई कारण नहीं है, राग ही सबसे बढ़कर दुःख देनेवाला है और त्यागके समान कोई सुखदाता नहीं है।

१०३८—साधुओंके सङ्गसे श्रीभगवान्‌के पराक्रमका यथार्थ ज्ञान करानेवाली, हृदय और कानोंको सुख देनेवाली कथाएँ सुननेको मिलती हैं, उन कथाओंसे मोक्षरूप भगवान्‌में श्रद्धा होती है, श्रद्धासे रति और रतिसे भगवान्‌में भक्ति होती है।

१०३९—बुद्धिमान् धीर पुरुषोंको चाहिये कि और सब कर्मोंको छोड़कर आत्माके विचारमें तत्पर रहकर संसार-बन्धनसे छूटनेका यत्न करें।

१०४०—धन चुराया गया, रोता क्यों हैं? क्या चोर ले गये? रो अपनी इस समझपर। प्यारे लेने-ले जानेवाला दूसरा कोई नही है, वह एक ही है जो नये-नये बहानोंसे तेरा दिल लिया चाहता है। गोपियोंके इससे बढ़कर और क्या भाग्य होंगे कि श्रीकृष्ण उनका मक्खन चुरावें। धन्य हैं वह, जिसका सब कुछ चुरा लिया जाय। मन और चित्ततक भी बाकी न रहे।

१०४१—अहंकार करना व्यर्थ है। जीवन, यौवन कुछ भी यहाँ नहीं रहेगा। सब तीन दिनोंका सपना है।

१०४२—हे प्रभो! तेरे सामने हाथ जोड़कर सच्चे हृदयसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि मैं माँगूँ या न माँगूँ, मुझे ऐसी कोई चीज कभी न देना जो मुझे अच्छी लगनेपर भी मेरा बुरा करनेवाली हो और मेरी बुद्धिको कुमार्गपर ले जानेवाली हो।

१०४३—समस्त अनैक्यमें ऐक्यको उपलब्ध करना और सारी विभिन्नताओंमें एक अभिन्न सद्वस्तुको हृदयमें धारण करना ही भारतीय साधनाका अन्तिम लक्ष्य है।

१०४४—जिस प्रकार पारसके स्पर्श होते ही लोहा सोना हो जाता है, समुद्रमें बूँद गिरते ही उसमें मिल जाती है और गङ्गामें कोई नदी मिलते ही वह गङ्गा हो जाती है, उसी प्रकार सावधान, उद्योगी और दक्ष पुरुष संतोंकी संगति करते ही मोक्षको पा जाता है।

१०४५—जिज्ञासु पुरुषको चाहिये कि वह समस्त इन्द्रियोंको मनमें लय करे, मनको व्यष्टि-बुद्धिमें लय करे, व्यष्टि-बुद्धिको महत् यानी समष्टि-बुद्धिमें लय करे और समष्टि-बुद्धिको शान्त आत्मामें लय करे।

१०४६—जो मनुष्य दूसरोंकी आजीविकाका नाश करते हैं, दूसरोंके घर उजाड़ते हैं, दूसरोंकी स्त्रीका उसके पतिसे बिछोह कराते हैं, मित्रोंमें भेद उत्पन्न करते हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं।

१०४७—पुत्र, स्त्री, मित्र, भाई और सम्बन्धियोंके मिलनेको मुसाफिरोंके मिलनेके समान समझना चाहिये।

१०४८—जैसे नींद छूटनेके साथ ही स्वप्नका भी नाश हो जाता है वैसे ही इस देहके नाश होनेके साथ ही सब सम्बन्धी भी छूट जाते हैं।

१०४९—वे सत्यके उपासक महात्मा मुनि धन्य है, जिन्हें न

किसीसे राग है और न किसीसे द्वेष है, जो सभी प्राणियोंमें समान भाव रखकर सबको समदृष्टिसे देखते हैं।

१०५०—जिसका मन विषयोंमें नहीं है, जिसका मन निर्मल है, जिसकी इन्द्रियाँ विकारको प्राप्त नहीं होतीं, उसीका नाम वैष्णव है।

१०५१—अपनी स्त्रीके सिवा अन्य किसी स्त्रीसे सम्बन्ध न रक्खे। किसी भी स्त्रीको अपने पास सहसा न रहने दे। अपनी-स्त्रीसे भी उचित ही सम्बन्ध रक्खे और चित्तको कभी आसक्त न होने दे।

१०५२—धान जबतक सीजता नहीं तभीतक उग सकता है, लेकिन एक बार भी सीज जानेपर वह नहीं उगता, ऐसे ही जीव एक बार ज्ञानाग्निमें पक गया तो फिर उसे जन्म लेना नहीं पड़ता। जबतक अज्ञान है तभीतक आना-जाना है।

१०५३—जब विवेकके द्वारा मनकी सारी उपाधियाँ छूट जाती हैं और वैराग्यके उत्पन्न हो जानेसे गृहस्थीका बखेड़ा छूट जाता है, तब मनुष्य अंदर और बाहर दोनों ओरसे मुक्त होकर योगी हो जाता है।

१०५४—जिस क्षण भगवन्नामका स्मरण न हो, वही सबसे बड़ा दुःख है और भगवन्नामका समरण होता रहे तो शरीरको चाहे कितना भी क्लेश हो उसे परमसुख ही समझना चाहिये।

१०५५—तुम्हारे सब सांसारिक बन्धन और सम्बन्ध तुम्हें चिन्ता और दुर्भाग्यके वशमें डालते हैं। उनसे ऊपर उठो। ईश्वरसे अपनी एकताका अनुभव करो, बस तुम्हारा निस्तार है। तुम स्वयं मोक्षरूप हो।

१०५६—जिस मनुष्यमें ईश्वरका स्मरण करनेकी शक्ति हो उसको गरीब या दीन न समझकर महान् धनवान् समझो। और जिसके पास यह ऊँची-से-ऊँची और बड़ी-से-बड़ी सम्पत्ति नहीं है, वह चाहे बड़ा भारी बादशाह हो; परंतु असलमें वही गरीब और अनाथ है।

१०५७—पिता-माता ईश्वरके प्रतिनिधिस्वरूप हैं, साक्षात् प्रत्यक्ष

देवता हैं। पिता-मातामें परमात्मसत्ताकी स्फूर्तिके दर्शन कर गाढ़ भक्तिभावसे इनकी सेवा करते रहनेसे भी निश्चय ही मनुष्यको सिद्धि मिल जाती है।

१०५८—जिनको दूसरोंकी निन्दा करनेमें रस आता है, वे मित्र बनानेकी मीठी कला नहीं जानते। वे फूटका बीज बोकर अपने पुराने मित्रोंको दूर हटा देते हैं।

१०५९—परमात्मा निश्चय ही हमें सुख देते हैं। यदि हमारे पीछे पाप न लगे तो हमारे सामने सदा कल्याण ही होता रहे।

१०६०—महर्षियोंने प्रतिष्ठाको शूकरी-विष्ठाके समान अत्यन्त हेय बतलाया है। अतएव त्यागीको सदा कीटकी तरह प्रतिष्ठाहीन होकर विचरण करना चाहिये।

१०६१—सब इन्द्रियोंमेंसे यदि एक भी इन्द्रिय विचलित हो जाती है तो उससे इस मनुष्यकी बुद्धि ऐसे चली जाती है जैसे मशकमें जरा-सा छेद होनेपर तमाम जल निकल जाता है।

१०६२—चैतन्यरूप वस्त्रसे युक्त महाभाग्यवान् पुरुष वस्त्रहीन, वस्त्रयुक्त अथवा मृग-चर्मादि धारणकर उन्मत्तके समान, बालकके समान अथवा पिशाचादिके समान स्वेच्छानुसार भूमण्डलमें विचरते रहते हैं।

१०६३—भगवान्‌की भक्ति करना ही मनुष्यका परम पुरुषार्थ है। उन्हींकी भक्ति करके परम शान्तिको प्राप्त करो।

१०६४—मेधावी और बहुश्रुत सत्पुरुषोंका संग करो, क्योंकि जो महापुरुषोंकी शरण लेता है, वह उसको जानकर सुख प्राप्त करता है।

१०६५—जब एक रामको ही शरण लेनेसे स्वार्थ और परमार्थ सहजमें ही सिद्ध हो जाते हैं, तब दूसरेके द्वार पर जाकर अपनी हीनता दिखलाना उचित नहीं।

१०६६—मनुष्य ! उस दिनको याद रख जिस दिन तेरी देह छूट जायगी और गङ्गातटपर जाकर जला दी जायगी, यहाँका न कुछ संग

जायगा और न कोई सहायक होगा।

१०६७—जो दूसरोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेमें चतुर होते हैं, वे समझते हैं कि हम इसी तरहसे भगवान्‌को भी धोखा दे सकेंगे; परंतु सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ भगवान्‌के सम्बन्धमें ऐसा सोचना उनका निरा पागलपन है।

१०६८—मूर्ख समझता है कि वह इन्द्रियोंके सुख लूटता है, किन्तु वह यह नहीं जानता कि अस्वच्छ विचार या कार्यके लिये बदलेमें उसकी जीवन-शक्ति ही बिक जाती अथवा नष्ट हो जाती है।

१०६९—हृदयकी सरलता और निर्मलता ईश्वरीय ज्योति है, यह ज्योति ही ईश्वरका मार्ग दिखलाती है। प्रभुसे क्षमाकी आशा इन साधनोंकी ओर खींचती है, प्रभुका भय ही पापसे निवृत्त करता है। और प्रभु-महिमाका स्मरण ही इस सत्यके मार्गपर आगे बढ़ाता है।

१०७०—भगवान्‌के दास कहलाकर जगत्‌की आशा मत रक्खो। जब समर्थ स्वामीको प्राप्त कर लिया तब किसीके सामने दीन क्यों होते हो?

१०७१—जगत्‌की किसी भी वस्तुका विश्लेषण करनेपर उसमें सत्ता, प्रकाश, आनन्द, नाम और रूप ये पाँच चीजें मिलती हैं। इनमें पहली तीन चीजें ब्रह्मकी अपनी हैं और शेष दो जगत्‌की हैं। अतएव नाम-रूपसे मन हटाकर सच्चिदानन्दमें अनुराग कर।

१०७२—जबतक परमात्माके यथार्थ स्वरूपकी पहचान नहीं होती तभीतक अविद्यारूप संसार और संसारी जीव भासते है, बास्तव-स्वरूपकी पहचान होते ही जीव-भाव और दृश्यभाव निवृत्त होकर एक परब्रह्मरूप ही दृष्टिगोचर होने लगता है।

१०७३—शोक, मोह, दुःख, सुख और देहकी उत्पत्ति यह सब मायाके ही कार्य हैं और यह संसार भी स्वप्नके समान बुद्धिका विकार ही है। इसमें वास्तविकता कुछ भी नही है।

१०७४—विषय-वासनाके वशमें होकर सांसारिक बन्धनोंमें

फँसना मानवधर्म नहीं है। स्त्री, धन, पुत्र, पशु, घर, भूमि, हाथी, खजाना—ये सभी नाशवान्, क्षणभङ्गुर और चलायमान हैं। इनमें ममता रखना भूल है। एकमात्र भगवान्‌की भक्तिसे प्राप्त मोक्ष ही अक्षय और सर्वश्रेष्ठ है, अतएव सभी मनुष्योंको भगवद्भक्तिमें लग जाना चाहिये।

१०७५—ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होगी, इसमें कोई संदेह नहीं, परंतु उस ज्ञानकी कद्र करनेवाला शुद्ध मन भी तो होना चाहिये। वैराग्यके बिना ज्ञान कभी नहीं ठहर सकता।

१०७६—भोजनमें जहर मिला हो और यह बात भोजन करनेवालेको मालूम हो जाय तो वह तुरंत थाली छोड़कर उठ जायगा, इसी प्रकार संसारकी अनित्यता और दुःखरूपताका पता लगते ही मनुष्यको वैराग्य हो जाता है। फिर वैराग्य मनसे हटता ही नहीं।

१०७७—मैंने संसारके सुख-दुःख, जीवन-मरण तथा जरा और रोग देख लिये है, उन्हींके चंगुलसे बचनेके लिये मैंने संन्यास लिया है। क्या फिर भी मैं मूर्खोंकी तरह उनका स्वाद चखनेके लिये लौट सकता हूँ?

१०७८—भगवान्‌की खोज करना और राज्यपदकी इच्छा रखना—ये दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते। इनमें उतना ही विरोध है जितना धूप और छायामें, आग और पानीमें। जो मनुष्य राज्यपद पाना चाहता है उसके लिये शान्तिकी इच्छा करना व्यर्थ है।

१०७९— देहको चाहे जितना सुख-दुःख हो भक्त उसका ख्याल नहीं करते, उनकी वृत्ति एकमात्र भगवद्भक्तिमें लगी रहती है, वे नित्य भक्तिके ऐश्वर्यमें सराबोर रहते हैं।

१०८०—घरमें दीया जलानेसे वह झरोखेमें भी प्रकाशित है। वैसे ही भगवान् मनमें प्रकट होते ही अन्य इन्द्रियोंमें भी भजनानन्द उत्पन्न कर देते हैं।

१०८१—जो किसी भी बहानेसे, हँसीमें, दुःखमें अथवा वैसे ही भगवान्‌के नामोंका उच्चारण कर लेता है उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

१०८२—सांसारिक भोगोंके प्राप्त होनेपर जो उन्हें लेता ही नहीं, वह पूरा मनुष्य है। जो लेता है; परंतु लेकर सच्चे पात्रोंको दे देता है वह भी सच्चा है, पर वह आधा मनुष्य है; परंतु जो मनुष्य दान लेता है, पर किसीको देता नहीं, वह तो मक्खीचूस ही नहीं, मधुमक्षिका-जैसा भी नहीं है; क्योंकि ऐसा करनेमें वह अपना कुछ भी हित या कल्याण नहीं करता।

१०८३—जो मनुष्य परलोककी साधना न कर केवल संसारकी साधनामें ही लगा रहता है, वह इस लोक और परलोकमें दुःख और नुकसान ही प्राप्त करता है।

१०८४—ज्ञान और प्रेम सर्वथा भिन्न वस्तु नहीं है। किसी भी एक मार्गका अवलम्बन करो, लक्ष्यस्थलपर पहुँचते ही इस बातको तुरंत समझ सकोगे कि जिसको 'अपरोक्षज्ञान' या आत्मदर्शन कहते हैं, सचमुच उसीका नाम 'प्रेम' है।

१०८५—रक्त, मांस और हड्डियोंसे बने हुए यन्त्ररूप बहुतेरे मनुष्य केवल खा-पीकर जगत्‌के पदार्थोंको बिगाड़ रहे हैं, उनमें बुद्धिमान् मनुष्य बहुत ही दुर्लभ है। जो मोहके वश हुए बार-बार जन्म-मृत्यु और जरारूप दुःखोंवाले संसारमें ही पड़ा करते हैं, कुछ भी विचार नहीं करते, उन्हें पशु ही समझना चाहिये।

१०८६—जो अपने लिये या किसी दूसरेके लिये पुत्र, धन और राज्य नहीं चाहते और न अधर्मसे ही अपनी उन्नति चाहते हैं वे ही पुरुष सदाचारी, प्रज्ञावान् और धार्मिक हैं।

१०८७—गौ अपने गलेमें पड़ी हुई मालाके रहने या गिरनेकी तरफ जिस प्रकार कुछ भी ध्यान नहीं देती, इसी प्रकार प्रारब्धकी डोरीमें

पिरोया हुआ यह शरीर रहे या जाय, जिसके चित्तकी वृत्ति आनन्दरूप ब्रह्ममें लीन हो गयी है, वह पुरुष फिर उसकी ओर देखता ही नहीं।

१०८८—भगवान्‌के रूपका ध्यान करो, भगवन्नामसङ्कीर्तन करो, भगवान्‌के गुणानुवादका गायन करो, भगवान्‌की लीलाओंका परस्पर कथन और श्रवण करो।

१०८९—हे भगवन्! मेरे जीवनके शेष दिन किसी पवित्र वनमें 'शिव, शिव, शिव'जपते हुए बीतें। साँप और फूलोंका हार,बलवान् बैरी और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थरकी शिला; रत्न और पत्थर, तिनका और सुन्दरी कामिनी—इन सबमें मेरी दृष्टि सम हो जाय।

१०९०—भगवान् श्रीराम जिसकी ओर कृपाकी नजरसे देखते हैं उसके लिये विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाते हैं, समुद्र गौके खुर-बराबर हो जाता है; अग्नि शीतल हो जाती है और भारी सुमेरु पहाड़ रजके समान हो जाता है।

१०९१—प्रेम-प्रेम तो सब कहते हैं, परंतु प्रेमको कोई नहीं पहचानता, जिसमें आठों पहर भीगा रहे वही प्रेम है।

१०९२—लौ तभी लगी समझो, जब कि वह कभी न छूटे, जिंदगीभर लौ लगी रहे और मरनेपर प्यारेमें ही समा जाय। प्रीति इसीका नाम है।

१०९३—प्राणी जबसे जन्म लेता है तभीसे उसकी उम्र घटने लगती है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा यों देखते-देखते जिस तरह तेल घट जानेसे दीपक बुझ जाता है, उसी तरह उसका जीवन बुझ जाता है।

१०९४—ईर्ष्या, लोभ, क्रोध और अप्रिय किंवा कटुवचन—इनसे सदा अलग रहो, धर्मप्राप्तिका यही मार्ग है।

१०९५—तिनकेके समान हलका बननेसे, वृक्षके समान सहिष्णु बननेसे, मान छोड़कर दूसरोंको मान देनेसे, इष्टकी महिमा समझनेसे तथा

अभिमान त्याग करनेसे साधना शीघ्र सफल होती है। इस प्रकारकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सत्सङ्ग, धर्मग्रन्थ और भक्त चरित्रका अभ्यास, गुरु-आज्ञाका पालन तथा माता-पिता आदि गुरुजनोंकी तथा भक्तोंकी सेवा-पूजा करना बहुत आवश्यक है।

१०९६—सत्ययुगमें भगवान्‌के ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे, द्वापरमें सेवासे जो फल मिलता है, वही कलियुगमें केवल श्रीहरिकीर्तनसे मिलता है। अतएव जो दिन-रात श्रीहरिका प्रेमपूर्वक कीर्तन करते हुए ही घरका सारा काम करते हैं, वे भक्तगण धन्य हैं।

१०९७—एक क्षणके लिये भी आयुका नाश होना बंद नहीं,होता; क्योंकि शरीर अनित्य है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको विचारना चाहिये कि नित्य वस्तु कौन-सी है। उस नित्य वस्तुको जान लेना ही सबसे बड़ा ज्ञान है।

१०९८—जब काल सुमेरु-जैसे पर्वतको भी जला देता हैं, बड़े-बड़े सागरोंको सुखा देता है, पृथ्वीका नाश कर देता है, तब हाथीके कानकी कोरके समान चञ्चल मनुष्य तो किस गिनतीमें है।

१०९९—काम, क्रोध बड़े ही क्रूर हैं, इनमें दयाका नाम नहीं, इन्हें काल ही समझो। ये ज्ञाननिधिके साँप, विषयकन्दराके बाघ, भजनमार्गके घातक हैं। ये जलमें नहीं बिना ही जलके डुबो देते हैं, बिना ही आगके जला देते है और बिना ही शस्त्रके मार डालते हैं।

११००—वे माता-पिता धन्य हैं और वही पुत्र धन्य है जो किसी प्रकारसे रामका भजन करता है। जिसके मुखसे धोखेसे भी रामका नाम निकलता है उसके पैरोंकी जूती मेरे तनके चमड़ेसे बने तो भी कम ही है। वह चाण्डाल भक्त अच्छा जो रात-दिन रामको भजता है। जिसमें हरिका नाम नहीं वह ऊँचा कुल किस कामका।

११०१—मनरूपी पखेरू तभीतक विषयवासनाके आकाशमें

उड़ता है, जबतक कि वह ज्ञानरूपी बाजकी झपेटमें नहीं आता।

११०२—आवश्यकता चावलकी होती है, परंतु चावल बोनेसे वह उपजता नहीं। चावल पानेके लिये बोना पड़ता है धान। धानमें छिलका यद्यपि अनावश्यक है; परंतु छिलकेके बिना धान नहीं उगता। इसी प्रकार शास्त्रविहित आचारोंका पालन किये बिना कभी धर्म-लाभ नहीं होता।

११०३—जो वस्तु अनादि और अनन्त है, उसीमें सुख है; अन्तवान् वस्तुमें सुख नहीं है। अन्तवान् वस्तुका एक दिन अवश्य नाश होगा, इसलिये जो उसपर आसक्त होगा उसको दुखी होना ही पड़ेगा।

११०४—जो बिना जड़की अमर बेलको पालते हैं उन प्रभुको छोड़कर दूसरे किसकी खोज करनी चाहिये ?

११०५—जो एक प्रभु अपनी नियामक शक्तिके द्वारा सबको नियममें रखते हैं, जो एक अहेतु होते हुए ही सब लोकोंकी उत्पत्ति और लय करनेमें समर्थ हैं, उस देवको जो लोग पहचान लेते हैं वे अमृतरूप हो जाते हैं।

११०६—मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण मन है, विषयासक्त मनसे बन्धन होता है और विषयवृत्तिसे रहित मनसे मुक्ति। अतएव मुक्तिकी चाह करनेवाले मनको सदा विषयोंसे रहित रक्खे। विषयसंगसे छूटा हुआ मन जब उन्मनीभावको प्राप्त होता है, तब परमपदकी प्राप्ति होती है।

११०७—जीवित अवस्थामें शरीरको लोग देव (नरदेव,भूदेव) शब्दसे पुकारते हैं, परंतु मर जानेपर उस शरीरके या तो (सड़ जानेपर) कीड़े हो जाते हैं, या (जला देनेपर) राख हो जाती है अथवा (पशु आदिके खानेपर उसकी) विष्ठा बन जाती है। ऐसे शरीरके लिये जो मनुष्य दूसरे प्राणियोंसे द्रोह करता है, जिससे नरककी प्राप्ति होती है, वह

क्या अपने स्वार्थको जानता है ?

११०८—परमात्माका वाचक प्रणव है, उसका जप और उसके अर्थकी भावना करनी चाहिये। इससे आत्माकी प्राप्ति और विघ्नोंका अभाव होता है।

११०९—परलोकमें सहायताके लिये माता-पिता, पुत्र-स्त्री और सम्बन्धी कोई नहीं रहते। वहाँ एक धर्म ही काम आता है। मरे हुए शरीरको बन्धु-बान्धव काठ और मिट्टीके ढेलोंके समान पृथ्वीपर पटककर घर चले जाते हैं। एक धर्म ही उसके साथ जाता है।

१११०—मन, वाणी और कर्मसे प्राणिमात्रके साथ अद्रोह, सबपर कृपा और दान—यही साधु पुरुषोंका सनातन धर्म है।

११११—जो आत्मनिष्ठ हैं तथा जो आत्माके सिवा कुछ भी नहीं चाहते, वे विषयी मनुष्योंकी भाँति रमणीय वस्तुकी प्राप्तिमें हर्षित नहीं होते और दुःखरूप वस्तुकी प्राप्तिमें उद्विग्न नहीं होते।

१११२—सोये हुए गाँवको जैसे बाढ़ बहा ले जाती है। वैसे ही पुत्र और पशुओंमें लिप्त मनुष्योंको मौत ले जाती है। जब मृत्यु पकड़ती है उस समय पिता, पुत्र, बन्धु या जातिवाले कोई भी रक्षा नहीं कर सकते। इस बातको जानकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शीलवान् बने और निर्माणकी ओर ले जानेवाले मार्गको जल्द पकड़ ले।

१११३—भगवान्‌की मायाके दोष-गुण बिना हरिभजनके नहीं जाते, अतएव सब कामनाओंको छोड़कर श्रीरामको भजो।

१११४—जो दिन आज है, वह कल नहीं रहेगा, चेतना है तो जल्दी चेत जा, देख मौत तेरी घातमें घूम रही है।

१११५—श्रीरामके चरणोंकी पहचान हुए बिना मनुष्यके मनकी दौड़ नहीं मिटती, लोग केवल भेष बनाकर दर-दर अलख जगाते हैं, परंतु भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम नहीं करते, उनका जन्म वृथा है।

१११६—जो शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाहित होता है, वही आत्माको देखता है और वही सबका आत्मरूप होता है।

१११७—जिन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर—इन छः शत्रुओंको जीत लिया है, वे पुरुष ईश्वरकी ऐसी भक्ति करते हैं जिसके द्वारा भगवान्‌में परम प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

१११८—जैसे प्रवाहके वेगमें एक स्थानकी बालू अलग-अलग बह जाती है और दूर-दूरसे आकर एक जगह एकत्र हो जाती है, ऐसे ही कालके द्वारा सब प्राणियोंका कभी वियोग और कभी संयोग होता है।

१११९—सरलता, कर्तव्यपरायणता, प्रसन्नता और जितेन्द्रियता तथा वृद्ध पुरुषोंकी सेवा—इनसे मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति होती है।

११२०—जिससे सब जीव निडर रहते हैं और जो सब प्राणियोंसे निडर रहता है, वह मोहसे छूटा हुआ सदा निर्भय रहता है।

११२१—जो मनुष्य समस्त भोगोंको पा जाता है और जो सब भोगोंको त्याग देता है, इनमें सब भोगोंको पानेवालेकी अपेक्षा सबका त्याग करनेवाला श्रेष्ठ है।

११२२—जो संग्रहका त्याग करके अपरिग्रहमें रत है, ऐसे चित्तके मलसे रहित हुए ज्ञानवान् पुरुष ही निर्वाणको प्राप्त होते हैं।

११२३—जैसे अग्निके समीप रहनेवाले पुरुषका अन्धकार और शीत अग्निकी स्वाभाविक शक्तिसे ही दूर हो जाता है, वैसे ही पापी पुण्यात्मा जो कोई भी भगवान्‌को भजता है, वही उनकी महिमाको जानता है और वही शान्ति प्राप्त करता है।

११२४—जब दृश्य नहीं है, तब दृष्टि भी कुछ नहीं है, दृश्यके बिना देखना कहाँ, दृश्यके कारण ही द्रष्टा और दर्शन हैं।

११२५—काम, क्रोध, मद, लोभकी खान जबतक मनमें है, तबतक पण्डित और मूर्खमें क्या भेद है? दोनों एक समान ही हैं।

११२६—सब ओरसे मनको हटाकर भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेनेवाले भगवान्‌के प्रिय पुरुषमें यदि कोई दोष भी हो तो हृदयमें रहनेवाले सर्वेश्वर भगवान् उसे नष्ट कर देते है।

११२७—यह अखिल जगत् सर्वभूतमय भगवान् विष्णुका ही विस्तार है, अतएव ज्ञानी पुरुष इसे अपने साथ आत्मवत् अभेद-रूपसे देखें।

११२८—यह अक्षर (कभी नाश न होनेवाला) ही ब्रह्म है; अक्षर ही परम है, इस अक्षरको ही जानकर जो पुरुष जैसी इच्छा करता है, उसको वही प्राप्त होता है। इस अक्षर परमात्माका आश्रय ही श्रेष्ठ है। यह आश्रय सबसे उत्तम है। इस आश्रयका रहस्य जानकर जीव ब्रह्मलोकमें पूजित होता है।

११२९—चित्तसे निरन्तर परमात्मतत्त्वका चिन्तन करते रहो, अनित्य धनकी चिन्ता छोड़ दो। क्षणभरके साधुसंगको भी भवसागरसे तारनेके लिये नौकास्वरूप समझो।

११३०—भोगोंमें रोगका भय है, कुलमें च्युत होनेका भय है, धनमें राजाका भय है, मौनमें दीनताका भय है, बलमें बैरीका भय है, रूपमें बुढ़ापेका भय है, शास्त्रमें विवादका भय है, गुणोंमें दुष्टोंका भय है, शरीरमें मृत्युका भय है, इसी प्रकार संसारकी सभी वस्तुओंमें मनुष्योंको कोई-न-कोई भय है। केवल एक 'वैराग्य'में कोई भय नहीं है।

११३१—इस संसारकी अपेक्षा भी कोई प्रियतम वस्तु इसकी अवश्य है; क्योंकि यह मन समय-समयपर इससे छूटकर उसकी ओर दौड़ना चाहता है।

११३२—संसार क्षणभङ्गुर और अनित्य है, यहाँ एक पलका भी भरोसा नहीं, जो कुछ कल्याणका काम करना है तुरंत कर लो।

११३३—गायका तुरंत जन्मा हुआ बच्चा जैसे बीसों बार गिरने उठनेपर कहीं खड़ा हो सकता है, इसी प्रकार साधना करते समय साधक

अनेक बार गिर पड़नेपर कहीं अन्तमें सिद्धि-लाभ करता है।

११३४—यदि मेरे दिलमें तीरकी नोंक नहीं चुभती तो तीरका क्या दोष है ? क्योंकि मेरे दिलमें जो प्रेमकी आग जलती है, वह इतनी भड़क रही है कि उसमें लोहा भी पड़े तो वह गल जाता है।

११३५—जो हृदय कोमल, दीन और भगवान्‌के विरहसे व्याकुल है, उसीमें प्रभुका निवास है।

११३६—संसारके लोग मेरी जितनी चाहे निन्दा करें, मैं इसका कुछ विचार नहीं करता। जिसके मुख है जो इच्छा हो सो कहे। मैं तो हरिरसमें मतवाला होकर कभी धरती पर लोटता हूँ, कभी नाचता हूँ और कभी सो जाता हूँ।

११३७—मनुष्य मनुष्यकी आँखोंमें धूल झोंक सकता है, पर परमात्माकी आँखमें धूल नही झोंकी जा सकती।

११३८—स्त्रियोंकी मीठी बातोंमें नही भूलना चाहिये। इनकी बातें रसमयी हैं, किंतु वैरागीके लिये तलवारकी धारके समान हैं। उनसे अपनी रक्षा करना कठिन है।

११३९—जो परायी स्त्रियोंको माताके समान नहीं मानता वह महामूर्ख है। उसके पापका प्रायश्चित्त नहीं।

११४०—जो परस्त्रियोंको माताके समान, पराये धनको मिट्टीके ढेलेके समान और सब प्राणियोंको अपने समान समझता है, वही देखता है और तो सब अन्धे हैं।

११४१—शरीर अनित्य है, ऐश्वर्य अनित्य है, मृत्यु सदैव पास है, इसलिये धर्म करो।

११४२—जो अपना जीवन सुखसे बिताना चाहें, वे विषयोंका संग न करें और जो परमपदके अभिलाषी हों, वे तो उनका नाम भी न लें।

११४३—जो तुम्हारी बातोंको सुनना चाहें, उन्हींको अपनी बातें

सुनाओ। जो तुम्हारी बातें सुनना न चाहें, उनके गले मत पड़ो।

११४४—विषयभोगोंमें सुख नहीं है। एक-न-एक दिन मनुष्यको इनसे अलग होना ही पड़ता है। अलग होनेके समय विषय-भोगीको बड़ा दुःख होता है।

११४५—आत्मचिन्तन करो, पर आत्मचिन्तन करना सहज काम नहीं है। इसके लिये मनको वशमें करना होगा, उसे विषयोंसे हटाना होगा, उसे वृत्तियोंसे अलग कर एकाग्र करना होगा, तभी सफलता हो सकेगी।

११४६—मूर्ख मनुष्य भाग्यपर संतोष नहीं करता, धनके लिये मारा- मारा फिरता है। जब कुछ हाथ नहीं लगता, तब रोता और कलपता है।

११४७—यदि तू सुख-शान्तिसे जीवनयापन करना चाहता है तो तृष्णा पिशाचीके फंदेसे निकलकर भाग्यपर संतोष कर।

११४८—अरी पामर तृष्णा! मैं तुझसे पूछता हूँ कि इतने कुकर्म कराकर भी तुझे संतोष हुआ या नहीं।

११४९—सूर्यके उदय और अस्तके साथ मनुष्योंकी जिन्दगी रोज घटती जाती है। समय भागा जाता है, पर कारोबारमें मशगूल रहनेके कारण वह भागता हुआ नहीं दीखता। लोगोंको पैदा होते, विपत्तिग्रस्त होते और मरते देखकर भी मनमें भय नहीं होता। इससे मालूम होता है कि मोहमयी प्रमादरूप मदिरा (शराब) के नशेमें संसार मतवाला हो रहा है।

११५०—मनुष्य दूसरेको बूढ़ा हुआ तथा मरनेवाला देखता है, पर आप यही समझता है मैं तो सदा जवान रहूँगा-अमर रहूँगा।

११५१—मनुष्यों ! मिथ्या आशाके फेरमें दुर्लभ मनुष्य देहको यों ही नष्ट न करो। देखो, सिरपर काल नाच रहा है। एक श्वासका भी

भरोसा न करो। जो श्वास बाहर निकल गया, वह वापस आवे न आवे, इसलिये गफलत और बेहोशी छोड़कर अपनी कायाको क्षणभङ्गुर समझकर दूसरोंकी भलाई करो और अपने सिरजनहारमें मन लगाओ; क्योंकि नाता उसका सच्चा है।

११५२—माँगना और मरना दोनों समान हैं, बल्कि माँगनेसे मरना भला। याचना करनेसे त्रिलोकीनाथ भगवान्‌को भी छोटा होना पड़ा, तब दूसरोंके लिये कहना ही क्या?

११५३—हाथके ऊपर हाथ करो, पर हाथके नीचे हाथ न करो। जिस दिन दूसरोंके आगे हाथ फैलानेकी नौबत आवे, उस दिन मरण हो जाय तो अच्छा।

११५४—स्त्री-पुत्रोंके पालन-पोषणकी चिन्तामें मनुष्यकी सारी आयु बीत जाती है; पर परमात्माके भजनमें उसका मन नहीं लगता।

११५५—स्त्री-माया ही संसार-वृक्षका बीज है। शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध-उसके पत्ते काम-क्रोधादि उसकी डालियाँ, पुत्र-कन्या प्रभृति उसके फल हैं और तृष्णारूपी जलसे यह संसार वृक्ष बढ़ता है।

११५६—लोह और काठकी बेड़ियोंसे चाहे कभी छुटकारा हो जाय, पर स्त्री-पुत्रादिकी मोहरूपी बेड़ियोंसे पुरुषका पीछा नहीं छूट सकता। जिनके मुँह देखनेसे पाप लगता है, स्त्रीके लिये उन्हींकी खुशामदें करनी पड़ती हैं।

११५७—किस्मतको देखो कि जिसने मनुष्यको कितना कमजोर बनाया, पर काम उससे दोनों लोकोंके लिये गये। उसे इस लोक और परलोककी फिक्र लगा दी।

११५८—स्त्रीके वशमें होना सर्वनाशका बीज बोना है।

११५९—गर्दनपर बिखरे हुए बालोंवाला करालमुखी सिंह, अत्यन्त मतवाला हाथी और बुद्धिमान् समरशूर पुरुष भी स्त्रियोंके आगे

परम कायर हो जाते हैं।

११६०—मनुष्य अपने पापोंको कितना ही छिपावे, पर एक-न-एक दिन वे प्रकट हो जाते हैं।

११६१—घी, नोन, तेल, चावल, साग और ईंधनकी चिन्तामें बड़े-बड़े मतिमानोंकी उम्र पूरी हो जाती है। इसीसे मनुष्यको ईश्वर-भजनका समय नहीं मिलता।

११६२—जितनी आवश्यकताएँ कम होंगी, उतना ही सुख बढ़ेगा, इसलिये महात्मा लोग महलों में न रहकर वृक्षोंके नीचे उम्र काट देते हैं।

११६३—विषयोंको हमने नहीं भोगा, किंतु विषयोंने हमारा ही भुगतान कर दिया, हमने तपको नहीं तपा, किंतु तपने हमें ही तपा डाला, कालका खात्मा न हुआ, किंतु हमारा ही खात्मा हो चला, तृष्णाका बुढ़ापा न आया, किंतु हमारा ही बुढ़ापा आ गया।

११६४—लोग दुनियाको नहीं छोड़ते, दुनिया ही भले उन्हें निकम्मा करके छोड़ दे।

११६५—जो लोग शक्ति-सामर्थ्य रहते विषयोंको छोड़ते हैं, वे ही प्रशंसाके भाजन होते हैं।

११६६—घर-जंजालोंमें रहकर सर्दी-गर्मी और शोक-तप आदिके कष्ट उठाने ही पड़ते हैं, फिर तप ही क्यों न किया जाय ? क्योंकि घरकी झंझटोंके दुःखसे कोई लाभ नहीं, किंतु तपसे स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

११६७—धनके ध्यानसे जो सुख मिलता है, वह क्षणस्थायी और झूठा हैं। इसलिये धन-ध्यान छोड़कर आशुतोष भगवान् शिवके चरणोंका ध्यान करना अच्छा, जिससे सभी मनोरथ पूरे होते है और अन्तमें जन्म-मरणके झगड़ेसे छुटकारा मिलकर परम पद—मोक्ष मिल जाता है।

११६८—चेहरेपर झुर्रियाँ पड़ गयीं, सिरके बाल पककर सफेद हो गये, सारे अंग ढीले हो चले पर तृष्णा तो तरुण होती जाती है।

११६९—जवानी बुढ़ापेसे, आरोग्यता व्याधियोंसे और जीवन-मृत्युसे ग्रसित है, पर तृष्णाको किसी उपद्रवका डर नहीं।

११७०—मनुष्य नितान्त निकम्मा और जर्जरशरीर होनेपर भी तृष्णाको नहीं त्यागता, यही बड़े आश्चर्यकी बात है।

११७१—अङ्ग शिथिल हो गये हैं, बुढ़ापेसे सिर सफेद हो गया, मुहँके दाँत गिर गये, हाथमें ली लकड़ीकी तरह शरीर काँपता है, तो भी मनुष्य आशारूपी पाशको नहीं त्यागता।

११७२—भगवान्‌के दर्शनके लिये जिसके मनमें अत्यन्त तीव्र आकर्षण होता है, वह विषयोंकी क्षणभङ्गुरता और अनित्यताको देखकर विषयोंकी ओर कभी ताकता ही नहीं।

११७३—शरणागतिके द्वारा भगवान्‌से उपदिष्ट साधनमें लग जानेपर शरणागत साधकको भगवान् स्वयं अपने स्वरूपका तत्त्व समझा देते हैं।

११७४—इस मृत्युके जगत्‌में अमृतके पानेका एक ही उपाय है जो केवल उसीकी ओर देखता है, दूसरी ओर ताकता ही नहीं, वही मृत्युके हाथसे छुटकारा पा सकता है।

११७५—जैसे संसारकी बात सोचते-सोचते मनुष्य बड़ा भारी संसारी बन गया है, वैसे ही ईश्वरकी बात सोचते-सोचते ठीक वैसा ही बन सकता है।

११७६—हृदयमें कामनाओंका निवास है, उसीको 'संसार' कहते हैं और उनके सब तरहके नाश हो जानेको 'मोक्ष' कहते हैं।

११७७—जो निःस्पृह हैं, जिन्हें कामना या तृष्णा नहीं, वे मनुष्यरूपमें ही देवता हैं।

११७८—जो जन्म-मरणसे मुक्त होना चाहते हैं, वे तृष्णा राक्षसीके भुलावेमें न आवें। इसके चक्करमें फँसनेसे मनुष्य बाध्य होकर नीच-से-नीच कर्म करनेपर उतारू हो जाता है।

११७९—सूर्य और चन्द्रको रात-दिन चक्कर लगाने पड़ते हैं। एक-दिन क्या एक क्षण भी स्वेच्छानुसार ये आराम नहीं कर सकते, तब हम और आप तो किस गिनतीमें हैं ?

११८०—बड़ोंकी दुर्दशा देखकर छोटोंको अपनी विपत्तिपर रोना-कल्पना नहीं बल्कि संतोष करना चाहिये। संसारमें कोई सुखी नहीं है।

११८१—विषयोंको चाहे जितने दिनोंतक क्यों न भोगो, वे एक दिन तुम्हें निश्चय ही छोड़ देंगे, तो उन्हें तुम स्वयं ही क्यों न छोड़ दो ? तुम्हारे छोड़नेसे तुम्हें अनन्त सुख मिलेगा और उनके छोड़नेसे तुम्हें अत्यन्त दुःख उठाना पड़ेगा।

११८२—तृष्णा विषयोंके संसर्गसे बेहद बढ़ती है।

११८३—जो तृष्णाको त्यागते हैं, तृष्णासे नफरत करते हैं, उसे पास फटकने नहीं देते, उनसे तृष्णा भी दूर भागती है।

११८४—तृष्णाको शीघ्र छोड़ो ! पुरानी होनेसे वह और भी बलवती हो जायगी, फिर उसे त्यागना आपकी शक्तिके बाहर हो जायगा।

११८५—पत्तों और जलपर गुजर करनेवाले ऋषि भी जब स्त्रियोंपर मोहित हो गये, तब घी-दूध खानेवालोंकी क्या बात है ?

११८६—स्त्रीका दर्शन ही ऐसा है कि जिससे देवता भी धैर्य त्याग देते हैं।

११८७—जहाँ स्त्री है वहाँ सभी विषय हैं ! यही संतोंका अनुभव है।

११८८—न तो स्त्रीके साथ बात करनी चाहिये, न पहले देखी स्त्रीकी याद करनी चाहिये और न उनकी चर्चा करनी चाहिये। यहाँतक कि उनका चित्र भी न देखें !

११८९—विषय विष है, इसका त्याग ही सुखकी जड़ है।

११९०—कामको जीतो। जिसने कामको जीत लिया उसने सब कुछ जीत लिया।

११९१—अपने मतलबके लिये स्त्रीको पति प्यारा होता है। पतिके लिये स्त्रीको पति प्यारा नहीं होता। यही अवस्था दूसरी ओर भी है।

११९२—सबकी प्रीति झूठी है। प्रीति तो एकमात्र प्रभुमें ही सच्ची है।

११९३—स्त्री साँपसे भी भयंकर है। साँपके काटनेसे मनुष्य मरता है, पर स्त्रीके रूप-चिन्तनमात्रसे ही मनुष्य मर जाता है।

११९४—कामी पुरुषों और कामिनियोंके संसर्गसे पुरुष कामी हो जाता है तथा आगेके जन्ममें भी क्रोधी, लोभी और मोही होता है।

११९५—रूपको देखने मात्रसे ही जहर चढ़ जाता है। तू रूप-लालसा छोड़ दे।

११९६—रूपकी लालसा काली नागिन है। केवल ईश्वरका नाम जपनेवाले ही उससे बचे।

११९७—जलमें डूबा बच जाता है पर विषयोंमें डूबा नहीं बचता।

११९८—एक कञ्चन और दूसरी कामिनी इनसे बचकर रहो ! ये भगवान् और जीवके बीचमें खाई बनाते हैं।

११९९—जितना प्रेम जगत्के रूपोंमें है उतना उस जगदीशमें हो तो फिर क्या कहना ?

१२००—सूखी हड्डीमें खून नहीं होता, पर कुत्ता सूखी हड्डी

चबाता है। उसे अपने खूनका स्वाद आता है, पर वह अज्ञानी उस आनन्दको हड्डीमें समझता है। यही दशा विषयी पुरुषोंकी है।

१२०१—दुर्लभ मनुष्य-चोला पाकर और वेद-शास्त्र पढ़कर भी यदि मनुष्य संसारमें फँसा रहे तो फिर संसार-बन्धनसे छूटेगा कौन?

१२०२—काम, क्रोध, लोभ और मोहको छोड़कर आत्मामें देख कि मैं कौन हूँ। जो आत्मज्ञानी नहीं हैं, जो अपने स्वरूप या आत्माके सम्बन्धमें नहीं जानते, वे मूर्ख नरकोंमें पड़े हुए सड़ते हैं।

१२०३—जिसे किसी चीजकी जरूरत नहीं, वह किसीकी खुशामद क्यों करेगा ? निःस्पृहके लिये तो जगत् तिनकेके समान है। इसलिये सुख चाहो तो इच्छाओंको त्यागो।

१२०४—जो जितना छोटा है वह उतना ही घमण्डी और उछलकर चलनेवाला है, जो जितना ही बड़ा और पूरा है, वह उतना ही गम्भीर और निरभिमानी है, नदी-नाले थोड़े-से जलसे इतरा उठते हैं; किंतु सागर, जिसमें अनन्त जल भरा है, गम्भीर रहता है

१२०५—अभिमान या अहंकार महान् अनर्थोंका मूल है—यह नाशकी निशानी है।

१२०६—यह राज्य और धन-दौलत क्या सदा आपके कुलमें रहेंगे या आपके साथ जायेंगे ? विचारिये तो सही।

१२०७—हे मनुष्य ! जोशमें आकर इतना जोश-खरोश न दिखा; इस दुनियामें बहुत-से दरिया चढ़-चढ़कर उतर गये—कितने ही बाग लगे और सूख गये।

१२०८—हे मनुष्य ! मौतसे डर, अभिमान त्याग।

१२०९—मनुष्यके घमण्डका कुछ ठिकाना है—किसीको कुछ नहीं समझता। मौतने इसे लाचार कर रक्खा है, नहीं तो यह ईश्वरको भी कुछ नही समझता।

१२१०—अपने प्रबल शत्रु अभिमानका नाश करो।

१२११—मनुष्यको जो माँगना हो, सर्वशक्तिमान् भगवान्से माँगना चाहिये, वही सबकी इच्छा पूरी कर सकता है।

१२१२—हे दास ! राम-जैसा मालिक तेरे सिरपर खड़ा है, फिर तुझे क्या अभाव है ? उसकी कृपासे ऋद्धि-सिद्धि तेरी सेवा करेंगी और मुक्ति तेरे पीछे फिरेगी।

१२१३—अगर सेवक दुखी रहता है तो परमात्मा भी तीनों कालोंमें दुखी रहता है। वह दासको कष्टमें देखते ही क्षणभरमें प्रकट होकर उसे निहाल कर देता है।

१२१४—जिसकी गाँठमें राम हैं, उसके पास सब सिद्धियाँ हैं। उसके आगे अष्ट सिद्धि और नौ निधि हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं।

१२१५—जैसे सूर्यमें रात और दिनका भेद नही है, वैसे ही विचार करनेपर अखण्डचित्स्वरूप केवल शुद्ध आत्मतत्त्वमें न बन्धन है और न तो मोक्ष। कितने आश्चर्यकी बात है कि प्रभुको जो हमारे आत्माके आत्मा है, हम पराया मानकर बाहर-बाहर ढूँढ़ते फिरते हैं।

१२१६—माँझीकी अहसान मेरी बला उठाये, मैंने तो अपनी नाव ईश्वरके नामपर छोड़ दी है और उसका लंगर भी तोड़ दिया है।

१२१७—जब मुझे बुद्धिमानोंकी सोहबतसे कुछ मालूम हुआ तब मैंने समझा कि मैं तो कुछ भी नहीं जानता।

१२१८—हे मलिन मन ! तू पराये दिलको प्रसन्न करनेमें किस लिये लगा रहता है ? यदि तू तृष्णाको छोड़कर संतोष कर ले, अपनेमें ही संतुष्ट रहे तो तू स्वयं चिंतामणिस्वरूप हो जाय। फिर तेरी कौन-सी इच्छा पूरी न हो ?

१२१९—जब आँखोंमें प्यारे कृष्णकी मनमोहिनी छवि समा जाती है तब उसमें और किसीकी छबिके लिये स्थान ही नहीं रहता।

१२२०—जिस तरह सरायको भरी हुई देखकर उसमें कोठरियाँ खाली न पाकर, मुसाफिर लौट जाते हैं, उसी तरह नयनोंमें मनमोहनकी बाँकी छवि देखकर संसारी मिथ्या खूबसूरतें आँखोंके पास भी नहीं फटकतीं।

१२२१—जिस सुखके लिये मनुष्य इतनी आफतें उठाता है, उस सुखका सच्चा स्रोत तो स्वयं उसके दिलमें मौजूद है।

१२२२—यों तो संसारमें जरा भी सुख नहीं—सर्वत्र भय-ही-भय है, पर दुष्ट और नीचोंका भय सबसे भारी है।

१२२३—अगर आपको साँप डँसे, बिच्छू काटे और हाथी मारे तो कुछ हर्ज मत समझो। आगमें जलने, जलमें डूबने और पहाड़से गिरनेमें भी कोई हानि न समझो, ये सब भले हैं—इनसे हानि नहीं, हानि और खतरा है दुष्टकी संगतिसे, इसलिये दुर्जनकी सोहबत मत करो।

१२२४—हमारी सुबुद्धि हमसे कह रही है कि मनरूपी शैतानके भरमानेमें मत आओ। मनकी राहपर न चलो, बल्कि मनको अपनी राहपर चलाओ। सच्चा सुख वैराग्यमें ही है इस महावाक्यको क्षणभर भी न भूलो।

१२२५—कमलके पत्तेपर ठहरी हुई जलकी बूँदके समान क्षणभङ्गुर प्राणोंके लिये, मूर्खतावश धनमदसे निःशंक धनी मनुष्योंके सामने बेहया होकर अपनी तारीफ आप करनेका घोर पाप करनेवाले हमलोगोंने कौन-सा पाप नहीं किया ?

१२२६—जिस तरह पानीका बुलबुला उठता और क्षणभरमें नष्ट हो जाता है, उसी तरह आदमी पैदा होता है और क्षणभरमें नष्ट हो जाता है।

१२२७—यह मनुष्य उसी तरह अदृश्य हो जायगा, जिस तरह सबेरेका तारा देखते-देखते गायब हो जाता है।

१२२८—जिस तरह देखते-देखते हौजका पानी मोरीकी राहसे निकलकर बिला जाता है, उसी तरह यह जीवात्मा देहसे निकल जायगा, दस-पाँच दिनकी देर समझिये।

१२२९—ऐसे चंचल जीवनके लिये अज्ञानी मनुष्य नीच-से-नीच कर्म करनेमें संकोच नहीं करता-यह बड़ी ही लज्जाकी बात है। अगर मनुष्योंको हजारों, लाखों बरसकी उम्र मिलती अथवा सभी काकभुसुण्डि होते, तो न जाने मनुष्य क्या-क्या पापकर्म न करता ?

१२३०—मनुष्यों ! आँखें खोलकर देखो और कान लगाकर सुनो ! मिट्टी और पत्थर अथवा लकड़ी वगैरहकी बनी चीजोंकी कुछ उम्र भी है, पर तुम्हारी उम्र कुछ भी नहीं। अतः इस क्षण-स्थायी जीवनमें पापकर्म न करो।

१२३१—हे भाई ! कैसे कष्टकी बात है ! पहले यहाँ कैसा राजा राज करता था, उसकी राजसभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसे-कैसे शूर, सामन्त और सेना एवं चन्द्रानना स्त्रियाँ थीं, पर आज सब सूना है ! सबको काल खा गया।

१२३२—जिन मकानोंमें तरह-तरहके बाजे बजते और गाने गाये जाते थे वे आज खाली पड़े हैं। अब उनपर कौवे बैठते हैं।

१२३३—जिसे सूर्य कहते हैं वह भी एक ऐसा चिराग-दीपक है जो हवाके सामने रक्खा हुआ है और 'अब बुझा, अब बुझा' हो रहा है, तब औरोंकी तो बात ही क्या ? संसारकी यही दशा है।

१२३४—एक दिन इस जगत्का ही अस्तित्व नहीं रहेगा, तब और किसकी आस्था की जाय ? यह जगत् ही भ्रममात्र है !

१२३५—बारी-बारीसे सभी प्यारे और मित्र चल बसे ! अब तेरा नंबर भी नित्य निकट आ रहा है।

१२३६—काल-देवता अपनी पत्नी कालीके साथ, संसाररूपी

चौपड़में दिन-रातरूपी पासोंको लुढ़का-लुढ़काकर और इस जगत्के प्राणियोंकी गोटी बना-बनाकर खेल रहा है।

१२३७—मनुष्य-जीवन बहुत ही थोड़ा है। इसलिये मनुष्यको जबतक दम रहे सब कुछ तजकर एकमात्र परमात्माका भजन करना चाहिये।

१२३८—जिस तरह कच्चे घड़ेको फूटते देर नहीं, उसी तरह इस शरीरको नाश होते देर नहीं।

१२३९—बाहरी युक्ति और तर्कोंके द्वारा जो भगवान्के अस्तित्वका निरूपण किया जाता है, वह केवल बाह्य-वाणीका विकास-मात्र है, उससे भगवान्का यथार्थ बोध नहीं हो सकता।

१२४०—आज तुम्हारा शरीर आरोग्य है, आश्चर्य नहीं कल तुम बीमार होकर मरण-शय्यापर पड़े हो अथवा मर ही जाओ। इसलिये चेत करो, होश सँभालो और आगेकी सफरका इसी क्षण बन्दोबस्त करो।

१२४१—जो यहाँ बोओगे वही वहाँ काटोगे। यहाँ अच्छा करोगे, तो वहाँ अच्छा पाओगे।

१२४२—यह जीवन सपनेके समान है।

१२४३—जिस तरह रातके स्वप्नको मिथ्या समझते हो उसी तरह दिनके दृश्योंको भी मिथ्या समझो।

१२४४—इस दुनियाँमें काम बहुत है और उसका यह हाल है कि पलक मारनेभरका भरोसा नहीं। इस क्षणभरकी जिन्दगीमें आपको कौन-सा काम करना चाहिये जिससे आगेकी यात्रामें सुख-ही-सुख मिले। विचारिये तो सही।

१२४५—संसारमें आकर दो काम कर लो—(१) भूखेको भोजन दो और (२) भगवान्का नाम लो।

१२४६—जगत्में तीन-छः (३६) की तरह और भगवान्के

चरणोंमें छः-तीन (६३) की तरह रहो।

१२४७—संसारी माया-जालमें सुख नहीं है। संसारमें जो सुखी दीखते हैं, वे वास्तवमें दुःखी हैं। उनका सुख दिखावटी सुख है, सच्चा सुख नहीं।

१२४८—प्रेममें जो तन्मय हो जाते हैं उन्हींका प्रेम-प्रेम है। बिना तन्मयताके प्रेम थोथा है।

१२४९—भगवान्‌को जाननेके लिये चरित्रकी शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। विशुद्ध चरित्र हुए बिना कोई भी उनको न तो पहचान ही सकता है और न देख ही सकता है।

१२५०—ईश्वर-उपासना करनेवालेको सबसे पहले अपने चित्त और इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटाकर अपने अधीन कर लेना चाहिये।

१२५१—बिना चित्तके एकाग्र हुए और बिना इन्द्रियोंके संयत हुए—ध्यान लग ही नहीं सकता।

१२५२—ध्यान करनेवाला न शरीरको हिलावे, न किसी तरफ देखे।

१२५३—महादेव ही हमारा एक देव हो, जाह्नवी-जल ही हमारा पेय हो, एक गुफा ही हमारा घर हो, दिशा ही हमारे वस्त्र हों, समय ही हमारा मित्र हो, किसीके सामने दीन न होना ही हमारा चित्त हो और वटवृक्ष ही हमारी अर्द्धाङ्गिनी हो।

१२५४—जगदीश उन्हींको मिलते हैं जो गर्वसे दूर भागते और विवेकभ्रष्ट नहीं होते।

१२५५—जो अपनी गर्दन ऊँची करता है, वह मुँहके बल गिरता है।

१२५६—आशा एक नदी है। उसमें इच्छारूपी जल है, तृष्णा उस नदीकी तरंगें हैं, प्रीति उसके मकर हैं, तर्क-वितर्क या दलीलें उसके पक्षी

है; मोह उसके भँवर है, चिन्ता ही उसके किनारे हैं, वह आशानदी धैर्यरूपी वृक्षको गिरानेवाली है; इस कारण उसके पार होना कठिन है। जो शुद्धचित्त योगीश्वर उसके पार चले जाते हैं वे बड़ा आनन्द उपभोग करते है।

१२५७—यदि आनन्द चाहो तो आशा, इच्छा, प्रीति, तर्क, वितर्क, मोह और चिन्ता आदिको एकदम छोड़कर शुद्धचित्त हो जाओ और भगवान्‌के भजन-ध्यानमें तन्मय रहा करो।

१२५८—अगर मन एक ही ठिकाने ठहर जावे तो सहजमें ही हीरा पैदा हो जावे।

१२५९—चञ्चल मनसे सिद्धि दूर भागती है।

१२६०—जगदीशसे मिलनेके लिये स्थिरचित्त दरकार है।

१२६१—जिन्हें संसारी जंजालोंसे छूटना हो, जन्ममरणके कष्ट न भोगने हों, वे अपने मनको अपने वशमें करें, उसे इधर-उधर जानेसे रोकें और करतारके ध्यानमें लगावें।

१२६२—अपने दिलको मार, अभिमानको मार, इसमें तेरी बड़ाई है। बड़े-बड़े खूँखार जानवरोंको मारनेमें वह वीरता नहीं है।

१२६३—मनुष्यों ! अभ्यास करो, अभ्याससे सब कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। जैसे भी हो मनको वासनाहीन बनाओ। वासनाहीन, निर्मल चित्तवाले व्यक्तिपर उपदेश जल्दी असर करता है। और ईश्वरानुराग शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है।

१२६४—खाली पेट भरनेके लिये कौएकी तरह पराया मुँह ताकना अच्छा नहीं। मुँह ही ताकना है तो उस परमात्माका ताको, जो अभावशून्य है और सबका दाता है।

१२६५—भगवान्‌के चरणकमलोंसे परिचय हुए बिना, उनके पद-पङ्कजोंसे प्रेम हुए बिना मनुष्यके मनकी दौड़ नहीं मिटती।

१२६६—जो लोग गेरुआ बाना धारण करके साधु हो जाते हैं और भगवान्‌में मन नहीं लगाते तथा पेटके लिये दर-दर चिल्ला-चिल्लाकर अपना दुर्लभ मनुष्य-जन्म वृथा ही गँवाते हैं, वे मूर्ख इस बातको नहीं समझते कि यह गेरुआ वस्त्र पहना क्यों था। गेरुआ संसारसे तीव्र वैराग्यका चिह्न है।

१२६७—स्वामीके दरबारमें किसी चीजकी कमी नहीं है। उनके दरबारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ मौजूद हैं। उनके भक्त जो चाहते हैं उन्हें वही मिल जाता है।

१२६८—हे मन ! अब तू परमात्मामें लग जा; संसारी सुखोंमें अब हमारी इच्छा नहीं, इनकी पोल हमने देख ली।

१२६९—जिसे संतोष है वह सदा सुखी है।

१२७०—उसे कोई सुख नहीं जिसकी इच्छाएँ बड़ी है।

१२७१—जिसे तृष्णा है वह सदा दुखी है।

१२७२—संतोष बड़ी-से-बड़ी दौलतसे भी अच्छा है।

१२७३—जो सुखी होना चाहे वह तृष्णाको त्यागे और परमात्मा जो दे उसीमें संतोष करे।

१२७४—जहाँ संतोष है वहाँ भगवान् हैं और जहाँ भगवान् हैं वहाँ संतोष है।

१२७५—मनुष्य-देह पाकर ही मनुष्य अपने उद्धारका उपाय कर सकता है, क्योंकि इसी जन्ममें भले-बुरेके विचारकी शक्ति होती है। अतः मनुष्य-जन्मको मामूली समझकर यों ही दुनियाके सुख-भोगोंमें मत गँवाओ।

१२७६—वे ही प्रशंसाभाजन हैं, वे ही धन्य है, उन्होंने ही कर्मकी जड़ काट दी है जो अपने हाथोंके सिवा और किसी वासनकी जरूरत नहीं समझते, जो घूम-घूमकर भिक्षाका अन्न खाते हैं, जो दसों

दिशाओंको ही अपना विस्तृत वस्त्र समझते हैं, जो सारी पृथ्वीको ही अपनी शय्या समझते हैं, जो अकेले रहना पसन्द करते हैं, जो दीनतासे घृणा करते हैं और जिन्होंने आत्मामें ही संतोष कर लिया है।

१२७७—जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि विकार नहीं हैं; जो सुख-दुःख और मान-अपमानको नहीं जानता; जिसे न खुशी होती है न रंज, जो अपने शरीरसे अलग हैं; जो न किसीकी तारीफ करता है और न किसीकी बुराई करता है; जिसे न किसीसे प्रेम है और न किसीसे वैर है; जिसका न किसीसे लेना है और न किसीको देना है; न और ही किसी तरहका व्यवहार है; ऐसा ही महापुरुष भगवान्‌को प्यारा है।

१२७८—बुढ़ापा हमारे शरीरको निर्बल और रूपको कुरूप करता एवं सामर्थ्य और बलका नाश करता है तथा मृत्यु सिरपर मँडराती है ऐसी दशामें मित्रवर! कहीं सुख नहीं है। अगर सुख—सच्चा सुख चाहते हो तो भगवान्‌का भजन करो।

१२७९—मनुष्य चाहे कल्पवृक्षके नीचे क्यों न चला जाय, जबतक सीतापतिकी कृपा न होगी तबतक उसके दुःखोंका नाश नहीं हो सकता; इसलिये शत्रुता-मित्रता छोड़, संसारसे उदासीन हो भगवान्‌से प्रीति करो।

१२८०—भगवान्‌की भक्ति सर्वोपरि है। भगवान्‌की भक्तिसे जो काम हो सकता है, वह घोर-से-घोर तपस्याओंसे भी नहीं हो सकता।

१२८१—चाहे सारे वेद-शास्त्र पढ़ लो, चाहे यम-नियम आदि कर लो, चाहे धर्मशास्त्रका मनन कर लो और चाहे सारे तीर्थ कर डालो, यदि हृदयमें राम नहीं हैं, तो ये सब वृथा हैं।

१२८२—दोस्तोंसे दोस्ती और दुश्मनोंसे दुश्मनी छोड़कर एवं संसारसे उदासीन होकर भगवान्‌से प्रीति करो।

१२८३—अरे! तू दसों दिशाओंमें क्यों भागता फिरता है ? तू भगवान्‌के किये हुए कामोंका ख्याल कर । देख, जब तू मुँह बंद किये हुए छिपा बैठा था, तब भी तुझे खानेको पहुँचाया और जब तेरे दाँत आ गये तब भी तुझे तेरे मुँह खोलते ही खानेको टुकड़ा दिया जिस प्रभुने तेरी गर्भावस्थासे ही—जब कि तू जड़ और मूक था—पालना की है, वही क्या अब तेरी खबर न लेगा ?

१२८४—तू क्यों चीखता फिरता है ? भगवान्‌का भरोसा रख; वे प्रभु ही अब सब तरहसे तेरी रक्षा करेंगे।

१२८५—मनुष्य ! तेरी जिंदगी ढाई मिनटकी है। इस ढाई मिनटकी जिंदगीको बर्बाद न कर। इसे खतम होते देर न लगेगी। इसलिये यदि तू सबका आसरा छोड़, जगदीशकी ही चाकरी करेगा तो तेरा निश्चय ही भला होगा।

१२८६—देहधारियोंके भोग—विषय-सुख—साधन बादलोंमें चमकनेवाली बिजलीकी तरह चञ्चल हैं; मनुष्योंकी आयु या उम्र हवासे छिन्न-भिन्न हुए बादलोंके जलके समान क्षणस्थायी या नाशवान् है और जवानीकी उमंग भी स्थिर नहीं है। इसलिये बुद्धिमानो ! धैर्यसे चित्तको एकाग्र करके उसे योगसाधनामें लगाओ।

१२८७—सच तो यह है कि यह शरीर बिजलीकी चमक और बादलकी छायाकी तरह चञ्चल और अस्थिर हैं। जिस दिन जन्म लिया, उसी दिन मौत पीछे पड़ गयी, अब वह अपना समय देखती है और समय पूर्ण होते ही प्राणीको नष्ट कर देगी।

१२८८—जिस तरह अञ्जलिमें जल नहीं ठहरता उसी तरह लक्ष्मी भी किसीके पास नही ठहरती।

१२८९—जिस तरह सांसारिक पदार्थ लक्ष्मी और विषयभोग तथा आयु चञ्चल और क्षणस्थायी हैं, उसी तरह यौवन भी क्षणस्थायी है।

जवानी आते तो दीखती है पर जाते नही मालूम होती। हवाकी अपेक्षा भी तेज चालसे दिन-रात होते हैं और उसी तेजीसे जवानी झट खतम हो जाती और बुढ़ापा आ जाता है। फिर गाफिल क्यों होता है।

१२९०—संसारमें जो नाना प्रकारके अच्छे-अच्छे मनभावन पदार्थ दिखायी देते हैं ये सभी नाशवान् हैं। ये सब वास्तवमें कुछ भी नहीं; केवल मनकी कल्पनासे इनकी सृष्टि की गयी है। मूर्ख ही इनमें आस्था रखते हैं ज्ञानी नहीं।

१२९१—इस जगत्में ज्ञानीका जीवन सार्थक और अज्ञानीका निरर्थक है।

१२९२—विभूति चञ्चल है, यौवन क्षणभङ्गुर है; तो भी लोग परलोक-साधनकी परवा नही करते। मनुष्योंकी यही चेष्टा विस्मयकारक है।

१२९३—मनुष्यो ! होश करो, गफलतकी नींद छोड़ो। वह देखो ! मौत तुम्हारा द्वार खटखटा रही है।

१२९४—स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन, माता-पिता आदि प्यारे और सगे-सम्बन्धी उसी वक्ततक हैं जबतक कि शरीर नाश नहीं हुआ है।

१२९५—यह संसार दो स्थानोंके बीचका स्थान है। यात्री यहाँ आकर क्षणभरके लिये आराम करते और फिर आगे चले जाते हैं, ऐसे यात्रियोंका आपसमें मेल बढ़ाना, एक दूसरेकी मुहब्बतके फंदेमें फँसना सचमुच ही दुःखोत्पादक है।

१२९६—इस जगत्में न कोई अपना है न पराया।

१२९७—अरे अज्ञानी मनुष्य ! मुझे तेरी इस बातपर बड़ा ही अचम्भा आता है कि तू इस बालूके मकानमें निःशङ्क और मस्त होकर बैठा हुआ है। इसे नाश होते कितनी देर लगेगी

१२९८—अरे मूर्ख ! तू इस बालूके घरमें रहकर भी बरसों

जीनेकी—इस घरमें रहनेकी—आशा करता है। अरे नादान! होश कर! जाग! तेरा यह बालूका मकान पलक मारते गिर जायगा।

१२९९—दूधमें मधुरता उसी समयतक रहती है जबतक उसे सर्प नहीं छूता। पुरुषमें गुण भी उसी समयतक रहते हैं जबतक कि तृष्णाका स्पर्श नहीं होता। अतः बुद्धिमानो! अनित्य नाशवान् विषयोंसे दूर रहो; क्योंकि इनमे जरा भी सुख नहीं।

१३००—विषयोंको भोगनेसे नरकाग्निमें जलोगे और जन्म-मरणके घोर संकट सहोगे; परमात्माके भजन या योगसाधनसे नित्य सुख भोगते हुए परमानन्दमें लीन हो जाओगे। अतः इन्द्रियोंको वशमें करो और एकाग्रचित्तसे परमात्माका भजन करो।

१३०१—जितनी समुद्रकी लहरें हैं उतनी ही मनकी दौड़ है। यदि मन ठिकाने आ जाय, उसमें समुद्रकी-सी तरङ्गें न उठें, तो सहजमें हीरा पैदा हो जाय; यानी परमात्मा मिल जायँ।

१३०२—मूड़ मुड़ाते अनेक दिन हो गये; पर आजतक भगवान् न मिले। मिलें कैसे। मन राममें लगे, तब तो राम मिलें। मन तो विषय-भोगोंमें लगा रहता है, फिर राम मिलें कैसे?

१३०३—विषय-भोग, आयु और यौवनको अनित्य और क्षण-भङ्गुर समझकर इनमें आसक्ति न रखो और मनको एकाग्र करके हर क्षण परमात्माका भजन करो जिससे जन्म-मरणसे छुटकारा मिल जाय और परमात्माकी प्राप्ति हो जाय।

१३०४—इस शरीरका क्या भरोसा? यह क्षणभरमें नष्ट हो जाय। इस दशामें सर्वोत्तम उपाय यही है कि हरेक श्वासमें परमात्माका नाम लो। बिना उसके नामसे एक साँस भी न जाने पावे। बस, इससे बढ़कर उद्धारका कोई उपाय नहीं है।

१३०५—परमात्माका प्रेम और उसका आशीर्वाद नहीं प्राप्त हुआ

और सारे शास्त्र तथा समस्त दार्शनिकोंके वचनोंको पूर्णतः कण्ठस्थ भी कर लिया तो उनसे क्या लाभ ?

१३०६—परमात्माके प्रेम और उसकी सेवाके बिना सभी कुछ व्यर्थ है, ढोंग है।

१३०७—सबसे बड़ी बुद्धिमानी इसीमें है कि दुनियाकी ओरसे आँख फेरकर परमात्माके चरणोंमें ध्यान लगाया जाय।

१३०८—नाशवान् सम्पदाकी खोजमें जीवन खपाना कोरी मूर्खता नहीं तो और क्या है ? प्रतिष्ठाके पीछे परेशान रहना पागलपन है। ऊँचे-ऊँचे पदकी लालसा नरकोंमें ढकेलनेवाली है। भौतिक इच्छाओंपर फिदा हो जाना मृत्युका द्वार खोलना है।

१३०९—उन वस्तुओंके लिये सिरतोड़ परिश्रम करना—जिन्हें भोगकर महान् दुःखदायी दण्ड भोगना पड़ेगा—सरासर धोखा है।

१३१०—चिरकालतक जीते रहनेकी कामना कितनी ओछी बात है और उत्तम जीवन व्यतीत करके प्रमाद करना कितना बड़ा पाप है ?

१३११—शीघ्र ही आँखोंसे हट जानेवाली वस्तुओंपर ममता रखना और अक्षय आनन्दकी ओर जीवनको प्रवाहित न करना आत्मप्रवञ्चना है।

१३१२—इस कहावतको सदैव याद रक्खो—'आँख देखकर ही संतुष्ट नहीं होती और कान सुनकर ही नहीं अघाता।' अतएव देख-सुन पड़नेवाली चीजोंसे हृदयको हटानेका प्रयत्न करो। क्योंकि जो वासनाओंके संकेतपर चलते हैं वे आत्म-चैतन्यपर कालिमा पोत लेते हैं और परमात्माकी कृपाको खो बैठते है।

१३१३—भगवान्‌ने कहा है—'जो मेरा अनुसरण करता है वह अंधकारमें नहीं भटकता।'

१३१४—स्वभावसे ही प्रत्येक मनुष्य ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा

करता है; परंतु प्रभुमें श्रद्धा और भक्ति नहीं हुई तो कोरे ज्ञानसे क्या हो सकता है ?

१३१५—जो अपनेको भुलाकर ब्रह्माण्ड-संचालनकी प्रक्रियाको समझनेमें व्यस्त है ऐसे अभिमानी तत्त्ववेत्ताकी अपेक्षा परमात्माकी सेवा करनेवाला गृहस्थ ही लाख दर्जे अच्छा।

१३१६—जिसने अपनेको अच्छी तरह पहचान लिया वह अपनेको बहुत नगण्य समझने लगता है और लोगोंद्वारा की गयी प्रशंसामें फूल नहीं उठता।

१३१७—यदि मैं दुनियाकी सारी चीजोंको समझ लूँ; परंतु दान तथा दयाके भाव, जो मनुष्यको परमात्माकी दृष्टिमें ऊँचा बनाते हैं, न रखूँ तो मेरा सारा ज्ञान धूलके समान है।

१३१८—अपनी मुक्तिके साधनोंको छोड़कर जो अन्यान्य चीजोंपर, जिनकी जानकारीसे आत्माको कुछ भी लाभ नहीं होता, लट्टू हुआ फिरता है वह बड़ा अज्ञानी है।

१३१९—बड़े-से-बड़ा ज्ञान आत्माको संतुष्ट नहीं करता; परंतु उत्तम जीवन मनको शान्ति, तुष्टि और प्रीति देता है। एक पवित्र-हृदय परमात्माके सम्मुख बड़ा सहारा है।

१३२०—जितना ऊँचा ज्ञान उतना ही उत्तम जीवन। यदि ऐसा हो सके तो ठीक, नहीं तो सारा प्रयास भूसी कूटनेके समान व्यर्थ और निस्सार है।

१३२१—शरीरके लिये कोई कितनी ही चेष्टा क्यों न करे, उसे कितने ही आरामसे ही रखनेका उपाय क्यों न करे, वह नाश होगा ही, आज हो या सौ वर्षके बाद।

१३२२—बहुज्ञ होनेका दम न भरो, प्रत्युत अपनी अज्ञानताको मान लो।

१३२३—यदि तुम कोई बात जानकर या सीखकर लाभ उठाना चाहते हो तो छिपे रहनेका प्रयत्न करो और लोगोंसे आदर पानेकी कोशिश कभी न करो।

१३२४—सबसे उत्तम और सबसे लाभदायक अध्ययन, सच्चा आत्मज्ञान और आत्मविचार है।

१३२५—अपने सम्बन्धकी किसी भी वस्तुकी बड़ाई न करना और सदा दूसरोंका हित सोचना तथा उनके सम्बन्धमें ऊँचा विचार रखना ही बुद्धिमानी और पूर्णताका परिचायक है।

१३२६—यदि तुम दूसरोंको खुली तौरपर पाप करते देखते हो या बहुत भयंकर अपराध करते पाते हो, तो भी तुम्हे अपनेको उनसे अच्छा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि तुम नहीं जानते कबतक तुम इस अच्छी स्थितिमें रह सकोगे।

१३२७—हम सभी दुर्बल प्राणी हैं, परंतु हमें अपनेसे अधिक दुर्बल किसीको भी नहीं समझना चाहिये।

१३२८—वह पुरुष धन्य है जो बनने और बिगड़नेवाले अङ्कों और अक्षरोंसे नहीं, स्वयं सत्यसे शिक्षा लेता है, जो स्वतः आत्मस्वरूप है।

१३२९—हमारे अपने विचार और हमारी अपनी इन्द्रियाँ प्रायः हमें धोखा देती हैं और सत्यासत्यकी परख नहीं कर सकतीं।

१३३०—प्रच्छन्न और अन्धकारगत वस्तुओंके सम्बन्धमें वाद-विवाद करने और झगड़नेसे तुम्हें क्या लाभ? आँख खोलकर भगवान्‌की इस रहस्यपूर्ण रचनाको तो देखो, फिर तुम्हें और कुछ देखना ही नहीं रहेगा।

१३३१—हमें आँखें हैं; परंतु हम देखते नहीं।

१३३२—कोरे तर्कसे आजतक क्या सधा है।

१३३३—ओ परमात्मन्! तुम चिर सत्य हो; मुझे अपनी अखिल

दयामें लय कर लो। मेरे लिये प्रायः बहुत-सी चीजें पढ़ना या सुनना दुष्कर है। तुम्हींमें मेरा चिर अभिलषित सर्वस्व है।

१३३४—प्रभो ! सभी वैद्य चुप, शान्त हो जायँ, तुम्हारे सम्मुख सभी जीव चुप रहें, तुम केवल हमसे बोलो।

१३३५—जितना ही अधिक मनुष्य अपने अन्तरमें मिलने लगता है और अन्तःकरणसे सरल और पवित्र हो जाता है, उतनी ही अधिक ऊँची चीजें वह बिना परिश्रमके समझने लगता है, क्योंकि उसे परमात्मा ही अन्तःप्रकाश प्रदान करते हैं।

१३३६—असंख्य उलझनोंमें फँसकर भी एक पवित्र, सच्चा और स्थायी अन्तःकरण क्षुब्ध नहीं होता; और अन्तःकरणसे शान्त और अचञ्चल होते हुए वह स्वयं किसी भी वस्तुमें किसी फलकी आकांक्षा नहीं करता।

१३३७—तुम्हारे हृदयकी असंख्य वासनाओंके सिवा तुम्हें कौन अधिक बाधा या कष्ट पहुँचाता है ?

१३३८—भले और पुण्यात्मा पुरुषको जो कुछ करना होता है वह स्वयं अपने ही भीतर तय कर लेता है।

१३३९—वासनाएँ संतको अपने झकोरेमें नहीं खींच सकतीं, वरं वह सच्चे विवेकके अनुकूल उन्हें अनुशासित करता है।

१३४०—आत्मदमनके समान संसारमें कौन-सा कठोर कार्य है ? इससे बढ़कर युद्ध है ही कौन ! और इसमें विजय पा लेनेपर फिर पाना ही क्या रह गया।

१३४१—हमारा प्रयत्न अपनेको जीतना और प्रतिदिन शक्तिमान् होते जाना तथा पवित्रतामें उत्तरोत्तर उन्नति करते जाना होना चाहिये ?

१३४२—इस जीवनमें सभी पूर्णतामें अपूर्णता मिली हुई है और हमारा कोई भी ज्ञान अज्ञानके बिना नहीं है।

१३४३—विद्वत्ताकी गहरी खोजकी अपेक्षा अपने निजका विनम्र ज्ञान परमात्माके पथमें अधिक निश्चयपूर्वक ले जानेवाला है।

१३४४—काश ! मनुष्य जितना समय वाद-विवादमें लगाता है उतना ही परिश्रम अपने दुर्गुणोंके मूलोच्छेद करनेमें और सद्गुणोंको धारण करनेमें लगाता तो न उतनी हानि ही होती, न विश्वमें इतना अपवाद ही फैलता और न धर्मस्थानोंमें इतना असंयम और व्यभिचार ही घुसता !

१३४५—अहा ! संसारका यश कितनी द्रुतगतिसे नष्ट होता जा रहा है। यदि विद्वत्ताके अनुरूप जीवन भी होता तब हमारा पढ़ना-लिखना सार्थक होता।

१३४६—इस संसारमें कितने ही मनुष्य असत्य-अध्ययनके कारण सत्यानाशमें मिल जाते है। वे परमात्माकी तनिक भी परवा नहीं करते और इसलिये कि वे नम्र होनेकी अपेक्षा बड़े होनेकी कोशिश करते है। वे कल्पनामें अविवेककी ओर ढल जाते हैं।

१३४७—वास्तवमें बड़ा वह है जो उदारतामें बड़ा है।

१३४८—वह वास्तवमें बड़ा है जो अपनेको छोटा समझता है और अपनी प्रतिष्ठाकी ऊँचाईका कोई मूल्य नहीं आँकता।

१३४९—वास्तवमें वह बुद्धिमान् है जो सभी सांसारिक चीजोंको तृणके सदृश समझता है।

१३५०—वास्तवमें विद्वान् वह है जो अपनी इच्छाको त्यागकर परमात्माकी इच्छासे कार्य करता है।

१३५१—जिन्होंने पूर्णताको प्राप्त कर लिया है वे दूसरेके कहेको सहजहीमें मान नहीं लेते, क्योंकि वे जानते हैं कि मानव दुर्बलता-दुर्गुण प्रिय है और शब्दोंमें चूक जानेका विशेष भय है।

१३५२—यह बड़ी बुद्धिमानी है कि अपनी क्रियाओंमें कभी उद्धत न होओ और न अपने ही विचारोंपर अड़ जाओ, न सभी सुनी हुई

बातोंपर विश्वास ही कर लो और न शीघ्रतामें आकर जो कुछ तुमने सुना है या मान लिया है—दूसरोंपर प्रकट ही करने लगो।

१३५३—अपने निजके अधिकारके पीछे लगे रहनेकी अपेक्षा जो बुद्धिमान् और विवेकशील हैं, उनसे राय लो, अपनेसे जो बड़े हों उनसे शिक्षा लेनेकी कोशिश करो।

१३५४—एक सुन्दर जीवन मनुष्यको परमात्माके अनुकूल बुद्धिमान् बना देता है और उसे बहुत-सी अच्छी चीजोंमें अनुभव प्रदान करता है।

१३५५—मनुष्य जितना अधिक नम्र होगा, जितना अधिक परमात्मामें उसका विश्वास होगा, उतना ही अधिक वह अपने कार्योंमें कुशल होगा और उतनी ही अधिक शान्ति और हार्दिक तुष्टिको भोगेगा।

१३५६—पवित्र धर्मग्रन्थोंमें कुतूहलकी अपेक्षा सत्यकी खोज होनी चाहिये। धर्मग्रन्थोंके प्रत्येक भागको उसी भावसे पढ़ना चाहिये जिस भावसे वह प्रारम्भ हुआ है। वाक्पटुताकी अपेक्षा धर्मशास्त्रोंमें हमे अपने आध्यात्मिक लाभकी बात खोजनी चाहिये।

१३५७—यह मत पूछो कि इस बातको कहा किसने ? जो कुछ कहा गया है उसीपर ध्यान दो। मनुष्य जन्मते और मर जाते हैं; परंतु भगवान्‌की सत्य वाणी अमर है। व्यक्तित्वकी अपेक्षा किये बिना परमात्मा हमसे अनेक प्रकारसे बोलता है।

१३५८—धर्मग्रन्थोंके पढ़नेमें हमारी अपनी उत्सुकता बाधा खड़ी करती है; क्योंकि जिस बातको पढ़कर हमें बिना कोई विशेष परिश्रम किये आगे बढ़ना चाहिये था, उसीपर हम वाद-विवाद करने लगते है और उसकी परीक्षा करनेमें फँस जाते हैं।

१३५९—यदि तुम अध्ययनसे लाभ उठाना चाहते हो तो नम्रता, सादगी और निष्ठाके साथ पढ़ो, अपनी विद्वत्ताके आदरकी इच्छा न रख,

लगनके साथ पूछो और संतोंके वचनोंको सुनो। 'बड़ों'के सद्वचनोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखो; क्योंकि बिना कारण ही उनकी कीमत नहीं होती अर्थात् समयपर उनका महत्त्व प्रकट होगा।

१३६०—जब कभी मनुष्य किसी भी वस्तुकी अत्यधिक लिप्सा करता है, इसके साथ-ही-साथ उसका अन्तःकरण विक्षुब्ध हो उठता है।

१३६१—अभिमानी और लोभीको कभी शान्ति नहीं मिल सकती। दीन और विनम्र हृदय पूर्ण शान्तिमें सदा साथ रहता है।

१३६२—जिसने अपनी वासनाओंको पूरी तरह जीत नहीं लिया है वह शीघ्र ही फिसल जाता है और छोटी तथा नगण्य चीजोंसे भी पराजित हो जाता है।

१३६३—जो दुर्बल है, जिनकी मानसिक स्थिति कमजोर है और एक प्रकारसे वासना-प्रिय और आधिभौतिक प्रकृतिके हैं—वे कठिनाईसे अपनेको सांसारिक वासनाओंसे पूर्णतः हटा सकते हैं।

१३६४—हृदयकी सच्ची शान्ति वासनाओंके दमनसे मिलती है न कि उनके अनुसार चलनेमें।

१३६५—अपने-आपको बड़ा न समझो, वरं अपना विश्वास परमात्मामें रखो। अपनी शक्तिभर परिश्रम करो, परमात्मा तुम्हारे सत्कार्यमें सहायता देगा। दूसरोंसे गरीब समझे जानेमें लज्जित न होओ।

१३६६—उस परमात्माके आशीर्वादपर विश्वास करो जो विनम्र पुरुषकी सहायता करता है और अभिमानी पुरुषको नम्र बना देता है।

१३६७—यदि तुम्हारे पास धन हो तो भी उसपर गर्व न करो; बलशाली मित्रोंपर गर्व न करो, परंतु गर्व करो उस परमात्मापर जो तुम्हें सब कुछ देता है और जो तुम्हें स्वयं अपना बना लेना चाहता है।

१३६८—अपने शरीरके आकार अथवा अपने रूपकी सुन्दरताकी

प्रशंसा मत करो; क्योंकि थोड़ी-सी बीमारीमें वह कुरूप और नष्ट हो जायगा।

१३६९—प्रकृतिकी दी हुई वस्तुओंमें सुख या विश्वासकी कामना न रखो; अन्यथा परमात्माको तुम अप्रसन्न करते हो; स्वभावतः जो कुछ तुम्हें प्राप्त है, वह सभी परमात्माका दिया हुआ है।

१३७०—अपनेको दूसरोंसे बड़ा न समझो, अन्यथा परमात्माकी दृष्टिमें, जो मनुष्यकी सच्ची परख रखता है, तुम उनसे भी नीच समझे जाओगे।

१३७१—अपने सत्कार्योंपर अभिमान न करो; क्योंकि मनुष्यका न्याय परमात्माके न्यायसे सर्वथा भिन्न है, और प्रायः जो उसे (मनुष्यका) सुखद प्रतीत होता है, वही परमात्माको अरुचिकर हो जाता है।

१३७२—यदि तुममें कोई अच्छाई हो तो यह समझो कि दूसरोंमें तुमसे कहीं अधिक है।

१३७३—सभीके सामने अपनेको छोटा समझना स्वतः अन्याय-सङ्गत नहीं है; परंतु किसी एक भी आदमीके सम्मुख अपनेको बड़ा मानना अन्यायप्रियता है।

१३७४—विनम्र पुरुष चिरन्तन शान्तिको प्राप्त करते हैं; अभिमानी पुरुषोंके हृदयमें ईर्ष्या और क्रोधकी भट्ठी जलती रहती है।

१३७५—सभीके सामने अपना हृदय मत खोलो। जो बुद्धिमान् हैं और परमात्मासे डरनेवाले है, उनसे अपने व्यवहारके सम्बन्धमें बातें करो !

१३७६—नवयुवकों और अपरिचितोंसे अधिक बातें न करो।

१३७७—धनिकोंकी खुशामद न करो, बड़े आदमियोंके सम्मुख स्वेच्छासे न जाओ।

१३७८—नम्र और सरल व्यक्तियोंकी सङ्गतिमें रहो, दृढ़ और धर्मात्माके साथ रहो, उनके साथ ऐसी बातोंके सम्बन्धमें सम्भाषण करो जो तुम्हें उन्नत बना सकें। किसी स्त्रीके साथ परिचित मत होओ।

१३७९—आज्ञाकारितामें रहना, अपनेसे बड़ेके नीचे रहना और अपनी ही इच्छापर नहीं चलना बहुत बड़ी बात है।

१३८०—शासन करनेकी अपेक्षा आज्ञा पालना अधिक वाञ्छनीय है।

१३८१—जहाँ भी जाओगे तुम्हें तबतक शान्ति नहीं मिल सकती जबतक अपनेसे बड़ेकी आज्ञामें न रहोगे। स्थानोंकी कल्पना तथा परिवर्तनने बहुतोंको धोखा दिया है।

१३८२—यह सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य मनसे वही करता है जो उसकी इन्द्रियों और इच्छाके अनुकूल है और उन लोगोंपर उसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ सकता है जो उनके मनोऽनुकूल हैं।

१३८३—परंतु यदि परमात्मा हमारे बीच है तो कभी-कभी हमें अपनी शान्तिके अर्थ अपने निजी विचारोंके अनुकूल चलनेसे रोकना चाहिये।

१३८४—ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो सभी चीजोंको पूर्णतः जानता हो? अतएव अपने विचारोंपर अधिक निर्भर न रहो। परंतु दूसरोंके विचारको भी सुननेके लिये तैयार रहो।

१३८५—विश्वके कोलाहलसे जहाँतक हो सके दूर भागो; सांसारिक विषयोंकी बातें बहुत बड़ी बाधाजनक हैं, कितनी ही अधिक नेकनीयतीके साथ वे क्यों न की जायँ! क्योंकि उनके द्वारा हम शीघ्र ही पतित हो जाते हैं और पाखण्डमें घिर जाते हैं।

१३८६—यदि तुम्हारा बोलना न्यायसङ्गत तथा आवश्यक हो तो

उन्हीं बातोंको बोलो जो तुम्हें गौरवान्वित कर सकें।

१३८७—हमें अधिक शान्ति मिलती यदि हम अपनेको दूसरोंके काम और वचनोंमें उलझाये न होते; उन वस्तुओंमें न फँसे होते जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

१३८८—वह अधिक दिनोंतक कैसे शान्ति पा सकता है जो दूसरोंकी चिन्तामें अपनेको डाले रहता है, जो सदा अवसरकी प्रतीक्षामें है, जो अपने-आपको अपने हृदयमें कभी स्मरण ही नहीं करता!

१३८९—एकान्त हृदयवाले धन्य हैं; क्योंकि उन्हें बहुत शान्ति मिलेगी।

१३९०—क्यों? क्या कारण है कुछ संत इतने पूर्ण और चिन्तनशील थे? क्योंकि उन लोगोंने अपनी इच्छाओंके समूल नाश करनेका प्रयत्न किया, अतएव वे अपने हृदयको पूर्णतः परमात्मामें लगा सके और पवित्र विश्रामके लिए अवकाश पा सके।

१३९१—सच्चिदानन्दघनविग्रह नित्य लीलामय, अखिल सौन्दर्य-माधुर्य-प्रियत्वादि गुणयुक्त भगवान् श्रीकृष्ण ही परम तत्त्व हैं—यह निश्चय ही प्रेमी भक्तका परम धन है और प्रिय-से-प्रिय वस्तु है।

१३९२—यदि हम पूर्णतः अपने आपमें मर जायँ और हृदयकी वासनाओंमें उलझे न रहें तो हमें प्रभुके प्रेमका सुख मिलेगा और स्वर्गीय चिन्तनका अनुभव प्राप्त होगा।

१३९३—सबसे बड़ी और वास्तवमें एकमात्र बाधा यह है कि हमने विषय और वासनाओंको पूर्णतः जीत नहीं लिया है और न हम उस पूर्णताके पथमें प्रवेश करना चाहते हैं, जिसपर संत हमारे पूर्व चले हैं और जब एक छोटी भी विपत्ति आती है, हम बहुत शीघ्र निराश हो जाते हैं और मनुष्यकी सहानुभूतिमूलक सहायताकी अपेक्षा करने लगते है।

१३९४—यदि हम साहसी पुरुषोंकी भाँति युद्धके संघर्षमें डटे रहनेका प्रयत्न करें, तो निश्चय ही हमें परमात्माकी स्वर्गीय सहायताका अनुभव होगा।

१३९५—वह प्रभु जो हमें संघर्षका अवसर देता है, सदा उसकी सहायता करनेके लिये तैयार है जो बहादुरीके साथ लड़ता है और उसके आशीर्वादमें विश्वास करता है।

१३९६—यदि हम अपने धार्मिक जीवनकी कसौटी केवल बाह्य आचारोंके आधारपर रक्खें तो हमारी साधना शीघ्र ही समाप्त हो जाय।

१३९७—हम कुल्हाड़ीसे समस्त वासनाओंकी जड़ काट डालें, जिसमें वासनाओंसे मुक्ति पाकर हम पहले अपनी अन्तरात्मामें शान्ति पा सकें।

१३९८—हमारी लगन और प्रणिधान प्रतिदिन बढ़ते ही जाने चाहिये।

१३९९—यदि हम प्रारम्भमें विशेष प्रयत्नशील हो जायँ तब हम पीछे सभी कुछ सहज ही और प्रसन्नतापूर्वक कर सकेंगे।

१४००—यदि तुम छोटी और आसान चीजोंको नहीं जीत सके तो कठिन चीजोंको कैसे जीत सकोगे?

१४०१—प्रारम्भमे ही अपनी इच्छाको रोक लो और बुरी आदतोंको छोड़ दो, अन्यथा वे धीरे-धीरे तुम्हें बहुत बड़ी कठिनाईमें डाल देंगी।

१४०२—ओह! यदि तुम केवल सोचते कि अपने सद्व्यवहारसे तुम्हें कितनी आन्तरिक शान्ति मिलती और दूसरोंको कितना आनन्द दे सकते तो मैं मानता हूँ कि तुम अपनी आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर विशेष सचेष्ट रहते।

१४०३—यह अच्छा है कि कभी-कभी हम कठिनाई और कष्टोंमें पड़ जाते हैं; क्योंकि उनसे प्रायः हम अपने अन्तरमें प्रवेश करते हैं और यह सोचते हैं कि हमारा यहाँका जीवन निर्वासनका है और ऐसी दशामें हमें किसी भी सांसारिक वस्तुमें विश्वास नहीं रखना चाहिये।

१४०४—यह अच्छा है कि कभी-कभी हमारा विरोध हो और हमारे विषयमें लोगोंका बुरा या नीचा ख्याल हो, यह भी जबकि हमारी नीयत और कार्य दोनों अच्छे हों।

१४०५—ये वस्तुएँ प्रायः हमें नम्रताकी अभिप्राप्तिमें सहायता देती हैं और दम्भसे हमें बचाती हैं। इसलिये कि जब बाहर दुनिया हमसे घृणा करती है और हमें किसी प्रकारका यश नहीं मिलता, ऐसी अवस्थामें हम केवल परमात्माको अपना आन्तरिक पारखी समझते हैं।

१४०६—मनुष्यको परमात्मामें इतना अधिक बस जाना चाहिये कि वह मनुष्यकी सहानुभूतिकी कोई अपेक्षा ही न करे।

१४०७—जब एक भलेमानुषको दुःख पहुँचता है या लालच घेर लेता है तब वह समझता है कि परमात्माकी उसे अधिक आवश्यकता है, वह देखता है कि परमात्माकी सहायताके बिना कोई काम नहीं कर सकता।

१४०८—तब वह अच्छी तरह देख सकता है कि पूर्ण स्वच्छन्दता और अक्षय शान्ति इस विश्वमें खोजे नहीं मिल सकती।

१४०९—जबतक हमलोग इस संसारमें हैं हम कष्टों और प्रलोभनोंसे बच नहीं सकते। मनुष्यका यहाँका जीवन प्रलोभनका जीवन है। अतएव सभीको अपनी प्रलोभनोंके सम्बन्धमें सतर्क होना चाहिये और प्रार्थनामें आत्मनिरीक्षण करना चाहिये अन्यथा आसुरी वृत्तिको उन्हें विचलित करनेका मौका मिल जायेगा।

१४१०—कोई भी मनुष्य कितना ही पूर्ण और पवित्र क्यों न हो उसे कभी-कभी प्रलोभन घेर ही लेते हैं; परन्तु उसे सदा सावधान होकर प्रलोभनसे बचना चाहिये।

१४११—प्रलोभनसे आत्मविजयका अवसर मिलता है, इससे वे प्रायः हमारे लिये लाभदायक होते है। यद्यपि वे है बड़े कष्टकर और दुःखदायी, किन्तु उनसे मनुष्य विनम्र, साहसी, पवित्र और शिष्ट हो जाता है।

१४१२—सभी संत अनेक प्रलोभनों और कष्टोंसे गुजरे हैं, उनसे लाभ उठाया है और उनपर विजय प्राप्त की है।

१४१३—कोई भी सम्प्रदाय इतना पवित्र नहीं, कोई भी स्थान इतना एकान्त नहीं जहाँ प्रलोभन और आपदाएँ न हों।

१४१४—कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो आजीवन प्रलोभनोंसे मुक्त हो; क्योंकि दुर्गुणकी ओर प्रवृत्ति होनेके कारण इसकी जड़ हमारे ही भीतर है।

१४१५—जब एक प्रलोभन या विपदा चली जाती है; उसके स्थानमें दूसरी चली आती है; अतएव हमें किसी-न-किसी उलझनमें फँसे ही रहना पड़ता है, क्योंकि हम अपने आनन्दकी स्थितिसे गिर गये हैं।

१४१६—बहुत-से मनुष्य प्रलोभनोंसे भागना चाहते हैं; परंतु और भी अधिक बुरी तरह उनमें गिर जाते हैं।

१४१७—केवल भागनेसे ही हमारी विजय नहीं हो सकती, परंतु सच्ची नम्रता और धैर्यसे हमलोग अपने शत्रुको परास्त कर सकते हैं।

१४१८—जो मनुष्य केवल बाहर-ही-बाहर प्रलोभनोंसे बचनेकी कोशिश करता है और उन्हें समूल नष्ट नहीं करता, उसे लाभ बहुत कम होगा, उसके पास शीघ्र ही प्रलोभन लौटेंगे और वह पहलेकी अपेक्षा बुरी दशामें पड़ जायगा।

१४१९—धीरे-धीरे धैर्य और दीर्घकष्टसे तुम सहज ही प्रलोभनोंको जीत लोगे।

१४२०—जो प्रलोभनमें उलझा हुआ है उससे रुखाईसे व्यवहार न करो, परंतु उसे धैर्य दो।

१४२१—मस्तिष्ककी अस्थिरता तथा परमात्मामें कम विश्वास ही सारे बुरे प्रलोभनोंका मूल कारण है।

१४२२—जैसे एक पतवाररहित नौका लहरोंके इशारेपर इधर-उधर नाचा करती है, इसी प्रकार वह मनुष्य, जो पथभ्रष्ट होकर ध्येय-रहित हो जाता है, कई प्रकारसे प्रलुब्ध होता है।

१४२३—अग्नि लोहेकी परीक्षा करता है और प्रलोभन एक सच्चे मनुष्यकी।

१४२४—हमलोग प्रायः नहीं जानते कि हम क्या करनेयोग्य हैं, परंतु प्रलोभन हमें दिखा देते हैं कि हम वस्तुतः क्या हैं।

१४२५—तो भी प्रलोभनके आरम्भमें हमें अधिक सावधान रहना चाहिये, क्योंकि यदि शत्रुको हम अपने हृदयके मन्दिरमें न आने दें, किन्तु इसके पूर्व प्रवेशद्वारपर ही उसे रोक दें तब हम उसे बहुत सहजहीमें जीत सकते हैं।

१४२६—पहले मनमें केवल दुर्गुणके विचार आते हैं, तब उसकी दृढ़ कल्पना हो जाती है; तत्पश्चात् उसमें सुखानुभूति होने लगती है।

१४२७—जब हम प्रलोभनोंमें पड़ें, हमें निराश नहीं होना चाहिये, परंतु उतनी ही अधिक तत्परतासे हमें भगवान्‌को पुकारना चाहिये कि वह हमें सारी कठिनाइयोंसे तुरंत निकाल लें।

१४२८—हम अपने सारे प्रलोभनों और कष्टोंमें परमात्माके हाथोंमें अपनी अन्तरात्माको विनम्र कर दें, क्योंकि वह विनीत हृदयकी रक्षा

करता है।

१४२९—प्रलोभनों और विपत्तियोंमें ही मनुष्यकी सच्ची परीक्षा होती है और इसके कारण परमात्माका आशीष भी अधिक मिलता है तथा उसके सद्‌गुण और अधिक विशेषतासे चमक उठते है।

१४३०—कुछ व्यक्ति बड़े-बड़े प्रलोभनोंसे तो दूर रहते है, परंतु छोटे-छोटे प्रलोभनोंसे परास्त हो जाते है।

१४३१—अपनी आँखें अपनेहीपर डालो और ध्यान रहे, तुम दूसरोंके कर्मोंके सम्बन्धमें अपना निर्णय न दो। दूसरोंके कामोंको समझनेमें प्रायः मनुष्य व्यर्थहीमें परिश्रम करता है।

१४३२—यदि हमारी इच्छाओंका पवित्र ध्येय सदा परमात्मा होता तो हम इतने दुखी न होते, परंतु प्रायः कोई-न-कोई आसक्ति भीतर बनी ही रहती है या बाहरसे कुछ ऐसी घटना हो जाती है जो हमें अपने पीछे खींच ले जाती है।

१४३३—मतभेद और निर्णयकी विभिन्नता ही प्रायः मित्रों और सहवासियोंमें, धार्मिक और भक्तपुरुषोंमें भाव-भेद उपस्थित कर देती है।

१४३४—सौन्दर्य, यौवन और भोगकी शक्ति सभी क्रम-क्रमसे चले जाते है, रहती है केवल भोगकी आसक्ति, जो बुढ़ापेमें भी मनमें सुख-शान्ति नहीं आने देती। सुख-शान्तिके लिये तो इस आसक्तिका ही त्याग करना आवश्यक है।

१४३५—किसी भी सांसारिक विषयके लिये या किसी व्यक्तिके प्रेमके कारण हमे कोई भी पाप नहीं करना चाहिये।

१४३६—परमात्मा यह परखता है कि मनुष्यके हृदयमें कार्यके साथ-साथ प्रेमका अंश कितना है, न कि कितना कार्य उसने किया, वह वही कार्य अधिक करता है जिससे उसका अधिक प्रेम है।

१४३७—जो वास्तविक पूर्ण और दयालु है वह अपनेको किसी भी वस्तुमें नहीं खोजता; उसकी एकमात्र इच्छा यही रहती है कि सभी वस्तुओंमें परमात्माका कीर्ति-गौरव झलके।

१४३८—संत किसीसे ईर्ष्या नहीं करता, क्योंकि वह व्यक्तिगत लाभकी कोई कामना ही नहीं करता, वह निरन्तर परमात्माके आनन्दमें ही प्रसन्न रहना चाहता है।

१४३९—संत किसी भी सत्कार्यको पूर्णतः परमात्मामें निवेदन करता है।

१४४०—अहा! जिसे वास्तविक दयाका एक कण भी प्राप्त है वह निश्चय ही समझ जायगा कि सभी सांसारिक पदार्थ अनित्यतासे ओतप्रोत हैं।

१४४१—जिन वस्तुओंका हम अपनेमें या दूसरेमें सुधार नहीं कर सकते, उन्हें धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिये, जबतक परमात्मा स्थितिको उलट न दें।

१४४२—यदि एक-दो बार चेतानेपर भी कोई न माने, उसके साथ मत झगड़ो, परंतु सभी कुछ परमात्माको सौंप दो कि उसीकी इच्छापूर्ति हो।

१४४३—जैसे भी हो सके दूसरोंके दुर्गुण और दुर्बलताको सहन करनेमें धीर होनेकी चेष्टा करो, क्योंकि तुममें भी बहुत-सी दुर्बलताएँ ऐसी हैं जिन्हें दूसरोंको सहन करना पड़ता है।

१४४४—यदि तुम अपनेको अपनी इच्छाके अनुकूल नहीं बना सकते तो तुम दूसरोंसे कैसे आशा कर सकते हो कि वे तुम्हारी इच्छाके अनुकूल हों।

१४४५—हमलोग तो दूसरोंको पूर्ण देखना चाहते हैं, फिर भी हम

अपनी त्रुटियोंका सुधार नहीं करते।

१४४६—हम दूसरोंको बड़ी कठोरतासे सुधारना चाहते हैं; परंतु अपना सुधार नहीं करते।

१४४७—दूसरोंकी स्वच्छन्दता हमें असन्तुष्ट कर देती है, लेकिन हम अपनी इच्छाओंका अवरोध करना नहीं चाहते।

१४४८—हम दूसरोंको कठिन नियमोंके भीतर रखना चाहते हैं; परंतु किसी प्रकार भी अपनेको संयत करना नहीं चाहते।

१४४९—कोई भी मनुष्य पूर्णतः दोषरहित नहीं है, कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो स्वतः सम्पूर्ण हो अथवा जो स्वयं पर्याप्त बुद्धिमान् हो। अतः हममें पारस्परिक सहनशीलता होनी चाहिये। हमें एक-दूसरेको आश्वासन, पारस्परिक सहायता, शिक्षा और उपदेश देते हुए मिल-जुलकर उत्साहपूर्वक भगवान्‌के मार्गमें चलना चाहिये।

१४५०—विपत्तिके समय ही हमें यह पता चलता है कि कितना अधिक धर्म या शक्ति हममें है।

१४५१—किसी धार्मिक संघ या मठमें रहकर वहाँके नियमोंको निष्ठापूर्वक मृत्युपर्यन्त पालन करना सहज बात नहीं है।

१४५२—यदि तुम धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहते हो तो प्रभुके नामपर इस संसारमें मूर्ख समझा जाकर तुम्हें संतुष्ट रहना चाहिये।

१४५३—धार्मिक वेष धारण करने या सिर मुड़ानेसे क्या लाभ ? आचरणमें परिवर्तन और वासनाओंका सम्पूर्ण क्षय ही तुम्हें सच्चा धार्मिक व्यक्ति बना देगा।

१४५४—जो आत्माका मुक्ति और परमात्माकी प्राप्तिके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तुकी अपेक्षा करता है, उसे कष्ट और उदासीके अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता।

१४५५—जो सबसे छोटा और सबका सेवक होनेका प्रयत्न नहीं करता, वह बहुत कालतक शान्तिपूर्वक नहीं रह सकता।

१४५६—तुम सेवा करनेके लिये आये, हुकूमत चलानेके लिये नहीं। जान लो, कष्ट उठाने और परिश्रम करनेके लिये तुम इस जगत्में आये हो, आलसी होकर वार्तालापमें समय नष्ट करनेके लिये नहीं।

१४५७—साधन-मार्गमें मनुष्यकी ऐसी परीक्षा होती है जैसे आगकी भट्ठीमें सोनेकी।

१४५८—साधन-पथमें कोई भी मनुष्य टिक नहीं सकता जबतक वह परमात्माके प्रेमके लिये हृदयसे विनम्र न हो जाय।

१४५९—एकमात्र श्रीवासुदेवके सिवा इस जगत्में स्थावर-जङ्गम कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है। वही वासुदेव सभी प्राणियोंके अन्तरात्मा हैं।

१४६०—विद्याके समान संसारमें कोई नेत्र नहीं है, सत्यपालनके समान कोई तप नहीं है, रागके समान दुःखका कोई कारण नहीं है।

१४६१—हिंसा, असत्य, छल, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि दुःखदायी पापकर्मोंसे बचना, निरन्तर पुण्यप्रद कर्मोंमें निरत रहना, अपने-अपने वर्ण और आश्रमके धर्मानुकूल सदाचारका पालन करना ही अति श्रेष्ठ कल्याणका मार्ग है।

१४६२—जो पुरुष स्त्री, पुत्र, धनादिमें आसक्त हैं, उसकी बुद्धि मोह-जालमें फँसकर धर्म-पथसे डिग जाती है। अतः सबसे पहले काम और क्रोधके वेगको वशमें करे। इन्हें जीत लेनेपर सारी कठिनाइयाँ स्वयं हल हो जाती हैं।

१४६३—जीवमात्रको दुःख न देनेकी चेष्टा करना ही सर्वोत्तम धर्म है।

१४६४—जैसे रेशमका कीड़ा अपने आप परिग्रहसे मारा जाता है

वैसे ही मनुष्य भी परिग्रहसे मारा जाता है।

१४६५—समस्त संसारको भलीभाँति यथार्थ दृष्टिसे देखनेवाले कभी रोते नहीं।

१४६६—उस प्राणारामको प्राण समर्पण कर देनेपर जैसा निश्चिंत हुआ जाता है, वैसा और किसीको भी अर्पण करनेपर नहीं; क्योंकि अन्य किसीमें इतनी सामर्थ्य ही नहीं है।

१४६७—भलाई-बुराईसे मन हटाकर जो शान्तशील पुरुष उदासीनभावसे यात्रा कर संसारको पार कर जाते हैं, वे ही सच्चे पण्डित हैं।

१४६८—शुक्लपक्षके पीछे कृष्णपक्ष और कृष्णपक्षके पीछे शुक्लपक्ष। इसी प्रकार सुख-दुःखका चक्र चला करता है। इनकी ओरसे दृष्टि हटाकर प्रभुके मार्गमें लगो, इस चक्रसे छूटनेका बस एक यही उपाय है।

१४६९—जो भगवान् केवल नाम लेते ही समस्त पापोंके समूहको नाश करनेवाले हैं, उनको जो हृदयमें सदा धारण किये रहता है और एक क्षणको भी नहीं त्यागता, जिसने भगवान् वासुदेवके चरणोंको निज हार्दिक प्रेमसे बाँध रखा है, वही वैष्णवोंमें उत्तम है।

१४७०—वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता-पिता, भाई-बन्धु आदि जल जायँ जो श्रीहरिके चरणोंके सम्मुख होनेमें सहर्ष सहायक नहीं होते।

१४७१—यदि मन निश्चल है, वचन निर्मल है, करनी भली है तो फिर साधकको और चाहिये ही क्या?

१४७२—स्त्रियोंका शरीर दीप-शिखाके समान है। रे मन! तू उसमें पतंग होकर जल मत। फिर तुझे लोक या परलोकमें कहीं भी

ठौर-ठिकाना न मिलेगा।

१४७३—अमावस्याके घोर अन्धकारमें काले पत्थरपर बैठी चींटीकी भाँति ईश्वर मानवहृदयमें गूढ़रूपसे विद्यमान है।

१४७४—जिसे ईश्वरका साक्षात्कार हुआ है उससे बिना जाना कुछ भी नहीं रहा। जिसने परमात्माको जान लिया उसने जाननेयोग्य सब कुछ जान लिया।

१४७५—अहं और मनको दबाकर सबके भीतर भगवान्‌का दर्शन करना संतोंका काम है।

१४७६—पहले भगवान्‌को जानो और पीछे और कुछ।

१४७७—ईश्वरके सिवा तुम जो कुछ जानते हो उसे भूल जाओ और इधर-उधरकी बातें जाननेके लिये माथा मत मारो। केवल ईश्वरमें लीन रहो—उसीके रंगमें रंग जाओ।

१४७८—जबतक तुम्हारे मनमें संसार बसा हुआ है तभीतक भगवान् तुमसे दूर हैं। संसारकी तरफसे तुम्हारी विरक्ति होते ही तुम जाओगे ईश्वरकी ओर, जिससे तुम्हारे अन्तःकरणमें अवश्य प्रकाश होगा। उस प्रकाशमें तुम्हें ईश्वरके सिवा और कोई न दिखायी देगा और न स्मृति अथवा वाणीमें ही आयेगा। यही योगकी वास्तविक अवस्था है।

१४७९—जो मनुष्य अशुद्ध दर्शनसे नेत्रों और भोगोंसे इन्द्रियोंको बचाता है, नित्य ध्यानयोगसे अन्तःकरणको निर्मल रख अपने चरित्रको शुद्ध करता है और धर्मपूर्वक अर्जित अन्नसे अपना पालन करता है उसके ज्ञानमें कोई कमी नहीं।

१४८०—वैराग्य ईश्वर-प्राप्तिका गूढ़ उपाय है। उसे तो गुप्त रखनेमें ही कल्याण है। जो अपने वैराग्यको प्रकट करते हैं उनका वैराग्य

उनसे दूर भागता है।

१४८१—सदा विनय और प्रेमपूर्वक ईश्वरका भजन करो। धर्मका अनुसरण और पूज्यभावसे सिद्ध पुरुषोंका समागम करो। सेवा और सम्मानपूर्वक साधुजनोंका सङ्ग करो। प्रफुल्ल बदनसे निर्दोष भ्रातृमण्डलके साथ रहो। अज्ञानी लोगोंके साथ दयालु-हृदय और नम्र वाणीसे तथा नौकरों और घरके लोगोंके साथ सज्जनता तथा सुशीलता-पूर्वक बर्ताव करो।

१४८२—जो आनेवाले कालकी चिन्ता किये बिना प्रभुमें रत रहता है वही सच्चा सहनशील है।

१४८३—ईश्वरसे डरना भाग्यशाली बननेका लक्षण है। पाप करते रहकर भी ईश्वरकी दयाकी आशा रखना दुर्भाग्यकी निशानी है।

१४८४—जिसकी जीभपर भगवान्‌का नाम है वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। जिसने भगवान्‌का नाम लिया उसके द्वारा सब तपस्या हो चुकी, सब यज्ञ हो चुके, सब तीर्थोंका स्नान हो चुका, वेदका पारायण भी हो गया।

१४८५—जो मनुष्य ईश्वरके सिवा न किसीसे डरता, न किसीकी आशा रखता है, जिसे अपने सुख-संतोषकी अपेक्षा प्रभुका सुख-संतोष अधिक प्रिय है, उसीका ईश्वरके साथ मेल है।

१४८६—इन तीन बातोंको अपना परम शत्रु समझो—धनका लोभ, लोगोंसे मान पानेकी लालसा और लोकप्रिय होनेकी आकांक्षा।

१४८७—ईश्वरकी ओर चित्तवृत्ति रखनेसे तुम्हारी उन्नति ही होगी। इस मार्गमें कभी अवनति होती ही नहीं।

१४८८—यदि तुम ईश्वरके प्रीतिपात्र होना चाहते हो तो ईश्वर जिस स्थितिमें रखना चाहे उसीमें संतुष्ट होना सीखो।

१४८९—दुःख-दारिद्र्य, रोग-शोक, ताप-संताप सभी आवें; खूब आवें। किसी तरह भी डरो मत। यह सारी सौगात उस प्रियतमके घरसे ही तो आती है।

१४९०—प्रत्येक कामको करते समय याद रखना कि मैं जो काम कर रहा हूँ उसे ईश्वर देख रहा है, मैं जो कुछ बोल रहा हूँ उसे ईश्वर सुन रहा है। मौन धारण करते समय भी उसका कारण ध्यानमें रखना, क्योंकि ईश्वर उसे भी जानता है।

१४९१—स्पृहा तीन प्रकारकी होती है—भोगने, बोलने और देखनेकी। भोग भोगते समय ध्यान रखना कि ईश्वर देख रहा है, बोलते समय ध्यान रखना कि सत्यका विनाश न हो और देखते समय ध्यान रखना कि साधुता दूषित न हो जाय।

१४९२—इन चार बातोंके बारेमें आत्मपरीक्षण करते रहना—(१) कोई भी शुभ कर्म करते समय तुम निष्कपट हो न? (२) जो कुछ बोल रहे हो निःस्वार्थभावसे ही न? (३) जो दान-उपकार कर रहे हो बदलेकी आशाके बिना ही न? (४) जो धनसञ्चय कर रहे हो कृपणता छोड़कर ही न?

१४९३—प्रभुको सदा सर्वत्र उपस्थित समझकर यथाशक्ति उसका ध्यान, भजन और आज्ञापालन करते रहना। इस मायावी संसारने आजतक असंख्य जनोंका संहार किया है, उसी प्रकार तुम्हारा भी विनाश न हो जाय इसका ध्यान रखना।

१४९४—एक प्रभुका सदैव स्मरण रखो, मनुष्योंकी बातें रहने दो।

१४९५—मेरा बस चले तो अपने निन्दकोंको खूब इनाम दूँ। कारण, उनके निन्दा और द्वेषसे तो मेरा हितसाधन ही होता है।

१४९६—सावधान रहना, यह दुनिया शैतानकी दूकान है।

भूलकर भी इस दूकानकी किसी चीजपर मन न चलाना, नहीं तो शैतान पीछे पड़कर उस चीजके बदले तुम्हारा धर्मरूपी धन छीन लेगा।

१४९७—मुनि—सच्चा साधक वही है जिसे ईश्वरके विचारके सिवा दूसरी बात प्रिय ही नहीं लगती।

१४९८—ईश्वरका कहना है जब मैं अपने दासपर प्रेम करता हूँ तब मैं खुद उसकी आँख, कान और हाथ आदि बन जाता हूँ। मेरा दास मेरे द्वारा ही देखता है, सुनता है, बोलता है और मेरे द्वारा ही सारा लेन-देन करता है।

१४९९—दुनिया एक युवती स्त्रीके समान है। जो मनुष्य उसकी कामना करता है उसे अपना जीवन उसके लिये बढ़िया-बढ़िया गहने-कपड़े जुटानेमें ही बिताना पड़ता है और जो उसकी ओरसे विरक्त रहता है वह पैर पसारकर एकान्तमें सुखसे सोता है।

१५००—इन तीन मनुष्योंको बुद्धिमान् जानना—जिसने संसारका त्याग कर दिया है, जो मौतसे पहले ही सब तैयारियाँ किये बैठा है और जिसने पहलेहीसे ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त कर ली है।

१५०१—मनुष्योंसे तो जितनी कम हो सके, बात करो, ज्यादा बात करो ईश्वरसे।

१५०२—जो ईश्वरको अपना सर्वस्व मानता है वही असली धनवान् है। दुनियाकी चीजोंको अपनी सम्पत्ति माननेवाला तो सदा गरीब ही रहेगा।

१५०३—ईश्वरका स्मरण मेरी जिंदगीकी खुराक, उसकी प्रशंसा मेरी जिंदगीका पेय और उसकी लज्जा मेरी जिंदगीके कपड़े हैं।

१५०४—जो मनुष्य ईश्वरसे डरता है उससे दुनिया भी डरती है और जो प्रभुसे नहीं डरता है उससे दुनिया भी नहीं डरती।

१५०५—मायावी संसारसे सदा सचेत रहना। यह बड़े-बड़े पण्डितोंके मनको भी वशमें कर लेता है।

१५०६—आहारमें जिसकी लालसा बढ़ती है वह साधनाके मार्गसे जल्दी ही दूर हो जाता है।

१५०७—ईश्वरपरायण साधुजनोंसे प्रीति करना और ईश्वरसे प्रीति करना एक समान है।

१५०८—बाहरी आँखोंका नाता बाहरी चीजोंसे है, भीतरी आँखोंका नाता परमात्माकी श्रद्धासे।

१५०९—सहनशीलता और सत्यपरायणताके संयोगके बिना प्रभु-प्रेम पूर्णताको प्राप्त नहीं होता।

१५१०—विषयोंमें आनन्दका स्पर्श मानकर हम प्राणोंकी बाजी लगाकर उन्हींकी ओर दौड़ते हैं और विषय-विषास्वादनसे संतप्त होकर पुनः-पुनः जन्म-मृत्युका दुःखान्त नाटक खेलते फिरते हैं।

१५११—संतसमागम और हरिकथा प्रभुमें श्रद्धा उत्पन्न करते हैं। प्रभुके विश्वाससे तीव्र जिज्ञासा, जिज्ञासासे विवेक-वैराग्य और वैराग्यादिसे तत्त्वज्ञान, तत्त्वज्ञानसे परमात्मदर्शन और परमात्मदर्शनसे सर्वोपरि स्थान प्राप्त होता है।

१५१२—संसारासक्त लोगोंसे दूर रहो। सुख देनेवालेकी प्रशंसा या खुशामद मत करो और दुःख देनेवालेका भी तिरस्कार न करो।

१५१३—मनके विलीन होनेपर जिस सुखरूप आत्मा या द्रष्टाका प्रकाश होता है, वही ब्रह्म है, वही अमृत है; वही शुभ्र और निर्मल है, वही सबकी गति और चरम लक्ष्य है।

१५१४—सच्चिदानन्दघनविग्रह श्रीकृष्ण हम सबके 'मोहन' है। परंतु उनको केवल मोहन रूपसे ही नहीं जानना चाहिये। ये 'मदन-

मोहन' हैं यह भी जान लेना चाहिये।

१५१५—जिसका बाह्य जीवन उसके आन्तरिक जीवनके समान नही है उसका संसर्ग मत करो।

१५१६—शक्ति कम है, बुद्धि मन्द है, इसके लिये तू चिन्ता न कर। तेरे पास जो कुछ है, उसीके द्वारा तू उनकी पूजा करनेको तैयार हो जा। फिर उनकी दयाका अनुभव होनेमें विलम्ब नहीं होगा।

१५१७—संसार कौन है ? जो ईश्वरसे तुम्हें परे रखता है।

१५१८—अधम कौन है ? जो ईश्वरके मार्गका अनुसरण नहीं करता।

१५१९—यदि तुमने ईश्वरको पहचान लिया है तो तुम्हारे लिये एक वही दोस्त काफी है। यदि तुमने उसको नहीं पहचाना है तो उसे पहचाननेवालोंसे दोस्ती करो।

१५२०—जो श्रीहरिकी कथा-सुधाका पान करते हैं, साधु-पुरुषोंके सखा श्रीहरि उनके हृदयस्थ होकर कामादि वासनारूप बाह्य और आन्तरिक सभी अमङ्गलोंको दूर कर देते हैं।

१५२१—अबोध शिशुकी तरह यदि अपनेको भूलनेकी चेष्टा करो तो देखोगे जगत्-जननीकी गोदमें आश्रय पानेमें तनिक भी देर न लगेगी। यदि अपने बलका भरोसा तुम्हें है तो तुम्हारी बात तुम्हीं जानो।

१५२२—हमें अपने ध्येयको नित्य स्मरण कर लेना चाहिये और विशेष उत्साहसे अध्यात्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। मानो हमारे संसारका यह प्रथम दिवस हो।

१५२३—हमारी निष्ठाके अनुकूल ही हमारी आध्यात्मिक उन्नतिमें सफलता होती है। इसलिये जिसे विशेष उन्नतिकी अपेक्षा हो वह विशेष परिश्रम करे।

१५२४—सत्पुरुषोंकी कार्यसिद्धि उनकी अपनी बुद्धिमत्तापर निर्भर नहीं है; परंतु भगवान्‌के अनुग्रहपर।

१५२५—मनुष्य मनसूबे बाँधता है और परमात्मा उन्हें मिटा देता है।

१५२६—दिनमें संत घोर परिश्रम करते हैं और रातमें लगातार प्रार्थना; परिश्रम करते समय भी वे मानसिक प्रार्थनासे च्युत नहीं होते हैं। वे एक-एक क्षणसे लाभ उठाते हैं, भगवान्‌की सेवामें उनका प्रत्येक घंटा बहुत-सा मालूम होता है।

१५२७—महात्मा लोग सभी सम्पदा, पद, सम्मान, मित्र और अपने समीपी व्यक्तियोंको त्यागकर संसारकी किसी भी वस्तुको नहीं रखते। वे कठिनाईसे जीवन-धारणमात्रके लिये आवश्यक पदार्थोंको अङ्गीकार करते हैं और आवश्यकताके समय भी शरीरकी सेवा करनेमें दुखी होते हैं।

१५२८—सांसारिक दृष्टिसे तो वे बहुत दरिद्र होते हैं; किंतु सद्‌गुण और सदाचारमें बहुत धनी। बाह्यतः उनका जीवन अभावमय होता हैं; परंतु उनका आन्तरिक जीवन सदाचरण और दैवी आश्वासनके कारण नित्य प्रसन्न होता है।

१५२९—वे इस पृथ्वीपर अपरिचित रहते हैं; परंतु भगवान्‌के अति निकट और परिचित मित्र । वे स्वयं अपनेको नगण्य समझते हैं; किंतु भगवान्‌की आँखोंमें अति प्रिय हैं।

१५३०—सच्ची नम्रता उनका आधार है, सरल आज्ञाकारितामें उनका जीवन बीतता है, प्रेम और धीरतामें वे चलते हैं, अतएव आत्मभावमें वे नित्य उन्नति करते हैं और परमात्माकी दृष्टिमें सद्‌वृत्तियोंको प्राप्त करते हैं। उपासनामें उनकी कितनी श्रद्धा हैं, कितनी

अधिक कामना है उनमें सद्‌गुणोंको बढ़ानेकी और कितना संयमित होता है उनका जीवन !

१५३१—उनके पदचिह्न इस बातको प्रमाणित करते हैं कि वे वस्तुतः पूर्ण और पवित्र मनुष्य हैं और वे वीरताके साथ लड़ते हुए संसारको अपने पैरोंतले कुचल देते हैं।

१५३२—यदि तुम अविच्छिन्नरूपसे आत्मचिन्तन नहीं कर सकते तो कम-से-कम दिनमें एक बार तो किया करो; प्रातःकाल अथवा रात्रिमें। प्रातःकाल अपना ध्येय निश्चित कर लो और सोते समय अपनी परीक्षा कर लो कि तुमने क्या किया है, मन, वचन और कर्मसे तुमने कैसा व्यवहार किया है।

१५३३—असुरोंके नीच वारोंके लिये अपनेको सुसज्जित रक्खो। वासनाओंपर लगाम चढ़ाओ, इस प्रकार तुम उत्कट आकांक्षाओंको सहज ही जीत सकोगे।

१५३४—आलसी मत बनो। पढ़ते-लिखते रहो या प्रार्थना करते रहो; ध्यान करते रहो अथवा जनसाधारणके कल्याणके लिये कुछ करते रहा करो।

१५३५—धार्मिक अभ्यास जनसाधारणके सम्मुख नहीं करना चाहिए, उनका अभ्यास स्वच्छन्दतापूर्वक एकान्तमें घरहीपर होता है। उनके प्रदर्शनसे हानि-ही-हानि है।

१५३६—अपने कर्तव्यको पूरी तरह सचाईके साथ कर चुकनेपर, यदि तुम्हें समय मिले तो अपनेको अपने भीतर ले जाओ अपनी साधना और अपनी उपासनाके अनुसार।

१५३७—अपने अन्तस्‌में लौटनेके लिये एक सुन्दर समय चुन लो और बहुधा भगवान्‌की प्रेमपरायणता और दयाशीलतापर मनन करो।

१५३८—व्यर्थकी चेष्टाओंमें न उलझो, परंतु ऐसी चीजें पढ़ो जो तुम्हारे मस्तिष्कको उत्तेजित करनेकी अपेक्षा तुम्हारे अन्तस्‌में आत्मक्षोभकी सृष्टि करें।

१५३९—व्यर्थकी बकवादको त्याग दो, निष्प्रयोजन बातोंसे अपनेको हटा लो। नूतनता और अफवाहोंके पीछे परेशान मत हो; फिर तुम्हें उत्तम-उत्तम विषयोंपर मनन करनेके लिये पूरा समय मिलेगा। बड़े-बड़े संत लोकालयके कोलाहलसे विलग रहते हैं और विशेषतः परमात्माके चिन्तनमें ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

१५४०—किसीने कहा है, 'जब कभी मैं आदमियोंमें जाता हूँ, मैं जो कुछ था, उससे कम ही होकर लौटा हूँ।'

१५४१—आवश्यकतासे अधिक शब्द बोलनेकी अपेक्षा कतई न बोलना कहीं अच्छा है।

१५४२—जो धर्मके निगूढ़, आन्तरिक और आध्यात्मिक तत्त्वोंको प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि जन-रव और विश्वके कोलाहलसे दूर संतोंकी संगतिमें रहें।

१५४३—जो मनुष्य अपनी शान्तिको अपनी इच्छासे अपने भीतर रख सकता है, वही निर्भयतापूर्वक बोल भी सकता है। जो मनुष्य इच्छापूर्वक अनुशासित होता है, वही सच्चा अनुशासन भी कर सकता है।

१५४४—वास्तविक आनन्द उसीको मिलता है जिसका अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र है।

१५४५—अहा! कितनी सुन्दर उस पुरुषकी अन्तरात्मा होनी चाहिये, जिसने कभी क्षणिक सुखोंकी खोज नहीं की और न इस संसारके किसी पदार्थमें अपनेको उलझाया और कितनी अधिक शान्ति और तृप्ति

उस पुरुषको होगी जिसने व्यर्थकी चिन्ताओंका नाश कर दिया है और सदा केवल भगवत्-चिन्तन करता है।

१५४६—किसी मनुष्यको दैवी सुख नहीं मिल सकता जबतक उसने परिश्रमपूर्वक पवित्र आत्मशुद्धिका अभ्यास न किया हो।

१५४७—शान्ति और मौनमें धर्मात्मा पुरुष धर्मग्रन्थोंके रहस्यको सीखता और लाभ उठाता है। धर्मात्मा पुरुषके लिये यह उत्तम है कि वह बहुत कम बाहर जाय।

१५४८—प्रसन्नतापूर्वक बाहर जानेवाला प्रायः उदासीसे घर लौटता है। जो बाहर-बाहर फूला हुआ है वह भीतरके आनन्दको क्या जाने ?

१५४९—जिसे तुम यहाँ नहीं देख सकते उसे और कहाँ देखोगे ? स्वर्ग, पृथ्वी और सभी तत्त्वोंको देखो, क्योंकि इन्हींसे सभी वस्तुओंकी सृष्टि हुई है।

१५५०—अपनी आँखोंको परमात्माकी ओर उठाओ और उससे अपने पापों और प्रमादोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करो।

१५५१—व्यर्थ वस्तुओंको पाखण्डियोंके लिये छोड़ दो, परंतु भगवान्‌की आज्ञा-पालन करनेके लिये तत्पर रहो।

१५५२—अपनेको अपने कमरेमें बन्द कर लो और वहाँ अपने प्रियतम प्रभुका आवाहन करो। अपने अन्तःपुरमें उससे हिल-मिलकर रहो, क्योंकि इतनी बड़ी शान्ति तुम्हें अन्यत्र नही मिलेगी।

१५५३—यदि तुम आध्यात्मिकतामें उन्नति करना चाहते हो तो सदा भगवान्‌से डरते रहो। अधिक स्वतन्त्रताका दावा मत करो। संयमके कठोर नियमोंमें रहकर अपनी इन्द्रियोंका निग्रह करो और मूर्खतापूर्ण हास-परिहासमें समय नष्ट न करो

१५५४—हार्दिक पश्चात्तापमें लगनेपर ही भक्ति प्राप्त होती है। पश्चात्तापसे कल्याणका पथ खुल जाता है जिसे अनिश्चित बुद्धि शीघ्र ही नष्ट कर देती है।

१५५५—सुन्दर अन्तःकरणके साथ-साथ भगवान्‌के भयके अतिरिक्त सच्ची स्वतन्त्रता और वास्तविक आनन्द कहीं नहीं है।

१५५६—आनन्द उसे है जो क्षोभ उत्पन्न करनेवाली सभी वस्तुओंको हटाकर अपनेको एकमात्र पवित्र पश्चात्तापके उद्‌देश्यमें लगा देता है एवं उन सबको त्याग देता है जो उसकी आत्माको दूषित करते हैं।

१५५७—वीरताके साथ आत्मनिग्रह करो, एक प्रकारका अभ्यास दूसरे प्रकारके अभ्यासको जीत लेता है।

१५५८—जब मनुष्यको अपने पापोंके लिये गहरा पश्चात्ताप होता है तभी उसके लिये सारा संसार दुःखदायी और कष्टकर प्रतीत होने लगता है।

१५५९—मनुष्य जितनी ही संकीर्णतासे अपने सम्बन्धमें सोचता है उतना ही अधिक वह उदास होता है।

१५६०—भगवान्‌से बहुत ही विनयके साथ प्रार्थना करो कि वह तुम्हारे भीतर पश्चात्तापके भावको जाग्रत करे।

१५६१—जिन लोगोंको इन तीन वस्तुओंपर प्रेम है, उनमें और नरकमें ज्यादा दूरी नहीं है—(१)स्वादिष्ट भोजन, (२) सुन्दर वस्त्र, (३) धनवानोंका सहवास।

१५६२—बाहरी एकान्त वास्तविक एकान्त नहीं। मनमें चिन्ता और शोकका प्रवेश न हो वही सच्चा एकान्त है। ऐसा एकान्तवास करनेवाला ही सच्चा सङ्गरहित है।

१५६३—मनको सदा वशमें रक्खो। यदि वह हाथमें होगा तो

उसमें प्रवेश करनेको दूसरेको रास्ता ही नहीं मिलेगा।

१५६४—जो मनुष्य ईश्वरपर विश्वास रखकर उसकी प्रीतिके लिये धर्माचरण करता है, वही निर्भय है और उसे ही प्रभु अपनी सेवामें लेता है।

१५६५—किस उपायसे प्रभु-कृपा प्राप्त हो? प्रभु-प्रेममें बाधकरूप इस संसार और बाह्य जीवनमें आसक्ति छोड़ दे।

१५६६—लौकिक भोगोंसे विमुखता, ईश्वरकी आज्ञाका पालन और ईश्वरेच्छासे जो कुछ हो जाय उसीमें प्रसन्नता मानना सच्ची प्रभु-भक्तिके लक्षण है।

१५६७—व्यवहारको शुद्ध रखनेके दो उपाय हैं—धीरज और प्रेम।

१५६८—शुद्ध प्रेमसे ही शुद्ध धर्मानुष्ठान सम्भव है। जिसकी जड़ शुद्ध नहीं, उसके डाल-पात और फल किस प्रकार शुद्ध हो सकते हैं?

१५६९—अहम्मन्यता और ममताको दबाकर सबके साथ बन्धुत्व स्थापित करना एक ऋषिका काम है।

१५७०—मैं जिस समय इन्द्रियोंका निग्रह करनेमें असमर्थ हो जाता हूँ तो परमेश्वरका स्मरण करता हूँ और जब मैं उसकी याद करता हूँ तो वह जरूर ही मेरी खबर लेता है।

१५७१—साधुताके तीन लक्षण हैं—(१) संसारका ऊँच-नीच तुम्हारे हृदयमें प्रवेश न करने पावे-मिट्टीकी भाँति सोने-चाँदीको भी त्याग देनकी क्षमता तुममें होनी चाहिये। (२) लोकापवादपर दृष्टि मत दो, न लोक-प्रशंसासे फूलो और न लोकनिन्दासे अप्रसन्न हो। (३) तुम्हारे हृदयमें लौकिक विषयकी कामना निःशेष हो जाय। दूसरोंको विषयभोग और स्वादिष्ट खान-पानमें जैसा आनन्द मिलता है वैसा ही आनन्द तुम्हें

उन भोगोंके त्यागमें मिले।

१५७२—सहनशीलताके तीन लक्षण हैं—(१) निन्दाका त्याग, (२) निर्मल संतोष और (३) आनन्दपूर्वक ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन।

१५७३—सदा विनय और प्रेमपूर्वक ईश्वरका भजन करो। सेवा और सम्मानपूर्वक साधुजनोंका सङ्ग करो।

१५७४—अपना दोष कोई देख नहीं पाता। अपना व्यवहार सभीको अच्छा मालूम होता है; किंतु जो मनुष्य सब हालतमें अपनेको छोटा समझता है, वह अपने दोष भी देख सकता है।

१५७५—साधुजनोंके लिये सत्सङ्ग श्रेयस्कर है। जो सत्सङ्गसे दूर रहता है वह रोगरहित नहीं। मान-अपमान, कृपा-अकृपा इन सबको एक समान समझे बिना मनुष्यमें सम्पूर्णता नहीं आती।

१५७६—ईश्वरने जिसे परमार्थज्ञानमें श्रेष्ठ बनाया है वह पापमें पड़कर अपना पतन न होने दे यह उसका पहला कर्तव्य है।

१५७७—इन चार बातोंसे जीवका कल्याण होता है—ईश्वरके प्रति दीनता, ईश्वरेतर सब पदार्थोंमें निःस्पृहता, ईश्वरका ध्यान और विनय।

१५७८—तुम अपनी सांसारिक इच्छाओंकी कैदमें बंद हो। उससे छूटनेके लिये यदि सब प्रकारसे अपने-आपको प्रभु चरणोंमें अर्पित कर दोगे तो तुम्हारी रक्षा होगी और तुम्हें सच्चा सुख मिलेगा।

१५७९—जो मिल जाय उसीसे संतोष मानना और यह याद रखना—परायी आशासे भली निराशा।

१५८०—सभी प्राणियोंका आहार भगवान्‌के भण्डारसे आता है।

१५८१—कुशलसे तो वह है जो संसारके पार उतर गया है और

शान्तिपूर्वक वह है जिसने स्वर्गीय जीवनका आनन्द पाया।

१५८२—ये तीन अवस्थाएँ तुम्हारी न हों तो नरक अवश्यम्भावी है—

(१) जो दिन बीते जा रहे हैं उनके लिये खेद करना, (२) आजका दिन सर्वश्रेष्ठ मानकर अपनी आत्माके कल्याणार्थ यथाशक्ति कार्य करना और (३) कल ही तुम्हारी मृत्यु होनेवाली है इसे सदा याद रखना।

१५८३—समस्त जीवोंके परम सुहृद् भगवानने हमारे लिये जो व्यवस्था की है, वह कभी हमारा अकल्याण नहीं कर सकती। सुख-दुःख तो उनके चरण-युगल हैं। आइये, इन चरण-युगलोंमें प्रणाम करें।

१५८४—मृत्यु आकर तुम्हें जगावे उसके पहले जाग जाओ।

१५८५—धनवान् होते हुए भी जिसकी धनेच्छा दूर नहीं हो गयी है, उसे मैं सबसे अधिक गरीब समझता हूँ।

१५८६—जीभसे प्रार्थना बोल देने और सिर झुका देनेसे ही तो कुछ नहीं होता। प्रार्थना एकाग्रतापूर्वक होनी चाहिये।

१५८७—हे मानवो! ईश्वरके मार्गमें न तो आँखोंकी जरूरत है और न जीभकी। जरूरत है पवित्र हृदयकी। ऐसा प्रयत्न करो जिससे वह पवित्रता पाकर तुम्हारा मन जाग जाय।

१५८८—पूरे जागे हुए मनका अर्थ यही है कि ईश्वरके सिवा दूसरी किसी चीजपर चले ही नहीं।

१५८९—नरकके बीज बोकर स्वर्गके फलकी आशा रखनेसे अधिक मूर्खता क्या होगी।

१५९०—सांसारिक वस्तुएँ ऐसी अनिष्टकारक हैं कि उनकी इच्छामात्र ईश्वरसे दूर ले जाती हैं, यदि कोई उन्हें पा ले तब तो उसकी

क्या हालत होगी ?

१५९१—धर्मके अनुष्ठानसे जो फल मिले उसे श्रीप्रभुप्रेमके लिये उत्सर्ग कर दो।

१५९२—ईश्वरपर निर्भर रहकर ही दुनियाकी गुलामीसे छूटा जा सकता है।

१५९३—ईश्वराज्ञाका पालन करनेपर ही सच्चा आनन्द मिलेगा।

१५९४—जो अपने उपदेशको अनुभव और आचरणमें नहीं उतार सकता उसके उपदेशोंसे कुछ भी नहीं बन सकता और वह सदा अपना तथा दूसरोंका अमूल्य समय नष्ट करता है।

१५९५—परमात्मा सबके अन्दर है। फिर एक सुमार्गमें जाता है, दूसरा कुमार्गमें। इसका कारण ? कारण यही है कि सुमार्गमें जानेवाला अपना सब कुछ भगवान्‌को सौंप देता है और कुमार्गमें जानेवाला अपना सब कुछ इन्द्रियोंको सौंप देता है।

१५९६—पारस तो लोहेको छूकर सोना बना देता है, परंतु सद्‌गुरु अपने शरणागत शिष्यका तमाम अज्ञान-मोह दूर करके उसे अपने समान बना देते हैं।

१५९७—जो बनानेवाला है, पालक है, हम उसे ही क्यों न प्रसन्न करें ? ऐसी क्या वस्तु है जो उसकी प्रसन्नतासे नहीं मिल सकती ? संसारमें हम किस किसको प्रसन्न करते फिरें ?

१५९८—अपने साधनमें लगो, दूसरोंकी निन्दामें जरा-सा भी समय व्यर्थ न गँवाओ। समय बड़ा मूल्यवान् है।

१५९९—भगवान् अपने भक्तको कभी अज्ञानी नहीं रहने देते।

१६००—जीवन्मुक्त उसे कहते हैं जिसके हृदयमें पूर्ण शान्ति आ जाती है, आनन्दका भण्डार खुल जाता है तथा जिसका चित्तसदा

परमात्माके चरणोंमें लगा रहता है।

१६०१—यह जगत् एक रंगशाला है। जैसे रंगशालाके मञ्चपर पात्र अपना वेष बदलकर आते हैं, वैसे ही इस संसारमें भी जीव वेष बदल-बदलकर आते हैं।

१६०२—तुम हृदयको बिल्कुल खाली कर दो, उसमें कुछ भी न रहने दो, तब उसमें भगवान् वास करेंगे और जो कुछ भी तुम्हारे मुँहसे निकलेगा, वही भगवान्‌की ओरसे निकलेगा। बाँसुरीकी तरह अपनेको पोला बना दो; फिर सदा भगवान्‌के अधरोंका रसपान करोगे और उसीका सुर तुम्हारे भीतरसे बजेगा।

१६०३—भगवान्‌की शरणमें जानेके सिवा हृदयके मैल धोनेका कोई साधन है नहीं।

१६०४—जो श्रद्धा और भक्तिसे भगवान्‌का पल्ला पकड़ता है, भगवान् उसका सारा भार अपने कंधेपर उठा लेते हैं और उसे तनिक भी कष्ट नही होने देते।

१६०५—जबतक हृदयमें विकार है, विषाद है, भय है और अविश्वास है, तबतक श्रद्धा और भक्ति दृढ़ नहीं हो सकती।

१६०६—हम क्या चाहते हैं? ईश्वरका साक्षात्कार क्यों ? आत्मिक शान्तिके लिये। आत्मिक शान्ति क्यों चाहते हैं ? दुःखोंसे छूटनेके लिये।

१६०७—जबतक इच्छा है, तबतक दुःख जरूर है। इच्छा गयी तो दुःख भी गया।

१६०८—गुरुका काम शिष्यको अपने सदृश बना लेना है।

१६०९—भगवत्साक्षात्कार करनेवालेका नाम ही विद्वान् है।

१६१०—हम भगवत्साक्षात्कार भी चाहें और सांसारिक चिन्ताओंको भी न छोड़ें—यह कैसे हो सकता है ?

१६११—शरीरके द्वारा, वाणीके द्वारा, मन तथा इन्द्रियोंके द्वारा बुद्धिसे, आत्मासे अथवा स्वाभाविक प्रकृतिके वशीभूत होकर जो भी कर्म करता हूँ, उन सबको हे नारायण ! तुम्हारे चरणोंमें निवेदन कर देता हूँ।

१६१२—यह शरीर सैकड़ों प्रकारके जोड़ लगनेके कारण बहुत ही कमजोर बना हुआ है। यह एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट हो जायगा, क्योंकि यह नाशवान् है। अरे ! हतभागी नीच ! तू शोक क्यों करता है ? सब रोगोंको दूर करनेवाले कृष्णरसायनका निरन्तर पान क्यों नहीं करता ? उसके पान करनेसे सम्पूर्ण रोग चले जायेंगे।

१६१३—जिनके करकमलोंमें मनोहर मुरलिका विराजमान है, जिनके शरीरकी आभा नूतन मेघके समान श्याम है, जो पुनीत पीताम्बरको धारण किये हैं, जिनका मुख शरद्के पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर है, नेत्र कमलके समान कमनीय हैं तथा अधर बिम्बाफलके समान लाल है, ऐसे श्रीकृष्णको छोड़कर मैं कोई दूसरा परतत्त्व नहीं जानता। मेरे सर्वस्व तो ये ही वृन्दावनविहारी श्रीमुरलीमनोहर हैं।

१६१४—यमुनाजीका सुन्दर पुलिन हो, वृन्दावनके सुन्दर वनोंमें वंशी बजाते हुए हलधर और सुदामा आदि प्यारे गोपोंके सहित आप विचरण कर रहे हों। हे मेरे प्राणनाथ ! हे मेरे मदन मोहन ! ओ मेरे चितचोर ! मेरे ऐसे दिन कब आवेंगे, जब मैं तुम्हारी इस प्रकारकी छबिको हृदयमें धारण किये पागलोंकी भाँति कृष्ण-कृष्ण चिल्लाता हुआ अपने जीवनका सम्पूर्ण समय निमिषकी नाईं बिता दूँगा।

१६१५—नाथ ! मुझे रोनेका वरदान दो ! रोता रहूँ, पागलकी भाँति सदा रोऊँ, उठते-बैठते, सोते-जागते सदा इन आँखोंमें आँसू ही भरे रहें, रोना ही मेरे जीवनका व्यापार हो, खूब रोऊँ, हर समय रोऊँ,

हर जगह रोऊँ और जोर-जोरसे रोते-रोते तुम्हें—केवल तुम्हें पुकारता रहूँ।

१६१६—वह कुल परम पावन है, वह जननी धन्य है और वह वसुन्धरा भाग्यशालिनी है जहाँपर भगवद्भक्त महापुरुष उत्पन्न हुआ हो।

१६१७—श्रीगङ्गाजी पापोंको क्षय कर देती हैं। चन्द्रमा तापको शमन करनेमें समर्थ है और कल्पवृक्ष दैन्यको नष्ट कर देता है, किंतु संत महापुरुष तो पाप, ताप और दैन्य इन सभीको नष्ट करनेमें समर्थ होते हैं।

१६१८—शास्त्र पढ़नेपर भी यदि उसके अनुसार आचरण न करे तो वह मनुष्य मूर्ख ही है।

१६१९—कृपालु संत भोजके वृक्षके समान दूसरोंके हितके लिये भारी विपत्ति सहते हैं, किन्तु दुष्टलोग सनकी भाँति दूसरोंको बाँधते है और उन्हें बाँधनेके लिये अपनी खालतक खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते है। दुष्ट बिना किसी स्वार्थके भी साँप और चूहेके समान अकारण ही दूसरोंका अपकार करते हैं।

१६२०—सुन्दर, सुललित स्वरयुक्त धाराप्रवाह वाणी और बढ़िया व्याख्यान देनेकी युक्ति—ये सब मनुष्यको संसारी भोगोंकी ही प्राप्ति करा सकते हैं। इनके द्वारा मुक्ति अर्थात् प्रभु-पादपद्मोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

१६२१—धर्मका आचरण करो और विषय-वासनारूपी जो सांसारिक व्यवहार है उन्हें छोड़ दो। सत्पुरुषोंका निरन्तर सङ्ग करो और हृदयसे भोगोंकी इच्छाको निकालकर बाहर फेंक दो। दूसरोंके गुण-दोषका चिन्तन करना एकदम त्याग दो। श्रीहरिकी सेवा-कथारूपी जो रसायन है, उसका निरन्तर पान करते रहो बस, मनुष्यमात्रका इतना

ही कर्तव्य है।

१६२२—जो साठ घड़ीके दिन-रातमें दो घड़ी संध्या-पूजनके लिये नहीं निकाल सकता, वह आगे उन्नति ही क्या कर सकता है।

१६२३—जिसके हृदयमें भगवत्प्रेम उत्पन्न हो गया, उसे फिर अन्य संसारी बातें भली ही किस प्रकार लग सकती हैं ? जिसकी जिह्वाने मिश्रीका रसास्वाद कर लिया है, फिर वह गुड़के मैलको आनन्द और उल्लासके साथ स्वेच्छासे कब पसंद कर सकता है ?

१६२४—प्रेमीकी स्थिति सदा एकरस रहती है, उसे प्रतिक्षण अपने प्रियतमसे मिलनेकी छटपटाहट होती रहती है। वह सदा अमृत ही बना रहता है। प्यारेके सिवा उसका दूसरा कोई है ही नहीं।

१६२५—जिस कर्मके द्वारा भगवान् हरि संतुष्ट हो सकें, वास्तवमें वही कर्म कहा जा सकता है और जिससे मुकुन्दचरणोंमें रति उत्पन्न हो सके, वही सच्ची विद्या है। जिस वर्णमें, जिस कुलमें और जिस आश्रममें रहकर श्रीकृष्ण-कीर्तन करनेका सुन्दर सुयोग प्राप्त हो सके, वही वर्ण, कुल, आश्रम शुभ और परम श्रेष्ठ है।

१६२६—श्रीकृष्णके मनोहर नामोंका ही स्मरण करते रहना चाहिये। श्रीकृष्ण-कथाओंके अतिरिक्त अन्य कोई भी संसारी बातें न सुननी चाहिये। खाते कृष्ण, पीते कृष्ण, चलते कृष्ण, उठते कृष्ण, बैठते कृष्ण, हँसते कृष्ण, रोते कृष्ण—इस प्रकार सदा कृष्ण-कृष्ण ही कहते रहना चाहिये।

१६२७—श्रीकृष्णनामामृतके अतिरिक्त इन्द्रियोंको किसी प्रकारके दूसरे आहारकी आवश्यकता ही नहीं है। इसीका पान करते-करते वे सदा सुतृप्त बनीं रहेंगी।

१६२८—भगवान् ऐसे दयालु हैं कि भक्तिसे दिये हुए एक चुल्लू

जल तथा एक तुलसीपत्रके द्वारा ही अपनी आत्माको भक्तोंके लिये दे देते हैं।

१६२९—प्रेम अन्धा है—यह कौन कहता है ? असलमें प्रेमके अतिरिक्त अन्य सभी अन्धे है। प्रेम ही एक ऐसा अमोघ बाण है जिसका लक्ष्य कभी व्यर्थ नहीं जाता ! उसका निशाना सदा ही ठीक लक्ष्यपर बैठता है। 'अपना' कहीं भी छिपा हो, प्रेम उसे वहीं खोज निकालेगा ?

✓१६३०—तुम जैसी हालतमें हो; जहाँ हो; जैसे हो, जिस किसी भी वर्णके हो जैसी भी स्थितिमें हो, हर समय और हर कालमें हरिके सुमधुर नामोंका संकीर्तन कर सकते हो। नाम-जपसे पापी-से-पापी मनुष्य भी परम पावन बन जाता है, अत्यन्त नीच-से-नीच भी सर्वपूज्य हो जाता है और बुरे-से-बुरा भी महान् भगवद्भक्त बन जाता है।

✓१६३१—भगवन्नामके सम्मुख भारी-से-भारी पाप ठहर नहीं सकते। भगवन्नाममें पापोंको क्षय करनेकी इतनी भारी शक्ति है कि चाहे कोई कितना भी घोर पापी-से-पापी क्यों न हो, उतने पाप वह कर ही नहीं सकता जितने पापोंको मेटनेकी शक्ति हरिनाममें है।

✓१६३२—भगवान् जिसे कृपा करके अपनी शरणमें लेते हैं, सबसे पहले, धीरेसे उसका सर्व-'स्व' अपहरण कर लेते हैं। उसके पास 'अपना' कहनेके लिये कुछ भी रहने नहीं देते।

१६३३—जप-तप, भजन-पूजन तथा लौकिक, पारलौकिक सभी प्रकारके कार्योंमें विश्वास ही मुख्य है। विश्वासके सम्मुख कोई बात असम्भव नहीं।

✓१६३४—प्रभुके प्यारे भक्त अपनी वाणीसे निरन्तर सुमधुर हरिनामका उच्चारण करते रहते हैं, मनसे उस मुरलीमनोहरके सुन्दर रूपका चिन्तन करते रहते है और शरीरसे सदा प्रभुके चरणोंमें दण्ड-

प्रणाम करते रहते हैं। वे सदा विकल-से, पागल-से, अधीर-से तथा अतृप्त-से ही बने रहते हैं! उनके नेत्रोंसे सदा जल टपकता रहता है। इस प्रकार वे अपनी सम्पूर्ण आयुको श्रीहरिके ही निमित्त समर्पण कर देते है।

१६३५—प्रेममें उन्मत्त हुआ भक्त कभी तो हँसता है, कभी रोता है, कभी गाता है और कभी संसारकी लोक-लाज छोड़कर दिगम्बरवेशमें ताण्डवनृत्य करने लगता है। उसका चलना विचित्र है, वह विलक्षण भावसे हँसता है, उसकी हर चेष्टामें उन्माद है। उसकी भाषा संसारी भाषासे भिन्न है। यह संसारके विधिनिषेधोंका गुलाम नहीं।

१६३६—कलियुगमें हरिनाम, हाँ केवल हरिनाम, एकमात्र हरिनाम ही संसार-सागरसे पार होनेका सर्वोत्तम साधन है। इसके सिवा इस कालमें दूसरी कोई गति नहीं है,नहीं है, दूसरी कोई गति है ही नहीं।

१६३७—जिस क्षण 'तेरा हूँ' कहकर भक्त भगवान्‌को पुकारता है, उसी क्षण प्रभु उसे अपना लेते हैं। वे तो भक्तोंके लिये भूखेसे बैठे रहते है, लोगोंके मुखकी ओर ताकते रहते हैं कि अब कोई कहे कि 'मैं तुम्हारा हूँ'।

१६३८—जलको मथनेपर घी भले ही निकले, बालूको पेरनेपर उससे तेल भले ही निकले, परंतु भगवान्‌के भजनके बिना इस संसार-सागरको तरना सर्वथा असम्भव है—यह अकाट्य सिद्धान्त है।

१६३९—चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारहों पुराण पढ़कर सारा ज्ञान प्राप्तकर और सभी संतोंका सत्सङ्ग प्राप्तकर अन्तमें तुम 'राम-नाममें' ही लौटोगे। फिर अभीसे उसीमें क्यों नहीं लगते ?

१६४०—जिसमें द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सम्पूर्ण प्राणोंके सहित मन ओत-प्रोत है, उस एक आत्माको ही जानो और सब बातोंको

छोड़ दो; यही अमृतका सेतु है।

१६४१—प्रकृति और पुरुषका नियन्ता, सकल प्राणियोंका अन्तर्यामी और षड्गुण-ऐश्वर्ययुक्त परमात्माके चरणोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी संसार-भय दूर नहीं होता।

१६४२—जिसने इच्छाका त्याग किया, उसको घर छोड़नेकी क्या आवश्यकता और जो इच्छाका बँधुवा है, उसको वनमें रहनेसे क्या लाभ हो सकता है, सच्चा त्यागी जहाँ रहे, वही वन और वही कन्दरा है।

१६४३—न जीनेकी इच्छा रक्खो न मरनेकी, वरं हर बातके लिये ऐसे तैयार रहो जैसे नौकर मालिकके हुक्मके लिये!

१६४४—भगवान् विष्णुका आश्रय ही संसारासक्त मनवाले लोगोंके लिये संसारचक्रका नाश करनेवाला है। इसीको बुद्धिमान् लोग ब्रह्मनिर्वाण सुख कहते हैं, अतएव तुमलोग अपने-अपने हृदयमें स्थित भगवान्का भजन करो।

१६४५—रागके समान आग नहीं, द्वेषके समान भूत-पिशाच नहीं, मोहके समान भयंकर जल नहीं और तृष्णाके समान भीषण नदी नहीं।

१६४६—कौन तेरी स्त्री है? कौन तेरा पुत्र है? यह संसार अतीव विचित्र है। तू कौन है? कहाँसे आया है? हे भाई! इस तत्त्वपर विचार कर।

१६४७—आत्मजयसे बढ़कर और कोई विजय नहीं है। वही है समस्त स्थायी सुखोंका आधार।

१६४८—बंदगी जो सम्पूर्ण हृदयके साथ न हो, निष्फल है।

१६४९—अचेत आदमीके लिये संसार भोग-विलासका स्थल है, परंतु विचारवान्के लिये युद्धक्षेत्र है, जहाँ जीवनपर्यन्त मन और इन्द्रियोंसे

संग्राम करना पड़ता है।

१६५०—सच्चा खोज करनेवाला वही है जो जबतक आप न खो जाय मालिकको खोजता रहे।

१६५१—आवेगमें आकर कोई काम मत करो। जो मनुष्य अपने आवेगोंका दास है वह अपनेको संयममें नहीं रख सकता। उसका जीवन अस्तव्यस्त रहता है।

१६५२—जिसने एक बार श्रीकृष्णरूपको देखा, उसकी आँखें फिर उससे नहीं फिरतीं, अधिकाधिक उसी रूपका आलिङ्गन करती है और उसीमें लीन हो जाती हैं।

१६५३—जिस ओर हम दौड़े वह सब दिशाएँ तेरी ही देखीं—सब ओर तू ही था। जिस स्थानपर हम पहुँचे वह सब तेरी ही गलीका सिरा देखा—सर्वत्र तुझे ही पाया।

१६५४—अगर गिरो तो अपने कुकर्मोंको दोष दो, अगर ऊँचे चढ़ो तो मालिकका गुण गाओ।

१६५५—मनुष्यका खड़ा रहना, चलना, दूसरोंको ठगना, छिपकर कार्य करना, दो आदमियोंका गुप्त बातचीत करना—सब कुछ परमेश्वर जानता है।

१६५६—सर्वव्यापी ब्रह्ममें ही सुख है, अल्पपरिच्छिन्नमें सुख नहीं है। ब्रह्म स्वरूप ही है अतएव उसीकी जिज्ञासा करनी चाहिये।

१६५७—जो भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन करता है, जो हरिभक्तोंको प्रिय है, जो महान् पुरुषोंकी सेवा करता है, ऐसा भक्त वन्दनीय है।

१६५८—जो मनुष्य सुनकर, स्पर्शकर, देखकर, खाकर और सूँघकर न तो प्रसन्न होता है और न उदास होता है, उसे जितेन्द्रिय

जानना चाहिये।

✓१६५९—सत्य बातका विश्वास करो और पापोंका तिरस्कार करो; जो शब्द सच्चे हृदयसे नहीं निकलते हैं, उनका न निकलना ही अच्छा है।

१६६०—जिसका मन ईश्वरपरायण है, वही सत्पुरुष है। जिसने कामिनी-काञ्चनका त्याग कर दिया है, वही सत्पुरुष है।

१६६१—ओ मेरे सिरजनहार ! तुम्हींमें अनुरक्त हूँ और तुम्हींमें उन्मत्त हूँ। रंग भी तुम्हारा ही लगा हुआ है, तुम्हारे ही साथ खेलता हूँ, तुम्हींसे मिलता हूँ। मेरे मालिक ! मैं तो एक तुम्हींपर आशिक हूँ। इश्क लगाने और कहाँ जाऊँ।

✓१६६२—जो वस्तु तुम्हारे मनको अच्छी लगती है, उसे छोड़ दो और जो चीज अच्छी नहीं लगती, उसपर प्रेम करो। यह तप हमेशा चालू रक्खो।

१६६३—जो त्रिलोकीके सम्पूर्ण वैभवके लिये भी आधे क्षणके लिये देवदुर्लभ भगवान्‌के चरणकमलोंके ध्यानको नहीं छोड़ता, वही सच्चा भक्त है।

१६६४—जो सब भूतप्राणियोंमें परमात्माको और परमात्मामें सब प्राणियोंको देखता है, वह समदर्शी और आत्मयज्ञ करनेवाला पुरुष स्वराज्य (मोक्ष)को प्राप्त होता है।

१६६५—जो सर्वप्राणियोंके हितकारी है, किसीमें दोषारोपण नहीं करते, किसीसे डाह नहीं करते, इन्द्रियों और मनको वशमें रखते हैं, निःस्पृह है और शान्त हैं, वे ही उत्तम भक्त हैं।

१६६६—जिसको भगवान्‌की याद आते ही रोमाञ्च हो जाय, आनन्दके आँसू बहने लगे, शरीरका रंग बदल जाय और 'हे श्रीकृष्ण !

हे गोविन्द !! हे हरे !!!' मधुर स्वरसे इस प्रकार नामगान करता जो रात-दिन भगवान्‌में चित्त लगाये रक्खे, वही श्रेष्ठ भक्त है।

१६६७—वास्तवमें यह सब तमाशा स्वप्नके सदृश है, इसमें कुछ भी सार नहीं है। तुम इस बातको बिना किसी संकोचके ग्रहण कर लो कि संसारकी स्थिति निरन्तर परिवर्तनशील ही रहती है।

१६६८—'मैं' की भाषा ही भक्त नहीं जानता, 'मेरा' कुछ भी नहीं कहता और सुख-दुःख क्या होता है, यह भी वह नहीं जानता।

१६६९—उसे कोई राम कहे या रहमान कहे, कृष्ण कहे या महादेव कहे—हैं ये सब एक ब्रह्महीके नाम।

१६७०—मेरा राम मेरे रोम-रोममें रम रहा है। मत समझ कि मेरा स्वामी मुझसे दूर है।

१६७१—बाहरी मददपर कभी भरोसा मत करो। केवल अपनेपर अपने अन्तरात्मापर, प्रभुपर भरोसा करो, इसीकी आवश्यकता है।

१६७२—जो सब भूतोंमें आत्माको देखता है और आत्मामें सब भूतोंको, वह किसीसे घृणा नहीं करता। जब मनुष्य यह जानता है, कि समस्त भूत आत्मा ही हैं और सबमें एकत्व देखता है फिर मोह और शोक कहाँ है ?

१६७३—बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि विषय-कामनामें फँसा हुआ मन जब-जब परमात्माको छोड़कर अन्यत्र जाय तब-तब वहाँसे लौटाकर उसे हृदयस्थित भगवान्‌में लगावे। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करनेसे साधकका चित्त थोड़े ही कालमें ईंधनरहित अग्निकी भाँति शान्त हो जाता है।

१६७४—कामना भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, घी डालनेपर अग्निके समान वह अधिकाधिक बढ़ती ही रहती है।

१६७५—संसारमें न तो कोई किसीका मित्र है, न शत्रु है। जो मनुष्य किसीको अपना शत्रु मानकर उसपर क्रोध करते हैं; वे वास्तवमें अपनी ही हानि करते हैं। संसार विष्णुमय है। शरीरका एक अङ्ग दूसरे अङ्गका शत्रु कैसे हो सकता है ?

१६७६—भगवान्‌की कथामें श्रद्धा करे, भगवान्‌की प्रतिमाकी पूजा करे, भगवान्‌का स्मरण करे, भगवान्‌के ही चरणकमलोंमें सिर झुकावे, भगवान्‌को ही संसारमें सबसे बड़ा साथी माने, भगवान्‌का ही सेवक बने और भगवान्‌के ही चरणकमलोंमें सम्पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण कर दे। जो पुरुष इस प्रकार भगवान्‌की भक्ति करते हैं, वे इस असार संसारके बन्धनसे मुक्त होकर परमपद पाते है।

१६७७—तुम परमेश्वर और भोग दोनोंकी सेवा नहीं कर सकते। विषय न बटोरो। कलके लिये चिन्ता न करो। कल अपनी चिन्ता आप करेगा।

१६७८—सदा स्मरण करनेयोग्य तो एक ही वस्तु है। सदा-सर्वदा सर्वत्र श्रीकृष्णके सुन्दर नामके स्मरणमात्रसे ही प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है।

१६७९—रे मनुष्य ! तू दीन होकर घर-घर क्यों भटकता है। तेरा पेट तो सेरभर आटेसे ही भर जाता है। भगवान् तो उस समुद्रको भी भोजन पहुँचाते हैं जिसका शरीर चार सौ कोस लम्बा-चौड़ा है। संसारमें कोई भूखा नही रहता। चीटीं और हाथी सभीका पेट भगवान् भरते है। अरे मूर्ख ! तू विश्वास क्यों नहीं करता।

१६८०—शोक, मोह, दुःख-सुख और देहकी उत्पत्ति सब मायाके ही कार्य हैं और यह संसार भी स्वप्नके समान बुद्धिका ही विकार है। इसमें वास्तविकता कुछ भी नहीं है। एक भगवान् ही सत्य हैं।

१६८१—शरीर और मन, बुद्धिको जीता हुआ अपरिग्रही, निराशी मनुष्य शरीरसम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पापोंको प्राप्त नहीं होता।

१६८२—सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वोंमें फँसे हुए जीवोंमें जो मनुष्य हर्ष, शोकरहित होकर विचरण करता है, वही तृप्त है।

१६८३—मैं न राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ और न मोक्ष ही चाहता हूँ। मैं दुःखपीड़ित प्राणियोंके दुःखका नाश चाहता हूँ।

१६८४—मैं परमेश्वरसे आठ सिद्धियोंवाली उत्तम गति या भक्ति नहीं चाहता, मैं केवल यही चाहता हूँ कि समस्त देहधारियोंके अन्तःकरणमें स्थित होकर उनके कष्टोंको भोगूँ, जिससे उन्हें कष्ट न हो।

१६८५—लोभ, दीनता, भय और धन आदि किसी भी कारणसे मैं अपना धर्म नहीं छोड़ सकता—यह मेरा दृढ़ निश्चय है।

१६८६—धर्मपालनमें बहानेबाजी कभी नहीं करनी चाहिये, मैंने सत्यहीसे सब शस्त्र प्राप्त किये हैं। मैं सत्यसे कभी नहीं डिग सकता।

१६८७—श्रीहरिके चरणोंकी सेवा मनुष्योंको स्वर्ग, मोक्ष, इस लोककी महान् सम्पत्ति और सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाली है।

१६८८—भगवान्‌की पूजा छोड़कर जो लोग दूसरेकी पूजा करते है, वे महामूर्ख हैं।

१६८९—'मैं' और 'मेरा' इन दो शब्दोंमें ही सारे जगत्‌के दुःख भरे हैं। जहाँ 'मैं', 'मेरा' नहीं है वहाँ दुःखोंका अत्यन्त अभाव है।

१६९०—जिस वस्तुके नाशसे बड़ा दुःख होता है, उसके प्राप्त होनेसे पूर्व सुख या दुःख कुछ भी नहीं होता। अतएव उसकी प्राप्तिके पूर्वकी अवस्थाको ध्यानमें रखकर मनको दुखी नहीं करना चाहिये।

१६९१—मिट्टी कुम्हारसे कहने लगी कि तू मुझे क्यों रौंदता है, एक दिन ऐसा होगा जब मैं तुझे रौंदूँगी यानी मरनेपर शरीरको मिट्टीमें

मिला दूँगी।

१६९२—विलम्ब न करो, श्रीरामको तुरंत भज लो, तनरूप तरकससे श्वासरूपी तीर निकला जा रहा है। फिर पछताना पड़ेगा।

१६९३—कार्यके सब सांसारिक सम्बन्धोंको हटा दो। इच्छारूपी प्रेतोंको उतार दो। अपने सब कामोंको पवित्र बना दो। आसक्तिके रोगसे अपनेको छुड़ा लो।

१६९४—नियम, धर्म, आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों ओषधियाँ है; किंतु बिना राम-कृपाके भवरोग नष्ट नहीं होता।

१६९५—एक ही सौन्दर्यराशि जो प्रत्येक रूपमें भासमान है, उसीमें अन्तरके सम्पूर्ण अनुरागको एकत्र करके विश्वके सम्पूर्ण मोहसे परित्राण प्राप्त कर लेना ही संन्यासका उद्देश्य है। विधि एवं निषेधसे परे 'अहं', 'त्वं' की सीमाको समाप्त कर जो आनन्दघन विराजित हैं, उसीमें चित्तको व्यवस्थित कीजिये।

१६९६—घोर संसारमें पड़े हुए जीवोंके लिये भगवान् वासुदेवकी भक्तिको छोड़कर मुक्ति पानेका और कोई भी मार्ग नहीं है।

१६९७—भगवान् गोविन्दके नामकीर्तनरूप अग्निसे तीनों जन्मोंके पाप जल जाते हैं।

१६९८—जो आनन्द संतोषी, निरीह और आत्माराम पुरुषको प्राप्त होता है, वह उन लोगोंको कभी नहीं मिलता जो कामनाओंके वशमें होकर इधर-उधर भटका करते हैं। संतोषी मनुष्यके लिये संसारमें सर्वत्र सुख-ही-सुख है।

१६९९—जो वस्तु अतिथिको न खिलावे, उसे आप भी न खाय। अतिथिकी सेवा करनेसे धन, यश, आयु और स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

भोजनके समय आये हुए अभ्यागतकी जाति न पूछे। उसे भोजन करावे।

१७००—जैसे ठोस पहाड़ वायुसे विचलित नहीं होता, वैसे ही विद्वान् निन्दा या स्तुतिसे विचलित नहीं होते।

१७०१—भोग्य वस्तुओंमें वासनाका उदय न होना ही वैराग्यकी अवधि है, चित्तमें अहंकारका सर्वथा उदय न होना ही बोधकी अवधि है और लीन हुई वृत्तियोंका पुनः उत्पन्न न होना ही उपरामताकी अवधि है।

१७०२—भगवान्‌का नाम ही दर्पहारी है, वे अभिमानका ही आहार करते है। अभिमान करनेसे बड़े-बड़े लोग पतित हो जाते हैं।

१७०३—जो कर्म निष्काम होकर यज्ञभावनासे किया जाय, जिस कर्मसे जीव-जीवमें अभेदकी बुद्धि हो वही धर्म है।

१७०४—लोटेमें नीचे छेद होनेसे सभी जल गिर पड़ता है। इसी प्रकार साधकके मनमें कामना होनेपर साधनका फल चला जाता है।

१७०५—सत्यता, सद्वचन, सत्कर्म, उदारता, क्षमा आदि लोकहितके कोई-न-कोई कार्य करते रहना चाहिये। ये सब बहुत बड़े सहायक हैं।

१७०६—जिन भगवान् विष्णुके स्मरणसे ही संसारके जन्म, जरा आदिसे उत्पन्न हुए भय भाग जाते हैं, उन भयहारी भगवान्‌के मेरे मनमे रहते मेरे लिये भय कहाँ है ?

१७०७—उपशान्त और यथार्थ ज्ञानद्वारा मुक्त हुए पुरुषोंका मन शान्त होता है। उनकी वाणी और कर्म शान्त होते हैं।

१७०८—यह शरीर रहे या जाय, जिसकी वृत्ति आनन्दस्वरूप ब्रह्ममें लीन हो गयी है, वह तत्त्ववेत्ता पुरुष फिर इसकी ओर ध्यान नहीं देता।

१७०९—मेरे स्वामी ! जगत्‌के बड़े-बड़े यज्ञ सृष्टिके प्रारम्भसे

लेकर अबतक आपको पूर्णतः तृप्त नहीं कर सके ! परंतु आपने व्रजकी गायों और ग्वालिनोंके बछड़े एवं बालक बनकर उनके स्तनोंका अमृत-सा दूध बड़े उमंगसे पान किया है। कितनी बड़भागिनी हैं वे !

१७१०—जिसमें सहनशीलता नहीं वह चाहे जितना भी बड़ा विद्वान्, तपस्वी और पण्डित क्यों न हो, कभी भी भगवत्कृपाका अधिकारी नहीं बन सकता।

१७११—भगवन्नाममहिमाको अर्थवाद माननेवालेको तो पाप लगता ही है, सुननेवालेको भी पाप होता है।

१७१२—भक्तिसे हीन होकर जप, तप, पूजा, पाठ, यज्ञ, दान, अनुष्ठान आदि कैसे भी सत्कर्म क्यों न किये जायँ, सभी व्यर्थ है।

१७१३—सबके आगे-पीछे वे ही श्रीहरि हैं। उनके सिवा प्राणियोंका दूसरा आश्रय हो ही नहीं सकता। प्राणिमात्रके आश्रय वे ही हैं। उनके स्मरणसे सबका कल्याण होगा।

१७१४—करुणामय श्रीहरि सबका भला करते हैं। जो उनकी शरणमे पहुँच जाता है, उसके पाप रहते ही नहीं। रूईके ढेरमें जैसे अग्नि पड़नेसे रूई भस्म हो जाती है, उसी प्रकार सारे पाप भस्म हो जाते हैं।

१७१५—बहुत ग्रन्थोंके मायाजालमें मत पड़ना। भगवान् केवल विश्वाससे ही प्राप्त हो सकते हैं। सम्पूर्ण जगत्के वैभवको तृण-समान समझना और निरन्तर भगवन्नाम-सङ्कीर्तनमें लगे रहना, यही वेद-शास्त्रोंका सार है।

१७१६—श्रीकृष्ण दयामय हैं। वे दीनोंपर अत्यन्त ही शीघ्र कृपा करते हैं। तुम उनका ही भजन करो, उन्हींकी शरणमें जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा।

१७१७—प्रेम छिपानेसे नहीं छिपता। प्रेमको विज्ञापनकी

आवश्यकता नहीं।

१७१८—जिसके मुखसे एक बार भी श्रीकृष्णका नाम निकल जाय, वही वैष्णव है। वैष्णवकी यह एक मोटी पहचान है।

१७१९—गृहस्थीके लिये तीन ही बातें मुख्य हैं—श्रद्धापूर्वक भगवान्‌की सेवा-पूजा करता रहे, मुखसे सदा श्रीहरिके मधुर नामोंका सङ्कीर्तन करता रहे और अपने द्वारपर जो आ जाय, उसकी यथाशक्ति सेवा करे तथा साधु-महात्माओंके चरणोंमें श्रद्धा रक्खे।

१७२०—सत्यसे बढ़कर संसारमें कोई अन्य धर्म नहीं है और मिथ्याभाषणसे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है, अतः ऐसी दशामें सत्यकी सदा अर्चना करो; उसे कभी मत छोड़ो।

१७२१—सत्यवादी मनुष्य यद्यपि आर्थिक दृष्टिसे दरिद्र है, किंतु वह मनुष्योंका वास्तविक राजा है।

१७२२—प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह जैसा दूसरेको उपदेश करता हैं, वैसा पहले अपनेको बना ले। जिसने अपने मन, इन्द्रियोंको वशमें किया, वह दूसरोंको भी वशमें कर सकता है।

१७२३—कर्म-पथमें प्रभुपर विश्वास कर बढ़ते जाओ। सर्वदा अपनी दृष्टिको उसके शब्दोंपर बद्ध रक्खो तब तुम्हें आशातीत सफलता प्राप्त होगी।

१७२४—अपने शत्रुको प्यार करो। जो तुम्हें शाप दें, उन्हें आशीर्वाद दो। जो तुमसे घृणा करें, उनके प्रति भलाई करो और उनके लिये भी प्रभुसे शुभ प्रार्थना करो, जो तुम्हारे साथ तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करते हों।

१७२५—अच्छे कर्मोंका सम्पादन करो। स्वप्नमय वातावरणमें लीन मत रहो। इस प्रकार करनेसे तुम जीवन, मरण एवं अनन्त विस्तृत

कालको एक महान् मधुर संगीतके रूपमें परिवर्तित कर दोगे।

१७२६—शिक्षा प्राप्त करते समय ऐसा ध्यान रखो कि मानो तुम्हें सर्वदाके लिये संसारमें जीवित रहना है, किंतु संसारमें अपनी आयुका ध्यान करते हुए यह सोचो कि मानो तुम्हें कल मृत्युका ग्रास बनना है।

१७२७—यह कभी मत सोचो कि परमात्मासे रहित तुम केवल अकेले हो। वह तुम्हारे साथ सर्वदा विचरण करता है तथा तुम्हारी भली-बुरी सभी क्रियाओंका द्रष्टा है।

१७२८—जो मनुष्य विपत्तिमें भी ईश्वरकृपाका अनुभव करता है, वह कभी मृत्युके अधीन नहीं होता।

१७२९—सज्जनोंको दूसरोंके दोषोंके भीतर भी धर्मका आभास दृष्टिगोचर होता है।

१७३०—जो मनुष्य सज्जनताके व्यवहारमें कुशल है, उसके लिये कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है।

१७३१—प्रिय क्या है ? करना और न कहना। अप्रिय क्या है ? कहना और न करना।

१७३२—पूर्ण महात्मा और सज्जनोंके संगका नाम ही सत्संग है। इसे आदमी निष्ठाके साथ करे तो वह लोहेसे सोना बन जाय।

१७३३—जो प्रज्वलित क्रोधरूपी मार्गच्युत रथको रोक सकता है, वही कुशल सारथी है। केवल हाथसे लगाम पकड़े रहनेमें कोई चतुराई नहीं।

१७३४—जो तपस्वी है, त्यागी है, भक्त है, जिसने आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया है, वही धर्मका सच्चा प्रवक्ता हो सकता है।

१७३५—मनकी तरङ्गोंको रोकनेमें बड़ा सुख है, इनके बिना रोके मनुष्य ऐसे बह जाता है, जैसे हवाके झोंकेमें बिना पतवारकी नाव।

१७३६—संसारके सुख क्षणभङ्गुर हैं, किसी भी ऐसे सुखीका उदाहरण नहीं मिल सकता जो मृत्युको न प्राप्त हुआ हो।

१७३७—मनुष्य-शरीरकी शोभा विषयभोग नही है, यह सम्पदा तप, ज्ञान, भक्ति और धर्मके लिये मिली है।

१७३८—बालकको जैसे रमणसुख नहीं समझाया जा सकता, वैसे ही मायामुग्ध, विषयासक्त, संसारी जीवको ब्रह्मानन्द नहीं समझाया जा सकता।

१७३९—जिस हृदयमें प्रभुप्रेमको स्थान नहीं, वह मसानके तुल्य है अथवा श्वास लेनेवाली लोहारकी प्राणरहित धौकनीके समान है।

१७४०—हर्षके साथ शोक और भय इस प्रकार लगे हैं जिस प्रकार प्रकाशके सङ्ग छाया। सच्चा सुखी वही है, जिसकी दृष्टिमें हर्ष-शोक दोनों समान हैं।

१७४१—जो समय भगवान्‌के स्मरण-चिन्तनमें लगता है, वही सार्थक है।

१७४२—विषयोंमें काकविष्ठाके सदृश असह्य बुद्धि होनी चाहिये।

१७४३—दूसरोंके परमाणुके समान गुणोंको पर्वतके समान बढ़ाकर हृदयमें रखनेवाले संत इस दुनियामें कितने हैं।

१७४४—शत्रुसे भी प्रेम रक्खो। दान अथवा शुभ कर्ममें फलकी कामना न करो, तभी प्रभु प्रसन्न होंगे।

१७४५—मेरे माथेपर पैर रखकर आओ न मेरे प्राणेश्वर मेरे हृदयमन्दिरमें। आओ, तुम तेरी अन्तरकी सेजपर पौढ़ो और मैं तुम्हारे प्यारे-प्यारे चरण चूमूँ।

१७४६—हठका सामना हितसे करो तो सफलता प्राप्त होगी। तलवारकी तीक्ष्णधार मुलायम रेशमको नहीं काट सकती।

१७४७—सांसारिक क्रियाओंका सम्पादन करते समय दो बातें सदा स्मरण रक्खो—प्रथम ईश्वर और द्वितीय मृत्यु।

१७४८—जीवनमें निम्नलिखित तीन बातोंका सदा स्मरण रक्खो—(१) क्रोधमें क्षमा, (२) अभावमें उदारता तथा (३) अधिकारमें सहिष्णुता।

१७४९—जो काम, मद और क्रोधसे छूटकर ईश्वरके चरणोंमें लगे हुए हैं, वे सारे संसारको ईश्वरमय देखते हैं, इसलिये वे किससे क्रोध करें।

१७५०—जिसने मनरूपी मतवाले हाथीको वशमें कर लिया, वही सर्वश्रेष्ठ पुरुष है।

१७५१—जैसे अग्नि जाने या बिना जाने लकड़ीको जला देती है, वैसे ही जाने या बिना जाने लिया हुआ भगवान् हरिका नाम मनुष्यके पापको भस्म कर देता है।

१७५२—जो पहलेके पापोंका विचार न करके बराबर पाप ही करता रहता है, वह खोटी बुद्धिवाला मनुष्य यमदूतोंद्वारा नरकमें घसीटा जाता है।

१७५३—उस देवताका मन्दिर तेरे दिलके अंदर ही है। उसीकी तू सेवा कर, उसीकी पूजा कर। क्या तेरा हरेक श्वास इसका साक्षी नहीं है !

१७५४—जिनका जीवन-आधार ईश्वर नहीं, वे मरे है और जिनका जीवनाधार ईश्वर है, वे अमर हैं।

१७५५—उस दुष्ट और नीचके साथ भी, जो तुम्हें दुःख देता है,

तुम भलाई करो, क्योंकि सच्चा आनन्द दूसरोंको सुख देनेमें ही है।

१७५६—जिसने अहंकार, क्रोध, कपट और लालचको जीत लिया, वही सच्चा शूरवीर है।

१७५७—सच्चे धर्मात्माकी बोली धीमी होती है, क्योंकि अच्छा पुरुष कठिनताको जानता है, वह अवश्य ही सम्हलकर बोलेगा।

१७५८—संसार क्षणभङ्गुर है, एक पलका भी भरोसा नहीं, इसलिये जो भलाई करनी हो, तुरंत कर डालो।

१७५९—मायामरीचिकाके समान भासनेवाले इस जगत्‌में केवल भगवान्‌का भजन ही सार है।

१७६०—घमण्ड या अंहकार मूर्खताकी निशानी है। जिस जगह शरीरमें खूनकी कमी होती है वहाँ वायु भर जानेसे शरीर फूल जाता है, ऐसे ही जहाँ बुद्धिका घाटा है, वहाँ अहंकार भर जानेसे मन फूल उठता है।

१७६१—मर्यादासे चलो। कभी सीमाके बाहर मत जाओ। अपनी हानि करनेवालेको जहाँतक बन पड़े, क्षमा करो।

१७६२—चार प्रकारके मनुष्य मालिकको विशेष प्रिय है—(१) आसक्तिरहित विद्वान्, (२) तत्त्वज्ञानी महात्मा, (३) नम्र धनी और (४) मालिककी महिमा जाननेवाला त्यागी।

१७६३—मन पाँच प्रकारके होते हैं—(१) मुर्दा मन जैसे नास्तिकोंका, (२) रोगी मन जैसे पापियोंका, (३) अचेत मन जैसे पेटभरोंका, (४) उल्टा मन जैसे ब्याजकी कमाई खानेवालोंका और (५) स्वस्थ मन जैसे संतोंका।

१७६४—शुभ कर्म करनेका स्वभाव ऐसा धन है जिसे न शत्रु छीन सकता है और न चोर चुरा सकता है।

१७६५—क्रोध, दुष्कर्म, कृपणता तथा असत्यको जीतनेके शस्त्र क्रमसे क्षमा, सुकर्म, उदारता और सत्य हैं।

१७६६—जो ज्ञानकी बड़ी-बड़ी बातें बघारते हैं, पर जिनके हृदयमें दया नहीं है, वे जरूर नरकमें जायँगे।

१७६७—वे मनुष्य धन्य हैं, जो दयाशील है, क्योंकि परम पिताकी दयाके वे ही भागी हैं।

१७६८—शूरवीर वही है जिसका हृदय हरिसे भरपूर है।

१७६९—जो दूसरेके अवगुणकी चर्चा करता है, वह अपना अवगुण प्रकट करता है।

१७७०—मनुष्यको चाहिये कि अपना मित्र आप ही बने; बाहरी मित्रकी खोजमें न भटके।

१७७१—जो सच्चे हृदयके साधु होते हैं, वे मनको पीसकर चाले हुए मैदेकी भाँति कर देते हैं, जिनमें मान या गर्वकी किरकिरी नहीं रह जाती।

१७७२—विद्या व्यर्थ गयी, व्रत बुरे सिद्ध हुए और बहुज्ञता घातक हुई यदि भगवान् श्रीकृष्णके सुभग-शीतल त्रिविध ज्वालाहरण चरणोंमें प्रीति न हुई।

१७७३—जिस बातसे समाजको सुख पहुँचे, उससे यदि तुम्हें कुछ दुःख भी पहुँचे तो नाराज मत हो।

१७७४—जो मूर्ख अपनी मूर्खताको जानता है, वह धीरे-धीरे सीख सकता है, परंतु जो मूर्ख अपनेको बुद्धिमान् समझता है उसका रोग असाध्य है।

१७७५—जो बाहरसे बहुत सुन्दर है पर जिसका मन मैला है; उससे तो कौआ अच्छा है जो बाहर-भीतर एक रंग है।

१७७६—संसारमें तीन बातें बड़ी उपकार करनेवाली हैं, परंतु धारण करनेमें कठिन हैं—(१) निर्धनतामें उदारता, (२) एकान्तमें इन्द्रियनिग्रह और (३) भयमें सत्य।

१७७७—अच्छे गुणोंको सीखनेमें तुम्हारी यह धारणा होनी चाहिये कि तुम्हारा अभिप्राय अपने सुधारका है, न कि लोकमें बड़ाई पानेका।

१७७८—जिसने इन्द्रियोंके वशमें रहकर केवल कुटुम्बके भरण-पोषणमें ही अपना जीवन बिता दिया है, वह अन्तमें प्राप्त होनेवाली महान् पीड़ासे नष्टबुद्धि होकर मृत्युको प्राप्त होता है।

१७७९—प्रभु-विरहकी अग्निमें जलनेवालेके आँसू इस प्रकार निकलते हैं, जैसे जलती हुई गीली लकड़ीके दूसरी ओर फेन निकलता है।

१७८०—इस तनके अंदर ही तो वह सिंहासन है जिसपर हमारा शाहोंका शाह आसीन है। जहानमें जितने भी जीव है वहींसे वह सबका मुजरा लिया करता है।

१७८१—जो पासमें धन रहनेपर भी अपने भाइयोंकी दीन अवस्थापर तरस नहीं खाता और सहायता नहीं करता, उसके हृदयमें प्रभुका प्रेम कैसे हो सकता है ?

१७८२— जिसकी हार हुई है, वह सदा असंतुष्ट रहता है। सुखी वही है, जो हार-जीतकी परवाह नहीं करता।

१७८३—साधक यदि ईश्वरमें ही शान्ति प्राप्त न कर सका तो समझना चाहिये कि उसमें सच्चा वैराग्य नहीं है।

१७८४—मनुष्योंसे मैत्री और पशुओंके प्रति दया रक्खो। यदि उनमें विष भी हो तो भी उनकी उत्पत्ति तो एक ही दयालुताके अमृतभण्डारसे किसी प्रयोजनको लेकर ही हुई है। अतएव उन्हें सुख

पहुँचानेका यत्न करो।

१७८५—प्रत्येक मनुष्य अपने मतको सच्चा और अपने बच्चेको सुन्दर समझता है, इससे सिद्ध है कि सबके मतों और सबके बच्चोंका समान आदर करना और समान प्रेम रखना अपना कर्तव्य है।

१७८६—जो कोई तुम्हें कोसे, तुम उसे कभी मत कोसो। स्मरण रक्खो कि क्रोधीके शापसे आशीषका फल मिलता है।

१७८७— जिसने कभी दुःख नहीं उठाया, वह सबसे बड़ा दुखिया है और जिसने कभी पीर नहीं सही, उसपर दैव बेपीर ही है।

१७८८—संन्यासीको सदा ज्ञाननिष्ठ रहकर आत्माके बन्धन और मोक्षका विचार करना चाहिये। इन्द्रियोंके चञ्चल होनेमें ही आत्माका बन्धन है और इन्द्रियोंके वशमें होनेसे आत्माका मोक्ष है।

१७८९—उमड़ती हुई जवानीमें प्रमोद करते हुए जवानको, खेलते हुए बालकको, रोग-शोकसे पीड़ित वृद्धको और माताके उदरमें रहनेवाले गर्भको काल एक-सा ही ग्रस लेता है, यह जगत् ऐसा ही है।

१७९०—प्रेमकी एक ही चिनगारी हृदयमें पड़ जाय तो जीव निहाल हो जाय। धन्य है वह हृदय जहाँ ऐसी आग लगी हुई है।

१७९१—हमारा हरि तो केवल भावका भूखा है, न उसका रागसे मतलब, न कालसे।

१७९२—पानी ऊपर नहीं ठहरता, वह नीचे ही रहता है, जो नीचा (नम्र) होता है वही भरपेट पानी पी सकता है, ऊँचा तो प्यासा ही मरता है।

१७९३—दूसरोंका भला करनेवाला ही भला होता है।

१७९४—प्रीतिकी लता तो अकेले ही चढ़ती है। किसी दूसरी बेलिको अपने पास फैलने नहीं देती।

१७९५—बदला लेनेका ख्याल छोड़कर क्षमा करना, अन्धकारसे प्रकाशमें आना और नरककी जगह सदेह ही स्वर्गका सुख भोगना है।

१७९६—अपने तो हारना भला है, जगत्‌को जीतने दो। जो हारता है वह हरिसे मिलता है और जो जीतता है वह यमके द्वारपर जाता है।

१७९७—गाँठमें जो द्रव्य नहीं बाँधता, कामवासनामें जिसका प्रेम नहीं, जिसके हृदयमें केवल हरिका वास है, वही साधु है, वही सिद्ध है, वही सबमें सिरमौर है।

१७९८—रामकी शरण हो जाओ, यही भवसागरसे पार उतरनेके लिये जहाज है, इसीको छोड़कर संसारसे उद्धार पानेका और कोई उपाय नहीं है।

१७९९—जो ईश्वरके रंगमें रँगा हुआ है वही चतुर है और वही जगत्‌में सब तरहसे भला है।

१८००—किसीको दुःख न देना तथा कोई तुम्हारे विरुद्ध बर्ताव करे, तब भी उसका बदला लेनेकी इच्छा न करके इस बातको गुप्त रखना यही सहनशीलता है।

१८०१—जो बन्धनमें हेतु नही होता वही कर्म है और जो मुक्तिमें हेतु है वही विद्या है। इसके सिवा दूसरे कर्म परिश्रममात्र तथा दूसरी विद्याएँ शिल्पनिपुणतामात्र हैं।

१८०२—मुझे अब यह नैहरका रहना अच्छा नहीं लगता। मेरे साईंकी नगरी कितनी सुन्दर है, जहाँ जाकर कोई लौटता नहीं।

१८०३—जगत्‌में जितने प्रकारके भाव या धाराएँ हैं, उन सबका जो सूक्ष्म सार निष्कर्ष है, उसीका नाम ईश्वर है।

१८०४—जो निराधार और नीच-से-नीच मनुष्यकी सेवा करता है वह प्रभुकी सेवा करता है।

१८०५—बुद्धिमान् मनुष्य और किसी बातमें जल्दी नहीं करता, वरं कभी-कभी चुप रह जाता है, परंतु जब धर्मका काम आ पड़ता है, तब वह उसे तुरंत कर डालता है।

१८०६—बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि सदा बड़ोंका सङ्ग करे, इससे अनेक सुख मिलते हैं, जैसे जो पक्षी बड़े वृक्षके आश्रित रहते हैं, उन्हें खानेको फल भी खूब मिलते हैं और वे छायासे भी सदा सुखी रहते हैं।

१८०७—संशयात्मा, चञ्चलचित्त, अविश्वासी, डरपोक, चिन्तातुर और इन्द्रियोंके गुलामको कभी स्वप्नमें भी सुख नहीं मिल सकता।

१८०८—भक्त वह है जो अपना मन उस पृथ्वीके समान बना ले, जिसमें लोग विष्ठा डालते है, पर वह अन्न देती है।

१८०९—मनुष्यको चाहिये कि वह अपना काम देखे, दूसरेके काममें नुक्ताचीनी न करे।

१८१०—सुखी वही है, जो भगवान्‌को प्यार करता है, क्योंकि भगवान् सर्वदा उसके साथ रहते हैं।

१८११—जो मनुष्य आत्मनिरीक्षण न करके अपनेको सदा निर्दोष मानता है, अपने दोषोंकी ओर देखता ही नहीं, वह अहंकारी ही बना रह जाता है।

१८१२—सांसारिक कामनाओंको छोड़ देनेपर ही तुम शोक और दुःखसे छूट सकोगे तथा तुम्हें तभी सच्चा सुख और शान्ति मिलेगी।

१८१३—जो बाहरसे खूब साफ है और अंदरसे मैला है, वह नरकके दरवाजेकी चाभी हाथमें लिये हुए है।

१८१४—मानव-प्रेमके पीछे बराबर ही एक तीखा स्वाद लगा

रहता है। एकमात्र भगवत्प्रेम ही ऐसी चीज है जो कभी निराश नहीं करती।

१८१५—जो किसीको दुःखमें देखकर उसपर दया नहीं करता, वह मालिकके कोपका पात्र होता है।

१८१६—जैसे हम द्वेषसे जगत्को नरक-सदृश बना देते है। ऐसे ही प्रेमसे उसे स्वर्गके समान भी बना सकते हैं।

१८१७—विषयीको संसार सुन्दर मालूम, होता है, पर वही साधुको भयानक लगता है।

१८१८—जैसे वृक्षकी जड़को सींचनेसे उसकी सभी शाखाएँ और पत्ते आप-से-आप तृप्त हो जाते हैं, वैसे ही एक परमात्माकी भक्तिसे सारे देवी-देवता आप ही प्रसन्न हो जाते हैं।

१८१९—मालिकपर भरोसा रक्खो, परंतु ऊँटके पैर बाँधकर मत रक्खो। यानी उद्योग मत छोड़ो।

१८२०—दीर्घसूत्रताका स्वभाव समयकी चोरी है। यदि मनुष्य आजका काम कलपर न टाले तो वह बहुत-सी बुराइयोंसे बच सकता है।

१८२१—सदा याद रक्खो कि कोई भी मनुष्य तुम्हारा भला या बुरा नहीं कर सकता, त्रिभुवनपति ईश्वर ही सब कुछ करते हैं, उन्हींपर विश्वास रक्खो।

१८२२—जगत्से,जगत्की किसी भी घटनासे भगवान्को अलग न करनेके कारण ही जगत्की कोई भी घटना ज्ञानीके चित्तको विचलित नहीं कर सकती। भगवान्को अलग कर देनेसे ही जगत्का प्रत्येक व्यापार महान् दुःखरूप बन जाता है।

१८२३—जो प्रत्येक काममें मालिककी प्रेरणा समझता है—वह

निष्कामी और सच्चा भक्त है।

१८२४—बुरे आचरणवाले लंबे जीवनसे शुभ आचारका थोड़ा जीवन हजार दरजे अच्छा है।

१८२५—जैसे मरे हुए मनुष्यसे कोई ईर्ष्या नहीं करता, ऐसे ही जीते हुएसे भी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उस मनुष्यको और ईर्ष्या करनेवालेको एक-सा ही मरना है।

१८२६—शत्रु-मित्र और पुत्र-बन्धुओंमें विरोध या मेलके लिये चेष्टा मत कर। यदि शीघ्र ही भगवान्‌की प्राप्ति चाहता है तो सबमें सर्वत्र समचित्तवाला हो जा।

१८२७—दान और सत्कर्म करो, पर फलकी कामनासे नहीं। इससे प्रभु तुमपर प्रसन्न होगा।

१८२८—दीन बनते रहो, दुःख भगवान् ही भेजते हैं, ऐसा मानकर दुःखका स्वागत करो, तिरस्कारमें आनन्द मानो, सुख-आराम और रक्षाका आधार एक भगवान्‌को ही बना लो।

१८२९—सत्य-प्रेमसे जिसका अन्तःकरण भरा हुआ हो, ऐसा मनुष्य किसी कलामें निपुण न होनेपर भी बहुत बड़ी देश-सेवा कर सकता है।

१८३०—हे चित्त! अब शान्त हो, इन्द्रियोंके सुखके लिये विषयोंकी खोजमें कठिन परिश्रम मत कर। आभ्यन्तरिक शान्तिकी चेष्टा कर, जिससे दुःखोंका नाश होकर कल्याण हो, तरङ्गके समान चञ्चल चालको छोड़ दे; संसारी पदार्थोंमें सुख मत मान, ये सभी नाशवान् और असार हैं। बस तू अपने आत्मामें ही सुख मान।

१८३१—शान्त स्वभाव रहो और तुमपर कोई दोष लगावे तब भी मनको मत बिगाड़ो।

१८३२—जिसने अपना सारा हृदय प्रभुको अर्पण कर दिया है और अपने शरीरको लोक-सेवामें लगा रक्खा है, वही सच्चा त्यागी, दाता और ज्ञानी है।

१८३३—चार प्रकारके मनुष्य होते हैं—(१) मक्खीचूस-न आप खाय न दूसरोंको दे, (२) कंजूस-आप तो खाय, पर दूसरेको न दे, (३) उदार-आप भी खाय और दूसरेको भी दे और (४) दाता-आप न खाय और दूसरेको दे। यदि सब लोग दाता नहीं बन सकते तो उदार तो बनना ही चाहिये।

१८३४—जो विपत्तिसे डरते हैं, वह उन्हींपर ज्यादा आती है; जो मनको दृढ़ रखते हैं और आनेवाले हर-एक सुख-दुःखको भगवान्‌का दान समझकर प्रसन्नतासे रहते है, उनके लिये विपत्ति कोई चीज नहीं।

१८३५—अभी सोकर क्या करते हो। उठो, जागो और परमात्माको याद करो। एक दिन तो लंबे पैर पसारकर सभीको सोना है।

१८३६—अज्ञानका नाश हो जानेपर राग-द्वेष, चिन्ता, शोक-भय आदिका अत्यन्ताभाव हो जाता है और अज्ञानका नाश होता है—परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे।

१८३७—जिनके काम, क्रोध, मद, लोभ आदि छः विकार नहीं होते, जो कुमार्गको जानते ही नहीं और जो सदा ब्रह्ममें लीन हैं वे ही साधु हैं।

१८३८—जो पुरुष मनरूपी तीर्थके ज्ञानरूपी सरोवरमें ईश्वरके ध्यानरूपी जलसे स्नान करके राग-द्वेषरूपी मलको धो डालता है, वह संसारसागरको बिना प्रयास तर जाता है।

१८३९—इन्द्रियोंको रोकने, राग-द्वेषका नाश करने और अहिंसा व्रतके पालन करनेसे मनुष्य मोक्ष-पदकी प्राप्तिके योग्य होता है।

१८४०—जो विषयोंका प्रेमी है, वही बँधा हुआ है। विषयोंका त्याग ही मुक्ति है। यह शरीर ही घोर नरक है और तृष्णाका नाश ही सच्चा स्वर्ग है।

१८४१—सच्चा दार्शनिक सदा संयमसे रहता है और शारीरिक सुखोंसे दूर भागता है, वह कदापि अपनेको विषयसुखोंमें मग्न नहीं होने देता।

१८४२—सदा प्रसन्न रहो। सब दुखी जीवोंको सुखी करते रहोगे तो तुम्हारी प्रसन्नता बनी रहेगी।

१८४३—हमें अपने अमूल्य समयको अमूल्यकार्यमें ही लगाना चाहिये। भगवान्‌की स्मृति ही अमूल्य कार्य है।

१८४४—सभी वैरियोंके साथ भलाई और नम्रताका बर्ताव करनेसे सुख होता है, परंतु मन-वैरीके साथ नम्रता करनेसे दुःख उत्पन्न होता है। अतएव भयानक वैरी मनको मारो।

१८४५—अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी, शान्तिघन परमात्मा-का ध्यान करो। जो उस ब्रह्मानन्दकी जरा-सी भी झाँकी देख पाते हैं; उनकी दृष्टिमें संसारके राजाओंका आनन्द तुच्छ हो जाता है।

१८४६—महापुरुष, उनका मत और उनका जीवन साधकोंके लिये दर्पण है, पथप्रदर्शक है, मार्ग है और द्वार है, जिससे वे नित्य जीवनक्षेत्रमें प्रवेश कर सकते है।

१८४७—जाग्रत् मन उसीको कहते हैं, जिसमें ईश्वरको छोड़कर दूसरे किसी विषयकी इच्छा या दूसरा कोई उद्देश्य न हो. जिसका मन परम प्रभु परमात्माकी सेवामें डूबा रह सकता है, उसके लिये दूसरे मित्रकी जरूरत ही क्या है।

१८४८—विपत्तियोंके समूह बाढ़की लहरोंके समान आया करते

हैं, धीर पुरुष उनको चट्टानकी तरह सँभालता रहे तो वह धीरे-धीरे आप ही चले जाते हैं।

१८४९—सत्य और दयायुक्त धर्म तथा तपोयुक्त विद्या भी भगवान्‌की भक्तिसे रहित मनुष्यके मनको सम्पूर्णरूपसे पवित्र नहीं कर सकते।

१८५०—जो मनुष्य दूसरेके ऐश्वर्यको नहीं सह सकता, जिसकी बुद्धि कलुषित है, जो परधन हरण करता है, जो प्राणियोंकी हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो कठोर वचन कहता है और जिसका मन निर्मल नहीं है, उसके हृदयमें भगवान् निवास नहीं करते।

१८५१—चौदह बातोंका त्याग करना चाहिये—हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्य, स्वच्छन्दता, द्वेष, भय, मोह, मद्यपान, रात्रिभ्रमण, व्यसन, जूआ, कुसंगति और आलस्य।

१८५२—सब धर्मोंका मूल दया है, परंतु दयाके पूर्ण विकासके लिये क्षमा, नम्रता, शीतलता, पवित्रता, संयम, संतोष, सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन दस धर्मोंका सेवन करना चाहिये।

१८५३—यदि मैं अपना सारा धन कंगालोंको खिला दूँ तथा अपनी देह भी उन्हें जलानेके लिये दे दूँ, पर प्रेम न रखूँ तो कोई लाभ नहीं, प्रेममें ही धैर्य और कृपा है। प्रेम डाह नहीं करता, प्रेम अपनी न तो बड़ाई करता है और न फूलता ही है।

१८५४—किसी भी सिद्धान्तको मानकर चलिये, परिणाम एक ही होगा; क्योंकि श्रीभगवान् एक ही हैं।

१८५५—विचारशील और ब्रह्मज्ञानीको संसार नहीं लुभा सकता, मछलीके उछलनेसे समुद्र नहीं उमड़ा करता।

१८५६—ईश्वर-प्रेमका परिचय वाणीसे नहीं मिलता, कार्य

चाहिये। केवल स्तुति-प्रार्थनासे नहीं, परंतु अनेक दुःख सहकर सब प्रकारके स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर ही इस प्रेमका परिचय देना पड़ता है।

१८५७—अंदरके रोगकी पाँच दवाइयाँ—(१) सत्संग, (२) धर्मशास्त्रका अध्ययन, (३) अल्प आहार-विहार, (४) सुबह-शामकी उपासना और (५) जो कुछ करना हो सो एकाग्रताके साथ सारी शक्ति लगाकर करनेकी पद्धति।

१८५८—अपने गुप्त-से-गुप्त विचारोंको भी पवित्र रक्खो; क्योंकि उनमें भी अद्भुत शक्ति भरी है। तुम्हारे मुखसे निकलते हुए शब्दोंमें उन विचारोंके भावका पता लग जाता है और तुम्हारे भविष्यके निर्माणकर्ता भी वे गुप्त विचार ही होते हैं।

१८५९—१—माता-पिताकी आज्ञा पूर्णरूपसे मानो। २—सब सम्बन्धियोंसे प्रेम रक्खो। ३—अपने मुखको ज्ञान-दर्पणमें देखो, यदि सुन्दर है तो ऐसा काम मत करो जिससे उसपर धब्बा लगे और यदि कुरूप है तो सत्य, सेवा और परोपकार करके सुन्दर बनाओ। ४—जो तुम्हारे साथ बुराई करे उसको तो बालूपर लिखो और जो भलाई करें उसको पत्थरपर।

१८६०—जो पुरुष ईश्वर-तत्त्वसे अनभिज्ञ लोगोंको अमृतरूप ज्ञानका प्रकाश दिखलाकर सन्मार्गपर ले आता है उस दयालु दीनबन्धु पुरुषपर सभी देवगण कृपा करते हैं।

१८६१—अन्यायकी शिक्षा देनेवाले मनुष्यके सामने वह अन्याय-की शिक्षा ही एक दिन भीषण मृत्युके रूपमें आती है और तब उसे अपनी करनीपर पछताना पड़ता है।

१८६२—प्राणघात, चोरी और व्यभिचार—ये तीन शारीरिक पाप

हैं; असत्य, निन्दा, कटुभाषण और व्यर्थभाषण—ये चार वाणीके पाप है और परधनकी इच्छा, दूसरेके अनिष्टकी इच्छा तथा सत्य, अहिंसा, दया, दान आदिमें अश्रद्धा—ये तीन मानसिक पाप हैं।

१८६३—भोग और ऐश्वर्यको अनित्य समझते हुए विवेक-वैराग्यपूर्वक वशमें किये हुए मन और इन्द्रियोंको शरीर-निर्वाहके अतिरिक्त अपने-अपने विषयोंसे हटानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

१८६४—जो दयालु हैं, उन्हींपर भगवान्‌की दया होगी; जिसका मन शुद्ध है, उन्हींको भगवान्‌के दर्शन होंगे; जो धर्मके लिये सताये जाते हैं, स्वर्गका राज्य उन्हींका होगा और जो धर्मके पिपासु हैं, उन्हींकी तृप्ति होगी।

१८६५—जब तुम सांसारिक कामनाओंको छोड़ दोगे, तभी शोक और दुःखसे छूटकर सच्चे सुख और शान्तिको पा सकोगे।

१८६६—हे जीव ! यदि तू भगवान्‌के इच्छानुसार चलना चाहता है तो उसकी शरणके सिवा और कोई उपाय नहीं है। जो मनुष्य अपने इच्छानुसार अपनेको चलाना चाहता है, वह स्वयं अपनेको धोखा देता है।

१८६७—जिसमें जितना प्रेम है, वह उतना ही ईश्वरके समीप पहुँचा हुआ है—उतने अंशमें वह प्रभुमय बन गया है, क्योंकि प्रभु स्वयं अपार प्रेममय हैं।

१८६८—जिसके हृदयमें प्रेम पूर्ण होता है, प्रेमके देवता स्वयं ईश्वर ही उसका योगक्षेम चलाया करते हैं।

१८६९—ममताका नाश ही दुःखनाशका उपाय है। ममता होती है अज्ञानसे। अतः ज्ञानके अथवा भक्तिके द्वारा अज्ञानको नष्ट करना उचित है।

१८७०—जिसके हृदयमें दया और धर्म बसते हैं, जो अमृत-वाणी बोलते हैं और जिनके नेत्र नम्रतावश नीचे रहते हैं, असलमें वे ही ऊँचे हैं।

१८७१—हे मेरी आत्माके प्रियतम स्वामी ! मैं तुमको ही चाहता हूँ, मुझे और कोई भी वस्तु प्यारी न लगने दो, जो वस्तुएँ मुझे तुमसे दूर हटाती हों, वे मुझे जहर-सी लगने लगें। एकमात्र तुम्हारी इच्छा ही मेरे लिये मधुर हो—तुम्हारी इच्छा ही मेरी इच्छा बन जाय।

१८७२—दुर्गुण एवं दुराचारका त्याग और सद्‌गुण एवं सदाचारका सेवन शुद्ध सात्त्विक जीवनका स्वरूप है।

१८७३—भगवत्प्राप्तिके लिये ममता और अहंकारका त्याग एवं भगवान्‌का सतत् स्मरण आवश्यक है।

१८७४—एक भंगी भी अपने झाड़ने-बुहारनेके कार्यको भगवान्‌का कार्य समझकर उनकी प्रसन्नताके लिये आवश्यक समझ कर करता है, तो उसके कर्मको भगवान् सादर ग्रहण करते हैं और उसे अपनी सेवा समझते हैं। वह भगवान्‌का परमप्रिय होता है।

१८७५—परमेश्वरकी इच्छा यह है कि तुम पवित्र बनो, व्यभिचारसे बचे रहो, तुममेंसे हर-एक पवित्रता और आदरके साथ भगवान्‌की प्रार्थना करना जाने, तुम सब आपसमें प्रेम करो, क्योंकि परमेश्वर प्रेमकी ही शिक्षा देता है।

१८७६—गृहस्थको पाँच अशुभ प्रवृत्तियोंसे बचना चाहिये—(१) हिंसा, (२) चोरी, (३) व्यभिचार, (४) असत्य और (५) व्यसन।

१८७७—शम, दम, व्रत और नियमपरायण विश्वहितैषी मुमुक्षु मनुष्य निष्कपट भावसे जो कुछ भी क्रिया करता है; उसीसे उसके गुण

बढ़ते हैं।

१८७८—दिनभरकी बुरी भावनाओं और बुरे कर्मोंसे बचकर रहना रात-भरके भजनसे बढ़कर है।

१८७९—बिरले ही मनुष्य अपनी इच्छा और मनके विरुद्ध बर्ताव कर सकते हैं। ऐसा उपदेश तो बहुत लोग दिया करते हैं, परंतु इसका पालन बहुत थोड़े कर सकते है।

१८८०—संसार क्षण-क्षणमें नाश हो रहा है, इस मिथ्या नामरूपके ढेरको देखकर भूलना नहीं चाहिये।

१८८१—वह वीर नहीं है जिसने शरीरको चकनाचूर कर डाला, बलिहारी है उस वीरकी जो मनको जीतकर खड़ा है।

१८८२—जिन्होंने वासनाओंको पददलित किया है, वे ही मुक्त हुए हैं, जिन्होंने ईर्ष्याका त्याग किया है, उन्हींको प्रेमकी प्राप्ति हुई है और जिन्होंने धैर्य धारण किया है वे ही शुभ परिणामको प्राप्त कर सकते है।

१८८३—प्रेमभक्तिमें गद्‌गद होकर एकान्तहृदयसे जिस तरह परमात्माकी प्रार्थना करते हो, प्रार्थनाके बाद उसी तरह कठिन-से-कठिन कर्तव्यके पालनमें लग जाओ और उसे पूरा करो, नहीं तो तुम्हारी पूजा व्यर्थ है।

१८८४—सर्वत्र भगवद्दृष्टि ही दिव्य दृष्टि है, जो भगवान्‌की कृपासे ही प्राप्त होती है।

१८८५—'गुरुजनोंकी सेवा, भक्ति, सब वस्तुओंका भगवान्‌के प्रति समर्पण, साधु-भक्तोंका सङ्ग, ईश्वरकी आराधना, भगवान्‌की कथामें श्रद्धा, भगवान्‌के गुण-कर्मोंका कीर्तन, भगवान्‌के चरण-कमलका ध्यान, भगवान्‌की मूर्तियोंके दर्शन और उनका पूजन एवं भगवान् हरि सब प्राणियोंमें स्थित हैं' ऐसा जानकर सब प्राणियोंमें समदृष्टि रखनेसे

भगवान्‌में प्रीति होती है।

१८८६—सावधान ! लोगोंको दिखानेके लिये धर्मका आचरण न करो। यदि ऐसा करोगे तो भगवान्‌से तुम कुछ भी फल नहीं पाओगे।

१८८७—पापी मनुष्य तभीतक सुख भोगता है, जबतक कि उसका पाप पक नहीं जाता। पापके परिपक्व होते ही उसको दुःखोंका शिकार बनना पड़ता है।

१८८८—विषय-सुखोंके त्यागद्वारा जो भय और राग-द्वेषसे छूट गया है वही त्यागी पुरुष संयमी कहलाता है।

१८८९—जो हरि-जैसे हीरेको छोड़कर दूसरेकी आशा करते हैं, वे मनुष्य यमलोकमें ही जायेंगे।

१८९०—सम्पत्तिकी ओर न ताककर सारी सम्पत्तिके स्वामी परमात्माकी ओर दृष्टि रखनेका नाम ही कृतज्ञता है।

१८९१—दीन बना रह, दुःखोंके प्रेरक भगवान् ही हैं ऐसा समझकर दुःखोंसे भेंट कर, तिरस्कारमें आनन्द मान, सुख-आराम और रक्षाके लिये भगवान्‌पर ही निर्भर कर।

१८९२—जो मेरे परमपिता परमात्माकी इच्छाके अनुसार जीवन बिता रहा है, वही मेरा भाई है, वही मेरी बहिन और वही मेरी माता है।

१८९३—वाणीसे स्तुति, मनसे स्मरण, सिरसे प्रणाम और हृदयसे भजन करते हुए प्रेमाश्रुनेत्र भक्तजन अपनी समस्त आयु श्रीहरिके अर्पण कर देते हैं।

१८९४—जगत्‌में दो ही परमानन्दमें रहते हैं—(१) अबोध शिशु और (२) भगवत्-प्राप्त गुणातीत मुक्त पुरुष।

१८९५—जिस परमात्मासे सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं और जिसमें सब लीन हो जाते हैं तथा जो सब प्राणियोंका पालन करता है, उस वेद-

प्रतिपादित ज्ञेय ब्रह्मको जो नहीं जानते वे बार-बार जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं।

१८९६—जबतक धन पैदा करनेकी ताकत रहती है, तभीतक घरके लोग प्रसन्न रहते हैं। जब बुढ़ापेमें शरीर जर्जर हो जाता है, तब कोई बात भी नहीं पूछता।

१८९७—उन्नतिके सात साधन हैं—श्रद्धालु होना, पापकर्मसे लजाना, लोकापवादसे डरना, विद्वान् होना, सत्कर्म करनेमें उत्साह रखना, स्मृति जाग्रत् रखना और प्रज्ञावान् बनना।

१८९८—इस संसारमे प्राणियोंके जन्मकी इतनी ही सफलता है कि वे अपने प्राण धन, बुद्धि और वाणीके द्वारा निरन्तर ईश्वरबुद्धिसे दूसरोंका कल्याण करते रहें।

१८९९—संसारसे अलग रहना ही उत्तम है, यहाँके सम्बन्धोंकी जड़में दुःख और कष्ट भरा है। जिसने अपना जीवन चुपचाप बिता दिया, सच तो यह है कि उसीका जीवन उत्तम बीता।

१९००—जबतक मनुष्य अपने आत्माको नहीं पहचानता—यह नहीं जानता कि मैं वास्तवमें क्या हूँ, कौन हूँ और संसारमें किस लिये आया हूँ, तबतक उसका सारी दुनियापर विजय प्राप्त कर लेना भी व्यर्थ ही है।

१९०१—आनन्द और अंदरकी शान्ति प्रभुमय जीवनके फल हैं, परंतु जो जीव हृदयसे भगवान्के शरण नहीं होता, उसको इनकी प्राप्ति नहीं होती।

१९०२—जिसके मनमें कभी क्रोध नही होता और जिसके हृदयमें रात-दिन राम बसते हैं, वह भक्त भगवान्के समान ही है।

१९०३—प्राणिमात्रको न सताना ही उत्तम दान है, कामनाका त्याग

ही उत्तम तप है, वासनाओंको जीतनेमें ही वीरता है और सत्य ही समदर्शन है।

१९०४—देवता, अतिथि, आश्रित, पितृगण और अपने-आप—इन पाँचोंको जो कुछ भी नहीं देता वह जीता ही मर चुका है।

१९०५—जीवन कमलपर जलकी बूँदके समान अत्यन्त चञ्चल है, जल्दी चेतो और भवसागरसे पार होनेके लिये क्षणभरके लिये साधु-सङ्ग करो, यही भवसमुद्रकी नाव है।

१९०६—आत्मज्ञानका सम्पादन करना और आत्मकेन्द्रमें स्थिर रहना मनुष्यमात्रका प्रधान कर्तव्य है।

१९०७—प्रेम, दया और सेवा ऐसे शस्त्र हैं कि इनसे अधर्मके दुर्दान्त कामादि शत्रुओंके दल सहजमें ही परास्त हो जाते हैं।

१९०८—शत्रुसे शत्रुता करना वैरको दूना बढ़ाना है, वैर दूर करनेका उपाय तो प्रेम है।

१९०९—मांसाहारी मनुष्य प्रत्यक्ष ही राक्षस है, उसका सङ्ग नहीं करना चाहिये, उससे भजनमें भङ्ग पड़ता है।

१९१०—जिनको जगना है, वे अभी जग जायँ; यही जागनेकी वेला है। जब पाँव पसारके सो जाओगे, तो फिर क्या जागोगे ?

१९११—भगवत्प्राप्तिके लाभके सामने समग्र संसार एक मच्छरकी पाँख-जितना भी नहीं है, अतः ऐसी तुच्छ वस्तुसे वैराग्य होना कौन-सी बड़ी बात है।

१९१२—जिसका मन भगवान्‌में लगा रहता है, भगवान् उसकी सँभाल रखते हैं।

१९१३—किसी भी दुखियाका दिल मत दुखाओ, दुखाओगे तो उसे बड़ा दुःख होगा, वह यदि दुःखमें रोकर पुकार उठेगा तो तुम्हारा

सारा गुड़ मिट्टी हो जायगा।

१९१४—धन, जन, यौवनका गर्व न करो, काल एक निमेषमें ही इन सबका हरण कर लेता है। इस मायामय प्रपंचको छोड़कर शीघ्र ही ब्रह्मपदका आश्रय ग्रहण करो।

१९१५—अपने गरीब कुटुम्बी भाई और दूसरे दुखी लोगोंकी यथासाध्य सहायता करना, भूले हुएको मार्ग बतलाना और भूखेको अपनी रोटीका आधा हिस्सा बाँटकर फिर खाना। सब लोग एक ही परमात्माकी संतान होनेके कारण ऐसा करना मनुष्यका धर्म है।

१९१६—वैराग्य तीन प्रकारका होता है—(१) अपवित्र वस्तुओंका त्याग करना साधारण वैराग्य है, (२) आवश्यकतासे अधिक प्राप्त हुई पवित्र वस्तुओंका भी त्याग करना विशेष वैराग्य है और (३) ईश्वरसे दूर हटानेवाली वस्तुमात्रका त्याग करना ऋषियोंका वैराग्य है।

१९१७—जिस क्षणमें भगवान्‌का चिन्तन नहीं किया वही हानि है, वही महान् अपराध है, वही अन्धापन है, वही मूर्खता है और वही ठूँठापन है।

१९१८—विपत्तिमें धैर्य, वैभवमें दया और संकटमें सहनशीलता—ये महात्माओंके लक्षण हैं।

१९१९—भगवान्‌का भक्तिमार्ग प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंसे विलक्षण है। इसमें सांसारिक विषयोंका त्याग नहीं है, न भोग ही है; उन्हें भगवान्‌की वस्तु मानकर भगवान्‌के सुखके लिये भगवान्‌के अर्पण करते रहना।

१९२०—यदि भगवान् मेरे हृदयसे चले जायँ तो मैं रोगसे छूटना नहीं चाहता, भगवान् रहें तो मैं सदा-सर्वदा ही रोगी रहना पसंद करता

हूँ। मुझे शरीर नहीं, पर भगवान् प्यारे हैं।

१९२१—काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा और दम्भसे रहित दयालु, सत्यवादी और सबका हित करनेवाले ही वैष्णव हैं।

१९२२—जगत्में केवल सत्सङ्ग ही भवसागरसे पार करनेकी नौका है, उसीका आश्रय ग्रहण करो।

१९२३—प्रेममें प्रतिकूलता नहीं रहती। प्रेम प्रतिकूलताको खा जाता है। प्रेमास्पद यदि प्रेमीके प्रतिकूल कार्य करके सुखी होता है तो उसीमें प्रेमीको अनुकूलता दीखती है।

१९२४—भगवान्का निग्रह और अनुग्रह दोनों ही बड़े विचित्र है। उनके निग्रहमें भी अनुग्रह है। उनकी लीला कौन जान सकता है।

१९२५—जिसका मन वशमें है, वही जगद्गुरु है। जैसे कच्ची छतमें जल भरता है, वैसे ही अज्ञानीके मनमें कामनाएँ जमा होती हैं।

१९२६—पहली डुबकीमें रत्न नहीं मिला, इससे रत्नाकरको रत्नहीन मत समझ। धीरजके साथ साधन करते रहो, समयपर भगवत्कृपा होगी ही।

१९२७—ईश्वरको पाना चाहते हो तो मनको पवित्र करो, भक्तिसे भगवान्के नामका गान करो, नम्र बनो, साधुओंकी चरणरज सिर चढ़ाओ, कुतर्क न करो, परनिन्दामें शामिल मत हो और यथाशक्ति परोपकार करो।

१९२८—जबतक कामना है, तबतक सुखके दर्शन स्वप्नमें भी नहीं होंगे। कामना श्रीराम-भजन बिना मिट नहीं सकती। अतएव सुखी होना हो तो श्रीरामका भजन करो।

१९२९—दसों दिशाओंमें अशान्तिकी भयानक आग भड़क उठी है, इससे बचना हो तो भागकर संतोंकी शीतल संगतिमें चले जाओ।

१९३०—जो कपटरहित हैं, निर्भय हैं और बाहर-भीतरसे एक-सा है, वही सच्चा साधु है, चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी।

१९३१—संसारका मोह छोड़कर ईश्वरकी वस्तु ईश्वरके ही अर्पण कर देनी चाहिये। संसारके भोगसुखोंसे तो केवल दुःख और मृत्युकी प्राप्ति होती है।

१९३२—धन जिनका गुलाम है। वे बड़भागी हैं और जो धनके गुलाम हैं वे बड़े अभागे हैं।

१९३३—जो दूसरोंके दुःखसे दुखी है वह भक्त रामको प्यारा है, ऐसे भक्तको भगवान् एक पलके लिये भी अपनेसे अलग नहीं करते।

१९३४—जिस मनुष्यको परमात्माका यथार्थ ज्ञान होता है, वह कर्मसे नहीं बँधता, परंतु जिसको परमात्माका यथार्थ ज्ञान नहीं होता वह संसारमें बार-बार जन्मता-मरता है।

१९३५—श्रद्धा ही पुरुषके लिये श्रेष्ठ धन है, धर्म ही स्थायी सुख देनेवाला है, सत्य ही परम स्वादु पदार्थ है और प्रज्ञासे जीवन बितानेवाला ही संसारमें श्रेष्ठ व्यक्ति है।

१९३६—जो धनपर भरोसा करते हैं, उनके लिये परमेश्वरके राज्यमें प्रवेश करना ऊँटका सूईके छेदसे निकल जानेसे भी अधिक कठिन है।

१९३७—जैसा कुटुम्बसे प्रेम है, वैसा ही यदि हरिसे हो जाय, उस दासका मोक्षमार्गमें जाते कोई पल्ला नहीं पकड़ सकता।

१९३८—संसार दुःखका सागर है ओर श्रीराम सुखका सागर अतः संसारके निकम्मे कामोंको छोड़कर सुखसागरकी और जाना चाहिये।

१९३९—श्रद्धाका आश्रय लिये बिना धर्मके मार्गपर नहीं चला जा

सकता चाहे और कुछ भी न हो, परंतु परमात्मापर श्रद्धा जरूर होनी चाहिये। श्रद्धासे सारे पाप भस्म हो जाते हैं।

१९४०—वैराग्य और ज्ञान पर्यायवाची शब्द हैं। किसी भी परिस्थितिमें सर्वदा और सर्वत्र ही वैराग्यका आचरण किया जा सकता है। विवाहित स्त्री-पुरुष भी वैराग्यका सम्पादन कर सकते हैं।

१९४१—(१) मुक्ति कब होती है ? जब तमाम जंजाल छूट जाते हैं। (२) निर्भरता किसे कहते हैं ? जब सब कुछ ईश्वरपर छोड़ दिया जाय (३) अधीनता किसे कहते हैं ? जब प्रत्येक कार्य ईश्वरके अर्पण हो।

१९४२—जो ईश्वरीय आज्ञाको सुनते हैं और उसीके अनुसार चलते हैं, उन्हींका जीवन धन्य है।' इस परम सत्य वाक्यके अनुसार हमारा जीवन जितना प्रकाशित होगा, उतनी ही हमारे ज्ञान और सुखकी वृद्धि होगी।

१९४३—दूसरोंकी निन्दामें अपना पाण्डित्य दिखलाना, अपने कार्योंमें उद्योग न करना और गुणज्ञोंके साथ द्वेष रखना—ये तीन विपत्तिके मार्ग हैं।

१९४४—जिसके उच्च कुलमें जन्म होनेका, कठोर तपका, ऊँचे वर्णका, सत्कर्मोंका, आश्रय और जातिका कोई भी अहंकार नहीं है, ऐसा पुरुष भगवान्‌को प्रिय होता है।

१९४५—भगवान् दुःख नहीं देते, दुःख-निवारणका उपाय करते हैं, परंतु हम अपनी नासमझीके कारण उसको दुःख मानने लगते है।

१९४६—घरमें रोशनी करते ही जैसे युगान्तरका अँधेरा एक ही साथ नाश हो जाता है, वैसे ही भगवान्‌की तनिक-सी कृपा-दृष्टिसे हजारों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं।

१९४७—इन्द्रियाँ ही मनुष्यकी शत्रु हैं। आशा मिट जानेपर यह पृथ्वी ही स्वर्ग है। विषयोंमें प्रेम ही बन्धन है। सदा संतुष्ट ही बड़ा धनी है मनको जय करनेवाला ही संसारमें विजयी है।

१९४८—सारे सद्गुण विनयके अधीन हैं, विनय नम्रतासे आती है। अतएव जो पुरुष नम्र है वही सद्गुण-सम्पन्न होता है।

१९४९—दूसरेकी उन्नति करनेमें स्वाभाविक ही तुम्हारी भी उन्नति हुआ करती है। दूसरोंकी भलाई करनेमें तुम अपने अहंकार और लौकिक हितको जितना ही भूलोगे, उतना ही उसका परिणाम अधिक शुभ होगा।

१९५०—पतिंगे बिना ही समझे आगमें कूदकर जल मरते हैं। मछली भी अज्ञानसे वंसीका मांस खाकर फँस जाती है, परंतु हमलोग तो समझ-बूझकर भी विपत्तियोंसे भरे हुए विषयोंको नहीं छोड़ते। मोहकी यही महिमा है।

१९५१—अपनी इच्छा छोड़कर प्रभुके शरण हो जाओ और उसकी कृपाकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त दीन बनो।

१९५२—जो ईश्वर-प्रेमी हो गया वह संसार-प्रेमी नहीं हो सकता। संसार-प्रेमी जबतक संसारकी असारता और दुःखरूपताका अनुभव नहीं करता, तबतक वह ईश्वर-प्रेमी नहीं हो सकता।

१९५३—निन्दा, स्वाद और वाद-विवादको छोड़कर दिन-रात श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये।

१९५४—तीनों लोकोंमें इन चार बातोंसे बढ़कर मनुष्यकी प्रसन्न करनेवाली और कोई बात नहीं है—दान, मैत्री, सब जीवोंपर दया और मीठे वचन।

१९५५—सरलता बिना कोई भी मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता,

अशुद्ध जीव धर्म नहीं करता; धर्म बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष बिना सुखकी प्राप्ति असम्भव है।

१९५६—जिस प्रकार वृक्ष जल सींचनेवाले और फल-फूल तोड़नेवाले दोनोंके साथ समान बर्ताव करता है, उसी प्रकार सज्जन भी अपनी भलाई करनेवाले और बुराई करनेवाले दोनोंके साथ एक-सा व्यवहार करते हैं।

१९५७— भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेसे सभी पाप जल जाते हैं, इसमें मनुष्यकी अचल श्रद्धा होनी चाहिये।

१९५८—जिस नन्दनन्दनने यमुनाके तटपर सब गोपोंको बचानेके लिये कालियका मथन किया, वह क्या शरण चाहनेवालोंको शरण नहीं देगा ?

१९५९—जो लोग काम, क्रोध, मद और लोभमें रत हैं तथा दुःखरूप गृहमें आसक्त हैं; वे भवकूपमें पड़े हुए मूढ़ मनुष्य भगवान्‌को कैसे जान सकते हैं? इन मायाके विकारोंसे छूटना हो तो सब कामनाओंको छोड़ यह विचारकर भी भगवान्‌का भजन करो कि श्रीहरिकी मायाके दोष-गुण हरिका भजन किये बिना नष्ट नहीं हो सकते।

१९६०—जिसको भगवतकी प्राप्ति हो गयी है, वह पुरुष ईश्वर-भजनको छोड़कर दूसरोंका मार्गदर्शक या उपदेशक नहीं बनता, क्योंकि उसकी दृष्टिमें एक प्रभुके सिवा कोई भी दूसरा रक्षक-शिक्षक या मार्गदर्शक है ही नहीं।

१९६१—शरीरको छोड़नेके समय आत्माकी जिस वस्तुमें आसक्ति होती है, वह उसीमें प्रवेश करता है। उस समय यदि उसके हृदयमें भगवान्‌का प्रकाश न होकर जगत्‌का प्रकाश होता है, तो उसको अँधेरे जेलखानेमें जाना ही पड़ता है।

१९६२—जब 'मैं' था, तब 'हरि' नहीं थे, अब 'हरि' हैं 'मैं' नहीं रहा। प्रेमकी गली बहुत ही सँकरी है, इसमें दो नहीं समा सकते।

१९६३—मनुष्य सोता हो या बैठा हो, मृत्यु उसे खोजती ही रहती है और मौका पाते ही उसका नाश कर डालती है। फिर तू निश्चिन्त कैसे बैठा है?

१९६४—जिस मनुष्यने जन्म लेकर अपना और दूसरेका कल्याण किया और तत्त्वज्ञानको प्राप्त कर लिया उसीका जीवन सार्थक है।

१९६५—जिसको 'मैं कौन हूँ' का पूरा ज्ञान हो गया तथा जो प्रभुके प्रेम-रसमें पग गया है वही सच्चा साधु है।

१९६६—जो सत्यपर कायम है वह परमेश्वरकी ज्योतिके समीप जाता है और जो बुराई करता है वह उस ज्योतिका शत्रु है। अतएव बुराई छोड़ो और सचपर डटे रहो।

१९६७—जो मनुष्य अपने क्रोधको अपने ही ऊपर झेल लेता है वह दूसरोंके क्रोधसे बच जाता है।

१९६८—दुनिया और दुनियाकी सब चीजें नाश होनेवाली है, पता नहीं रातको ही सब नष्ट हो जायँ। इसलिये इनमें दिलको फँसाना कभी उचित नही।

१९६९—जैसे जलके बिना नाव करोड़ यत्न करनेपर नहीं चल सकती, इसी प्रकार सहज संतोष बिना कभी शान्ति नहीं मिलती।

१९७०—जो झूठ नही बोलता, परनिन्दा नहीं करता, सद्‌गुणोंको धारण करता हैं, सबसे निर्वैर है, सबमें समभावसे आत्माको देखता है और हरिके चरणोंका प्रेमी है वही साधु है।

१९७१—देवतालोग जबतक उन्हें अमृत नहीं मिला, तबतक न तो अमूल्य रत्नोंको पाकर ही तृप्त हुए और न भयानक जहरसे ही डरे,

समुद्र-मन्थनमें लगे ही रहे। इसी प्रकार धीर पुरुष अपने उद्देश्यको सिद्ध किये बिना विश्राम नहीं लेते।

१९७२—सच्चा भक्त जगत्‌में रहता हुआ भी राग-द्वेष छोड़कर कर्तव्य-कर्म करता है और कर्मके फलस्वरूप जो नफा-नुकसान या सुख-दुःख मिलता है, उसे ईश्वरकी गोदमें अर्पण कर देता है। वह तो रात-दिन केवल भक्तिके लिये ही ईश्वरसे प्रार्थना करता है। निष्काम कर्म इसीको कहते हैं।

१९७३—जो मनुष्य संसारकी तरफ वासनाकी नजरसे देखा करता है, उसके अन्तःकरणमेंसे ईश्वर-प्रेम, दीनता और वैराग्यकी ज्योति निकल जाती है।

१९७४—सपना सच्चा न होनेपर भी स्वप्नकी अवस्थामें जैसे स्वप्नसम्बन्धी दुःख नहीं मिटता, वैसे ही संसार सत्य न होनेपर भी विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषका अज्ञान-अवस्थामें जन्म-मरण नहीं छूटता। अतएव अज्ञानके नाशका प्रयत्न करना चाहिये।

१९७५—सद्‌गुणोंको पानेके लिये प्रयत्न करो, बाहरी आडम्बरोंसे क्या लाभ है? बिना दूधकी गाय केवल गलेमें घंटा बाँधनेसे ही नहीं बिकती।

१९७६—यदि भगवान् विष्णुका परमपद शीघ्र पाना चाहते हो तो शत्रु-मित्र, पुत्र-बन्धु आदिके बखेड़ोंसे चित्त हटाकर सर्वत्र समबुद्धि करो।

१९७७—पुत्र और परिवार आदि विषयोंसे आसक्त मनुष्योंपर मृत्यु उसी प्रकार आक्रमण करती है जैसे रातके समय बाढ़ आकर गाँवमें सोये हुए लोगोंको बहा ले जाती है, जब मृत्यु आ जाती है, तब उसे पुत्र, पिता या बन्धु कोई नहीं बचा सकते। शीलवान् पण्डित इस बातको समझकर

अपने लिये निर्वाणका रास्ता साफ करते हैं।

१९७८—जिसके सङ्गसे तुम्हारे अन्दर अहंकार पैदा होता हो, उसका सङ्ग छोड़ दो और जो मनुष्य तुम्हारे दोषोंको दिखलावे उसकी खुशामद करो।

१९७९—जो पुरुष वनमें या घरमें कहीं भी रहकर विश्वके स्वामी, विश्वके हितैषी, विश्वके धारण-पोषण करनेवाले परमात्मामें मन लगाता है, वही पुण्यात्मा है और वही कृतार्थ है।

१९८०—दया बिना जीवन यथार्थ जीवन नहीं है, वह जीते ही मरण है। इसलिये अपने हृदयमें सब ओरसे दया-प्रेमका प्रवाह बहने दो; इससे तुम्हें दिव्य आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होगी; क्योंकि ईश्वर ही प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है।

१९८१—सदा स्मरण रखिये कि ईश्वरने हमें सुख और प्रसन्नता सदा दे रक्खी है और ये हमारी चेतनामें वैसे-वैसे ही विस्तार पायेगी जैसे-जैसे हम इनको अपनायेंगे और इन्हें अपनेमें रहने देंगे।

१९८२—श्रीरामके शरणागत हो जाओ, यही भवसागरकी नौका है, संसारसे तरनेका और कोई उपाय नहीं है।

१९८३—जो मनुष्य ईश्वरीय वाणीकी मधुरता चाखे बिना ही इस लोकसे चले जाते हैं, वे बेचारे शान्ति और कल्याणसे वञ्चित ही रह जाते है। लोगोंके साथ सद्भावसे बर्तना, प्रभु पुरुषोत्तमकी सेवा करना, उनकी आज्ञामें रहना तथा प्रभुके ध्यान-स्मरणमें पवित्रतासे जीवन बिताना—यही हमारा यथार्थ कर्तव्य है।

१९८४—झूठ बोलनेसे यज्ञका फल-नष्ट हो जाता है, गर्व करनेसे तपका नाश होता है; ब्राह्मणकी निन्दा करनेसे आयु घटती है और किसीको दिया हुआ दान बतला देनेसे वह निष्फल हो जाता है।

१९८५—जब शान्त और सत्त्वगुणी होकर चित्त आत्मामें लग जाता है, तब धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति आप ही हो जाती है और जब वही शरीर तथा घर आदि मिथ्या पदार्थोंमें लगकर प्रबल रजोगुणी और विषयोंका अनुरागी बन जाता है, तब अधर्म, अज्ञान, विषयलोलुपता और अनीश्वरता छा जाती है।

१९८६—जो परस्त्रीको बुरी दृष्टिसे देखता है, वह अपने सिर मानसिक व्यभिचारका पाप चढ़ाता है।

१९८७—सत्सङ्गके बिना भगवान्‌का रहस्य सुननेको नहीं मिलता, उसके सुने बिना मोह दूर नहीं होता और मोहका नाश हुए बिना भगवान्‌के चरणोंमें दृढ़ अनुराग नहीं होता।

१९८८—जो परमात्मा जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लय करते हैं, जो विश्वके ईश्वर हैं, सातो समुद्र जिनकी आज्ञामें रहते हुए पृथ्वीको डुबो नही देते उन वेद और उपनिषदोंद्वारा प्रतिपादित सब जगत्‌के साक्षी और सर्वज्ञ प्रभुको धन और जवानीमें मतवाले मूर्खलोग नहीं मानते।

१९८९—स्वामीपनमें नम्रता, गुणोंमें प्रेम, हर्षमें सावधानता, मन्त्रमें गुप्तता, शास्त्रोंमें सुबुद्धि, धन होनेपर उदारता, साधुओंका सम्मान, दुष्टोंसे विमुखता, पापोंसे भय, दुःखमें कष्टसहिष्णुता—ये सब कल्याण चाहनेवाले महात्माओंके गुण हैं।

१९९०—उपवास, अल्प भोजन, आजीविकाका नियम, रसत्याग, सर्दी-गर्मीका समभावसे सहन करना और स्थिर आसनसे रहना—यह छः प्रकारका बाह्य तप है और प्रायश्चित्त, ध्यान, सेवा, विनय, शरीरोत्सर्ग और स्वाध्याय—यह छः प्रकारका आभ्यन्तर तप है।

१९९१—अगर कोई बोलना जाने तो बोली बड़ी ही अनमोल चीज है। पहले हृदयके तराजूपर तौलकर ही बोलनेके लिये मुँह खोलना

चाहिये।

१९९२—मनुष्य जितना ही मनकी वासनाओंका आदेश पालन करता है, उतना ही अधिक रोगी, दुखी और असंतोषी बनता है।

१९९३—जब तुम्हारी ईश्वरकी ओर अनन्य दृष्टि हो जायगी तब तुरंत ही प्रभुके साथ तुम्हारा मिलन होगा और जब तुम अपने तुच्छ स्वार्थों तथा सांसारिक पदार्थोंकी ओर देखोगे तब तुरन्त ही भगवान्से तुम्हारा वियोग हो जायगा।

१९९४—सच्चा मित्र वह है जो दर्पणके समान तुम्हारे दोषोंको यथार्थरूपसे तुम्हें दिखा देता है। जो तुम्हारे अवगुणोंको गुण बतलाता है वह तो खुशामदी है, मित्र नहीं।

१९९५—उठो, आलस्य मत करो, सच्चे धर्मका आचरण करो, धर्मका आचरण करनेवाला ही लोक-परलोकमें सुखी रहता है। बुरे मार्गमें भूलकर भी मत जाओ।

१९९६—प्रेम सदा ही सहनशील और मधुर है, प्रेम ईर्ष्या नहीं करता, आत्मश्लाघा नहीं करता, गर्व नहीं करता, दुष्ट आचरण नहीं करता, स्वार्थकी चेष्टा नहीं करता, शीघ्र क्रोध नहीं करता, बुरा नहीं मानता अधर्ममें सुखी नही होता और सदा सत्यके साथ आनन्द करता है।

१९९७—सारे छल-कपट छोड़कर श्रीरामसे प्रेम करो। अरे, जो स्वामी सारा शरीर देख चुका है, उससे छिपाना क्या है ?

१९९८—इस असार संसारके उलट-फेरके फेरमें न पड़कर सर्वत्र समताका पवित्र भाव हृदयमें रखो; सर्वभूत-प्राणियोंमें समता रखना ही भगवान्की सबसे बड़ी भक्ति है।

१९९९—भगवान्की शरण होना और उनके दर्शनके लिये हृदयसे

प्रार्थना करना साधकका परम कर्तव्य है। जिसको ईश्वरका साक्षात् हो चुका, है उसके लिये तो आशा या याचनाकी कोई वस्तु ही नहीं रह जाती।

२०००—सांसारिक विषयोंमें उपरामता, ईश्वरकी आज्ञाका पालन और ईश्वरकी इच्छासे जो कुछ हो रहा है, उसीमें प्रसन्न रहना, यही सच्ची भक्तिके लक्षण हैं।

२००१—हाथ और मनको काममें लगे रहने दे; परंतु अपने हृदयको तो केवल भगवान्‌में ही रख; भगवान् आत्मा हैं। आत्मामें निवास कर, आत्मामें कर्म कर, आत्मामें प्रार्थना कर, सब कुछ आत्मामें ही कर, तू भी आत्मा ही है, भगवान्‌की मूर्ति ही है।

२००२—तुम अपनी प्रत्येक वासनाको जीत सकते हो, क्योंकि तुम उसी अनन्त परमात्माके ही अंश हो जिसकी शक्तिका सामना कोई नहीं कर सकता।

२००३—दूसरे किसीमें भी ममता न रहकर एक भगवान्‌में जो अनन्य ममता होती है, उसीको प्रेम कहते हैं। इसी प्रेमको भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद आदिने भक्ति बतलाया है।

२००४—सद्विचारोंके परायण होना ईश्वरकी कृपाका चिह्न है। भगवत्कृपा बिना किसीका परम कल्याण नहीं हो सकता।

२००५—सत्कर्म करनेवालोंकी देवता भी सहायता करते हैं और असत्-मार्गपर चलनेवालेका साथ सगा भाई भी छोड़ देता है।

२००६—इस संसारमें दो ही अमूल्य रत्न हैं—एक भगवान् और दूसरा संत। इन दोनोंका कोई मोल-तौल नहीं हो सकता।

२००७—विरागकी प्राप्तिसे ही मनुष्य विरक्त होता है, विरक्त होनेपर ज्ञान होता है, तभी उसका जन्म-क्षय होता है, तभी उसे

ब्रह्मचर्यका फल मिलता है, तब उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता है, फिर उसे यहाँ आकर जन्म नहीं लेना पड़ता।

२००८—विषय-सुखोंके त्यागद्वारा जिन्होंने भय और राग-द्वेषको छोड़ दिया है ऐसे त्यागी पुरुष ही निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

२००९—सूर्यकी किरणें सब जगह समान पड़नेपर भी जल और दर्पणमें प्रकाश अधिक दिखायी देता है, वैसे ही भगवान्‌का विकास सबके हृदयोंमें समानरूपसे होनेपर भी साधुके हृदयमें उसका विशेष प्रकाश होता है।

२०१०—बैठे-बैठे अँधेरेमें क्या टटोल रहे हो ? प्रकाशकी खोज करो। वह प्रकाश है भगवत्-प्रेम, भगवत्-निष्ठा।

२०११—एक बार अपने अंदर प्रेमकी आग-जग जाने दो, फिर तुम्हारे जिस दोषके साथ उसका स्पर्श होगा वही दोष जल जायगा। तुम्हारा 'तू' पन जल जायगा, अहंकार नाश हो जायगा, 'मैं', 'मेरा' आदि भाव भस्म हो जायँगे और जब नया भाव सुलग उठेगा तब उसके तापमें प्रेमसे इतना महान् सुख मिलेगा कि उसके सामने विश्वका सारा सुख तुच्छ हो जायगा।

२०१२—किसीके दोष न देखा करो, इससे आँख और मन दोनों मलिन होते हैं और जगत्‌में पापका बोझ बढ़ता है। इसलिये जो कुछ देखो अच्छाईकी ओर लक्ष्य रक्खो। अच्छाई ही सत्य और जीवन है। भगवान्‌को छोड़कर कोई भी पूर्ण नहीं है यह न भूलो।

२०१३—दूसरेको सुखी देखकर प्रसन्न होना, दुखी देखकर उसकी सहायता करना, पर दुखी देखकर कभी प्रसन्न तो होना ही नहीं।

२०१४—शोक, चिन्ता, भय, उद्वेग, मोह और क्रोध—इन छःसे जो मुक्त है वह सदा मुक्त है।

२०१५—अहा! वह कैसा सुखी होगा जो प्रभुको सदा समीप और अनुकूल देख पाता है।

२०१६—सच्चा एकान्त कब हो? जब भगवान्‌से शून्य जीवनसे परे हो जाओ।

२०१७—जिसका मन कभी भी विकल नही होता और सदा ही प्रसन्न रहता है वह सदा मुक्त ही है।

२०१८—दृढ़ निश्चय करके भगवान्‌की खूब भक्ति करनी और शरीर छूटनेसे पहले ही भगवान्‌को प्राप्त करनेका प्रयत्न करना—यही जीवनका कर्तव्य है।

२०१९—किसका संग किया जाय? जिसमें 'तू', 'मैं' का भाव नहीं।

२०२०—निन्द्य जीवनसे वैर बाँधकर ईश्वरके मित्र बनो। ईश्वरसे वैर बाँधकर निन्द्य जीवनसे प्रीति न करना।

२०२१—एक छोटे-से जीवको भी अपनेसे नीचा मत समझो। बाहरी दुनियाको देखो भी तो ऊपर-ही-ऊपरसे। भीतरी आँखोंको तो उस प्रभुकी ओर लगाये रहो।

२०२२—आगे-पीछेका विचार छोड़ो। जो हो गया है और जो होगा उसकी चिन्ता न करो। वर्तमानमें प्रभुके भजनमें लगे रहो।

२०२३—दूसरेकी चीज लेनेकी कभी इच्छा नहीं करनी चाहिये। इस नियमके पालनसे चोरी नहीं होगी; घूस नहीं ली जा सकेगी, किसीका न्याय्य हक नहीं छीना जायगा, मुफ्तमें कुछ भी नहीं लिया जायगा, परस्त्रीके प्रति विकारसे नहीं देखा जायगा और केवल अपना हक ही लिया जायगा।

२०२४—हृदय कब सुखी होता है? जब हृदयमें प्रभु आ

विराजते हैं।

२०२५—जिसपर ईश्वरकी कृपा होती है, सांसारिक सुखोंका उसीको अभाव रहता है।

२०२६—संतोंका एक ही लक्ष्य होता है—भगवान्। किसी भी हालतमें उनका मन भगवान्‌से नहीं हटता।

२०२७—अपने निर्वाहके लिये जो चिन्ता अथवा प्रपञ्च नहीं करता वही सच्चा विश्वासी है।

२०२८—अहंभावको छोड़कर विपत्तिको भी सम्पत्ति मानना ही सच्चा संतोष है।

२०२९—उच्च और पवित्र भावना एक ऐसी अद्भुत वस्तु है जो मनुष्यके मनमें आकर भी स्थिर नहीं रहती। उसका तो मनुष्यपर बहुत प्रेम है; किंतु मनुष्यकी उसपर प्रीति हो तब न।

२०३०—इस नाशवान् संसारमें जो आसक्त नहीं है वही सच्चा ऋषि है। तल्लीन होकर ईश्वरके गुण गाना, मत्त होकर प्रभुके संगीत सुनना और प्रभुकी अधीनता मानकर काम करना ही ऋषिका धर्म है।

२०३१—जो ईश्वरमें लीन रहता है वही सच्चा संत है।

२०३२—अपना भार दूसरेपर न लादना और बिना संकोच दान करना बड़ी दिलेरीका काम है।

२०३३—ईश्वरमें निमग्न होना भावावेशमें अपनेपनका नाश करना है।

२०३४—वास्तविक साक्षात्कारमें एक ईश्वरमें ही स्थिति होनेके कारण अहंता और ममताका नाश हो जाता है। ऐसी हालतमें तुम अपने शरीर और जीवको नहीं देख पाओगे।

२०३५—सारी रात बिना नींदके प्रभुका स्मरण करनेवाला और

दूसरे यात्रियोंके उठनेके पहले ही मंजिल तय कर लेनेवाला मनुष्य ही सच्चा प्रभु-भक्त और सत्पुरुष है।

२०३६—जहाँ ईश्वरकी चर्चा होती है, वहीं स्वर्ग है।

२०३७—जहाँ विषयोंकी चर्चा होती है, वहीं नरक है।

२०३८—हे प्रभो ! तेरे सिवा मेरा कोई नहीं, तू मेरा है तो फिर सब कुछ मेरा है।

२०३९—हे प्रभो ! मैं तो तुम्हींको चाहता हूँ और कुछ भी नहीं। तुम महान्-से-महान् हो; परम कृपालु हो; मुझे तुमसे शान्ति मिलेगी। मुझे अपनेसे जरा भी अलग न करना, मेरे सामने अपने सिवा और किसीको न आने देना।

२०४०—ईश्वरकी कृपाके बिना मनुष्यके प्रयत्नसे कुछ भी नहीं मिल सकता।

२०४१—ईश्वरके गुणोंका अपनेमें आरोप करनेवाला योगी अधम है।

२०४२—अन्तःकरणमें एक भण्डार है, उस भण्डारमें एक रत्न है, वह रत्न है प्रभु-प्रेम इस रत्नको पानेवाला ही ऋषि है।

२०४३—मनुष्य ज्यों-ज्यों संसारी परदोंसे ढकता जाता है, त्यों-ही-त्यों वह प्रभुकी पूजा और साधना छोड़ता जाता है।

२०४४—जो ईश्वरको जानता है वह ईश्वर को छोड़कर और किसी बातकी चर्चा नही करता।

२०४५—संत वही है जिसे कोई भी विषय मलिन नहीं कर पाता, बल्कि मलिनता भी जिसे छूकर पवित्र हो जाती है।

२०४६—सत्य और प्रिय वाणी, ब्रह्मचर्य, मौन और रसत्याग—इन चारका सेवन करनेवालेमें सदा सिद्धियाँ बसती हैं।

२०४७—पीड़ाकी आग तो उसीको सता सकती है जो ईश्वरको नहीं पहचानता। ईश्वरको जाननेवाला तो धधकती हुई आगको भी ठण्ढी और सुखदायक जान पाता है।

२०४८—जो ईश्वरके नजदीक आ गया उसे किस बातकी कमी ? सभी पदार्थ और सारी सम्पत्ति उसीकी है ? क्योंकि उसका वह परम प्रिय सखा सर्वव्यापी और सारी सम्पत्तिका स्वामी है।

२०४९—त्याग तप है। त्यागके बिना न तेज है, न सत्कार है, न शान्ति है, न प्रसन्नता है, न आनन्द है और न मुक्ति ही है। त्याग करो—घरका नहीं, स्त्री-पुत्रोंका या धनका नहीं, त्याग करो क्रोधका, कड़वी वाणीका, विषयभोगका, मनकी विविध कामनाओंका, दूसरेको दुःख देनेवाले स्वभावका, आलस्यका, अभिमानका, आसक्तिका, ममताका और अहंकारका।

२०५०—किसीके बन जाओ, स्वामी बना लो। स्वामी समर्थको बनाओ। सबसे समर्थ हैं—भगवान्। भगवान्के बन जाओ। भगवान्से विवाह कर लो। हाथ पकड़ लो। वे पकड़ा हुआ हाथ नहीं छोड़ते। दयालु हैं, समर्थ हैं, देखो, अगर तुम छोड़ भी दोगे तो याद रक्खो, भगवान्के बन जानेपर भगवान् कभी भूलते नहीं। छोड़ते नहीं।

२०५१—या तो जैसे बाहरसे दिखाते हो वैसे ही भीतरसे बनो, नहीं तो जैसे भीतर हो वैसे ही बाहरसे दिखाओ।

२०५२—प्रभुमें ही सब लोगोंकी स्थिति और गति देख सकनेपर ही पक्के पायेपर प्रभु-दर्शन हुए जानना।

२०५३—धर्मकी भूख बादलके समान है। जहाँ वह बराबर जमी और चातककी-सी आतुरताकी गर्मी बढ़ी कि तुरंत ईश्वरकी कृपाका अमृत बरसने लगा।

२०५४—तीन बातें ध्यान देने लायक हैं—(१) जब कभी किसी बुरे आदमीसे काम पड़ जाय तो उसके नीच स्वभावको अपने भले स्वभावसे ढक लेना इससे स्वयं तुम्हें संतोष होगा, (२) जब कभी कोई तुम्हें दान दे तो पहले कृतज्ञ होना उस प्रभुका, उसके बाद उस उदारहृदय दाताको धन्यवाद देना, (३) जब कभी विपत्ति आ पड़े तो तुरंत विनीतभावसे उस विपत्तिको सहनेकी शक्तिके लिये प्रभुसे प्रार्थना करना।

२०५५—जब-जब मनमें अशान्ति हो, तब-तब समझना चाहिये कि मैं भगवान्‌को भूल गया हूँ और इसलिये उस समय भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये।

२०५६—धर्म, सत्य और तप—यही जीवनकी सार सम्पत्ति है।

२०५७—जो यह जानते हैं कि ईश्वर हमारा हर एक काम देखता है, वे ही बुरा काम करनेसे डर सकते हैं।

२०५८—यहाँकी लक्ष्मी तो जीवके लिये भाररूप, चिन्ता, भय, क्लेश, श्रम, दुःख और मदको देनेवाली है और अन्तमें जन्म-मरणके चक्करमें डालनेवाली है।

२०५९—शरीरका त्याग करनेसे भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती, उनकी प्राप्तिका एकमात्र सहज उपाय है निष्काम भजन-अहैतुकी भक्ति।

२०६०—कोई भजन गाता हो, व्याख्यान देता हो, नाचता-कूदता हो और गाता-गवाता हो, पर यदि वह सदाचारी न हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये।

२०६१—दुराचारी संक्रामक रोगकी अपेक्षा भी अधिक भयंकर है। दुराचारके समान कोई दूसरा संक्रामक रोग नहीं है।

२०६२—विशुद्ध प्रभु-प्रेम जगत्‌में एक दुर्लभ पदार्थ है। मनमेंसे कपटबुद्धिको दूर करनेका जब मैंने प्रबल प्रयत्न किया, तब उस प्रभुने

अनेक सद्‌गुणोंके रूपमें आकर मेरे हृदयपर अधिकार कर लिया।

२०६३—जो मनुष्य परस्त्रीके साथ या स्त्री-सम्बन्धी बातें करनेमें रस लेता हो, निर्लज्ज हो, ऊपरसे मीठी-मीठी बातें बनानेवाला हो और रास्तेमें चलते-चलते खाता हो, उसका सङ्ग कभी नही करना चाहिये। ऐसे लोग प्रायः हृदयके कपटी और दुष्ट भाववाले होते हैं।

२०६४—संत ईश्वरपरायणताकी ऊँची अवस्थामें अपार सुख-शान्ति भोगते हैं। वे संसारसे दूर भागे हुए होते हैं। वे न किसी चीजके मालिक होते हैं और न किसी चीजके गुलाम ही।

२०६५—जो न तो दुनियाकी किसी चीजपर अपना बन्धन ही रखते और न खुद किसी बन्धनमें बँधते हैं, वे ही संत हैं।

२०६६—सच्चे संतका धर्म बाहरी आचार और पण्डिताई दिखानेमें नहीं है। उनका धर्म है पवित्र-चरित्र होकर ईश्वरका अनुसरण करना, जो बाहरी दिखावे और ज्ञानकी बातें रट लेनेसे नहीं मिल जाता।

२०६७—मुक्त रहना, वीर बनना और बाहरी सुख-वैभवसे अलग रहना; ईश्वरको पानेके लिये पशुवृत्तियोंकी गुलामी छोड़ देना—यह सच्चे संतका स्वभाव है। इस उत्तम स्वभावसे संसारकी मित्रताको छोड़कर ईश्वरसे स्नेह जोड़नेकी शक्ति आती है।

२०६८—जिनकी सदा ईश्वरकी ओर दृष्टि है और जो संसारसे विरक्त हैं, वही संत हैं।

२०६९—जो दुराचारियोंके अत्याचारोंसे कभी जरा भी व्यथित नहीं होते, वे ही महापुरुष है।

२०७०—परमेश्वरके नामपर लोगोंको अपनी ओर घसीटनेवाले धर्मध्वजी बहुत-से हैं। उनसे बचकर रहना।

२०७१—एक ईश्वरप्रेमीके लिये सभी स्थल मन्दिर हैं, सभी दिन

पूजाके दिन हैं और सभी महीने व्रतके हैं। वह जहाँ रहता है, ईश्वरके साथ रहता है।

२०७२—'उस'के अस्तित्वका ज्ञान होते ही मैंने अपने अस्तित्वकी ओर देखा, तो वहाँ भी मुझे उसीका अस्तित्व दिखायी दिया।

२०७३—प्रभु अपने प्रेमियोंको ऐसी जगह रखता है जहाँ साधारण लोग पहुँच ही नहीं पाते। जो लोग उस जगह पहुँच गये हैं, उनको जनसाधारण पहचान ही नहीं सकते कि वे प्रभुप्रेमी हैं। जब कभी मैंने उस प्रभुके सौन्दर्यकी बात लोगोंसे कही तो उन्होंने मुझे पागल बतलाया।

२०७४—जिस किसीने साधु पुरुषोंका सहवास किया है, वही ईश्वरको पा सका है।

२०७५—हे प्रभो ! तुम जब मेरा सदा स्मरण रखते हो, तो मेरे आखिरी साँसतकके हर एक साँसके साथ तुम्हारा नाम रहे, मन भी सदा तुम्हारे स्मरणमें लगा रहे एवं तन और जीवन भी तुम्हारा अनुसरण करते रहें।

२०७६—हे प्रभो ! तुमने मुझे अपने लिये ही रचा है और तुम्हारे लिये ही मैं जनमा हूँ। कृपाकर अपनी रची हुई किसी भी वस्तुके प्रति मेरे मनमें मोह न उत्पन्न होने देना।

२०७७—मनुष्य ज्यों ही यह मानने लगता है कि मैं कुछ तो जानने लगा, तभीसे उसके ज्ञानके द्वार बन्द हो जाते हैं।

२०७८—पुरुषकी छिपी कामवासनामें यदि स्त्रीका देखना, सुनना, एकान्तमें मिलना और बातचीत करना चलता रहता है तो वह वासना बढ़कर प्रत्यक्ष कामनाका रूप धारण कर लेती है और फिर सहज ही मनुष्यका पतन हो जाता है।

२०७९—स्त्रीसम्बन्धी साहित्य पढ़ना, स्त्रियोंके चित्र देखना और उनके नृत्य-गानके दृश्य देखना आदिसे दुर्वासनाकी सहज ही वृद्धि होती है।

२०८०—स्त्रियोंके साथ बात करनेसे विकार बढ़ता है और स्पर्श करनेपर तो मानो वह पूरा बढ़ जाता है।

२०८१—मानव-जीवन भोग भोगनेके लिये नहीं मिला है, इसके द्वारा मोक्ष अथवा भगवान्‌को पा लेनेमें ही इसकी सच्ची सार्थकता है।

२०८२—साधुओंका समागम करनेसे प्रभुप्रेमरूपी सुन्दर बादल उमड़ेंगे और उनसे ईश्वर-अनुग्रहका स्वच्छ जल बरसेगा, किंतु जब तुम उस प्रभुका ही समागम करने लग जाओगे तब तो उन बादलोंसे प्रेमके अमृतकी वर्षा होने लगेगी।

२०८३—जो ईश्वरकी ओर जाता है उसे वह कुछ ऐसी वस्तु दे देता है जिससे उसका अपना सब कुछ चला जाता है और उसके बदलेमें भजन, भाव, उपासना, प्रार्थना आदि दैवी पदार्थ प्रभुकी ओरसे मिलते रहते हैं।

२०८४—स्वयं ईश्वर जिसका मार्गदर्शक है, उसका रास्ता अपने भरोसे ही चलनेवालेके रास्तेसे कहीं अधिक सुगम और छोटा है; क्योंकि ईश्वर अपने आश्रितको दिव्य दृष्टि प्रदान करता है, जिससे वह अपने सीधे रास्तेको सरलतासे देख लेता है।

२०८५—रास्ते दो है—एक लंबा, दूसरा छोटा। लंबा रास्ता भक्तके पाससे शुरू होकर भगवान्‌के पास जाता है और छोटा रास्ता भगवान्‌के पाससे शुरू होकर भक्तके पास आता है।

२०८६—किये बिना मिलनेका नहीं। जैसा करता है वैसा मिलता है; पहले जैसा किया है वैसा अब मिल रहा है और अब जैसा करोगे वैसा

आगे मिलेगा।

२०८७—कुटुम्ब-पालन और विषय-भोग तो पशु-पक्षी भी करते हैं। फिर तुम मनुष्य होकर कुटुम्ब-पालन और विषय-भोगमें ही अपनी आयुको क्यों खो रहे हो ? देखो तो सही।

२०८८—जब पूरी तरहसे अपना विनाश कर लोगे तभी तुम 'पूर्ण' बनोगे।

२०८९—स्वर्ग और मृत्युलोकके सारे जीवनमें किये हुए धर्मानुष्ठानोंकी अपेक्षा पलभरका पवित्र प्रभु-समागम कहीं श्रेष्ठ है।

२०९०—मनुष्यके विचार उसके इतने अधिक समीप हैं कि जितने समीप उसके हाथ, पैर और आँख, कान आदि अङ्ग भी नहीं हैं। मनके विचारोंका आत्माके साथ साक्षात् सम्बन्ध है, जबकि हाथ-पैर तथा आँख-कान आदि तो मनके सेवकमात्र है।

२०९१—ईश्वरके प्रेमियोंके लिये है उसका स्नेह और पापियोंके लिये है उसकी दया।

२०९२—जागो, उठो और लग जाओ। ऐसा अवसर फिर जल्दी नहीं आयेगा। ईश्वरका भजन करो। अपने पास कुछ हो तो दान करो। भूलेको मार्ग बताओ। दुखीकी सहायता करो तथा मन और इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर भगवान्में लगाओ।

२०९३—माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना, उनकी सेवा करना संतानका धर्म है। निष्काम भावसे या भगवद्बुद्धिसे हो तो इतने ही धर्मके पालनसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।

२०९४—पलभरका ईश्वरका सहवास हजारों वर्षोंकी साधनासे कहीं अधिक उत्तम है।

२०९५—साधुओंका बाना तो बहुत पहन लेते हैं; परंतु ईश्वर तो

चाहता है मनकी शुद्धि और व्यवहारकी सात्त्विकताका बाना।

२०९६—ऐसे लोगोंकी ही सङ्गति करना जो ज्ञानाग्निसे शुद्ध होकर प्रभुके ममतारूपी अमृतसागरमें डूबे हैं।

२०९७—मनुष्यका यह धर्म है कि वह बिना किसी भेदभावके दुःखमें पड़े हुए जीवकी यथाशक्ति सहायता करे—उसे कष्टसे बचावे और सुख पहुँचावे।

२०९८—जो श्रोता प्रभुको पानेकी इच्छा नहीं रखता उससे बात मत करो, और जिस वक्ताको प्रभुके दर्शन नहीं हुए उसकी बात मत सुनो।

२०९९—सच्चे प्रभु-प्रेमी बनकर जिस-किसी ओर देखोगे; वहीं ईश्वर ही दिखायी देगा। कारण, ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है ही।

२१००—यदि किसीके पास धन आये तो उसे तुरंत भगवत्प्रीत्यर्थ लोकसेवाके काममें लगाना आरम्भ कर देना चाहिये। धनकी सार्थकता और सफलता इसीमें है। भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये व्यय किया हुआ धन भगवान्‌की प्रसन्नताका तथा भगवत्प्राप्तिका कारण होता है।

२१०१—पूरी लगनसे काम करके उसे ईश्वरको समर्पित कर देनेवाला ही सच्चा साधु है।

२१०२—प्रभु-प्रेमी ही प्रभुको पाता है और जो प्रभुको पा लेता है, वह अपने-आपको भूल जाता है। उसका अहंभाव नष्ट हो जाता है।

२१०३—पोथियोंके पण्डित धर्मका उपदेश दूसरोंको सुनानेमें ही लगे रहते हैं; किंतु सच्चे साधु अपने-आपको सुनाते हैं और स्वयं उसपर आचरण करते हैं।

२१०४—लोगोंके आगे रोनेकी अपेक्षा प्रभुके आगे रोओगे तो

सच्चा लाभ होगा।

२१०५—तुमने 'उसे' कहाँ देखा ?—जहाँ मैं खुद खो गया ! अपने-आपको मैं नहीं देख पाया वहाँ।

२१०६—मैं नही कहता कि काम मत करो। काम जरूर करो; किंतु अपनी शक्ति और सम्पत्तिके सहारे नहीं, उस प्रभुकी शक्ति और सम्पत्तिके सहारे करो। वह करवावे तभी करो।

२१०७—साधु पुरुषो ! सावधान रहना। फकीरो ! फकीरी पोशाकसे ही तुम्हें उसके दर्शन नहीं हो सकेंगे। इन बाहरी साधनोंमें ही साधुता मान बैठनेसे तो हानि ही होगी।

२१०८—यदि ईश्वरप्रीत्यर्थ ही सब कुछ किया जाय या अपनेको निमित्तमात्र मानकर अपने ऊपर कर्तृत्वका अभिमान लादा जाय तो कोई भी कर्म मनुष्यको बाँध नही सकता।

२१०९—क्या करनेसे जाग्रत् रहा जा सकता है ? हर एक श्वासके साथ यही समझो कि बस, यही अन्तिम श्वास है।

२११०—आत्म-विसर्जन ही प्रेमका मूल मन्त्र है। प्रेमास्पदका हित और सुख ही प्रेमीका परम सुख है। प्रेमास्पद उसके प्रेमका तिरस्कार करे, उसे ठुकरा दे; पर प्रेमीके पास इन सब बातोंकी ओर देखनेके लिये चित्त ही नहीं है, उसका चित्त तो सहज ही अपने प्रेमास्पदमें लगा है।

२१११—इस दुनियाके कँटीले झाड़के नीचे बैठकर प्रभुका ध्यान करना मुझे पसन्द है; किन्तु स्वर्गके कल्पतरुके नीचे बैठकर ईश्वरको भूल जाना मुझे पसंद नहीं।

२११२—ईश्वरके मार्गमें पहले व्याकुलता, तीव्र जिज्ञासा और पीछे निर्मलता, पश्चात्ताप, प्रभुकी महिमाका कीर्तन और परमात्मदर्शन क्रमशः आते हैं।

२११३—पवित्र बनो। ईश्वर स्वयं पवित्र है वह पवित्रात्मापर ही अपने प्रेमकी वृष्टि करता है।

२११४—सच्चा संत ईश्वरकी गोदमें हँसने, खेलनेवाला सुन्दर बालक है। ईश्वरकी गोदमें संत बिना किसी संकोचके खेलता-कूदता और गाता-बजाता रहता है।

२११५—अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तुको अपने परम प्रिय सखा परमात्माके लिये न्यौछावर कर दो, यही प्रभु-प्रेमका लक्षण है।

२११६—गहरे उतरकर तुम उसकी खोज नहीं करते, इसीलिये तो उसे नहीं पा सकते।

२११७—मनुष्यने प्रभुको देखा नही है, इसलिये वह विषयभोगोंके पीछे दौड़ता फिरता है। उसने उसे देख लिया होता तो वह दूसरी चीजोंके पीछे क्यों दौड़ता फिरता?

२११८—अपने मनमें सोचकर देखो, क्या वास्तवमें तुम्हें प्रभुको प्राप्त करनेकी अभिलाषा है? यदि यथार्थ ही उन्हें पानेकी अभिलाषा है तो अवश्यमेव पूरी होगी।

२११९—जिस प्रकार वर्षाऋतुके आनेपर जल बरसता है, बिजली चमकती है, मेघ गर्जना करते है, हवा जोरसे चलने लगती है, फूल खिल उठते हैं और पक्षी आनन्दमें डूबकर कूदने लगते हैं, उसी प्रकार परमात्माके दर्शन हो जानेपर आनन्दित होकर नेत्र जल वर्षा करने लगते हैं, ओठ मृदु हास्य करने लगते हैं, अन्तरकी कली खिल उठती है, आनन्दके झोंकेसे मस्तक हिलने लगता है, प्रतिक्षण उस प्रिय सखाके नामकी गर्जना होने लगती है और प्रेमकी मस्ती प्रभुके गुणगानमें सराबोर कर देती है।

२१२०—जो मनुष्य अपनी बड़ाई सुनकर उसका विरोध

करता हुआ भी मन-ही-मन प्रसन्न होता है, वह मूर्ख है और प्रायः दूसरोंके द्वारा ठगा जाता है।

२१२१—प्रभुकी पूजा करना ही सच्चा कर्तव्य है। उसकी खोज करना ही सच्चा रास्ता है, उस परमात्माका दर्शन होना ही एक सच्ची कथा है।

२१२२—जिस व्यक्तिका अहंकार जितना ही अधिक होता है, उसके दुःख भी उतने ही अधिक होते हैं। अहंकारकी वृद्धि एक प्रकारका पागलपन है।

२१२३—प्रभुस्मरणके लिये संसारको भूल जाओ और परलोककी बात भी मत सुनो।

२१२४—सृष्टिमेंसे मनको खींचकर स्रष्टामें लगाना ही वैराग्य है। ईश्वरेतर सब चीजोंसे परे रहना ईश्वरके समीप जाना है।

२१२५—सृष्टि और स्रष्टा तथा विधान और विधाताको एक समझनेमें ही पूर्णता है।

२१२६—लोककल्याणको अपने कल्याणसे भी अधिक मानना ही सच्ची साधुता, महत्ता और उदारता है।

२१२७—जिस लोक-कल्याणमें अभिमानका पुट है वह तो मोह है—त्याज्य है।

२१२८—इस समय तुम्हें जो क्षण प्राप्त है, वही तुम्हारा सबसे बढ़कर कीमती धन है। आध्यात्मिक जगत्में काल नामकी वस्तु ही नहीं है, इसीलिये भूत और भविष्य भी नहीं है।

२१२९—जिस प्रकार स्नान आदिसे प्रतिदिन शरीर स्वच्छ करना जरूरी है। उसी प्रकार मनको भी रोज स्वच्छ करना चाहिये। मनको धोनेके लिये भगवान्का भजन ही स्वच्छ सरोवर है।

२१३०—ईश्वर भीतरकी छोटी-से-छोटी बातको भी देख रहा है—इस बातको एक क्षण भी न भूलो।

२१३१—जिस साहित्यसे मनमें कामनाएँ जाग्रत् हों, मन विषयोंमें जाय, उसे मलिन साहित्य मानकर उसका त्याग करना चाहिये और जिससे कामनाएँ घटें, मनमें भगवान्‌के प्रति प्रीति उत्पन्न हो, मन निर्मल हो—उसे शुद्ध साहित्य मानकर उसका अध्ययन करना चाहिये।

२१३२—जिसके मनमें कामवासना प्रबल हो उसके लिये विवाह कर लेना ही उचित है। ऐसा करनेसे वह दूसरे पापों और सङ्कटोंसे बच जाता है। मेरी भी नजरमें अगर दीवार और औरत एक-सी न लगती होती तो मैंने भी विवाह कर लिया होता।

२१३३—जिन भगवान्‌ने तुम्हें शक्ति, साधन, सम्पत्ति दी है, वे प्राणिमात्रके हृदयमें बसते हैं, अभिमान छोड़कर उन्हें उनकी सेवामें खर्च करके भगवान्‌की सेवा करो।

२१३४—भाग्यशाली कौन? जो ईश्वरकी भक्ति करके उसके प्रेमका स्वाद चखकर इस लोक और परलोकमें शान्ति पाता है।

२१३५—सावधान रहना! जो आदमी तुम्हारे आगे दूसरोंकी निन्दा करता है, वह दूसरोंके आगे तुम्हारी निन्दा अवश्य करता होगा। ऐसे आदमीकी बातोंमें मत फँसना, नहीं तो बड़ी भारी विपत्तिका सामना करना होगा।

२१३६—सदा प्रभुसे डरकर चलना और भूलकर भी किसीका अहित न चाहना, न करना।

२१३७—ईश्वरपर विश्वास रखकर जो भी काम किया जाता है, वही मङ्गलमय हो जाता है। विश्वास मुख्य वस्तु है।

२१३८—जगत्‌में सत्य और प्रिय बोलनेवाले बहुत ही दुर्लभ हैं।

कभी वे मिलें तो उनके दर्शनसे, उनको प्रणाम करके, उनको संतुष्ट करके, उनका सत्सङ्ग करके पवित्र हो जाओ।

२१३९—सदा सत्पुरुषोंकी सङ्गतिमें रहना।

२१४०—सावधान ! परस्त्रीकी ओर कभी दृष्टिपात भी न करना।

२१४१—दिवसका पहला और आखिरी प्रहर प्रभुके गुणगान, पठन और गुण-श्रवणहीमें बिताना।

२१४२—ईश्वरोपासनाको परम कर्तव्य मानकर उसीमें लगे रहना।

२१४३—साधनाके लिये निर्जनताका आश्रय बहुत ही उत्तम है।

२१४४—सब बातोंको छोड़कर अपने एकमात्र परममित्र परमात्मामें लीन होना ही योगकी ऊँची अवस्था है।

२१४५—जो वस्तु—जो स्थिति तुम्हें ईश्वरसे दूर रखती है, उससे तुम स्वयं दूर रहो, यही निवृत्ति है।

२१४६—सांसारिक सम्पत्ति छोड़कर परमात्मामे समायी हुई सच्ची शान्ति पाना ही सच्चा वैराग्य है। अध्यात्मज्ञानकी प्राप्ति करना ही सच्चा विलास है।

२१४७—मनमें जो कामनाएँ उठें, उन्हें मनमें ही लीन कर दो। सुखके लिये कभी कामना मत करो। कामना न करनेसे ही यथार्थ सुखका अनुभव होगा।

२१४८—जिसकी दृष्टिमें जन्म और मरण समान हैं वही सच्चा साधु है।

२१४९—लोगोंकी नजरमें जिसका दरजा ऊँचा हो गया है, समझ लो वह बहुत ही हल्का मनुष्य है।

२१५०—जिस प्रभु-प्रेमीको दुनियाके लोग नाचीज, पागल और बेसमझ समझते हैं, वह सबसे ऊँचा है। दुनियावी तराजूसे यह तराजू

न्यारा है।

२१५१—जो मनुष्य विपत्तिमें भी अपने ऊपर ईश्वरकी कृपाको देख सकता है, वह कभी मृत्युकष्टके अधीन नहीं हो सकता।

२१५२—ईश्वरकी सेवासे शरीरमें और श्रद्धासे प्राणोंमें ज्योति प्रकट होती है।

२१५३—जो कुछ भी तुम्हारा है उसका त्याग करो और 'वह' जैसी आज्ञा दे उसका पालन करो।

२१५४—ईश्वरका भय मनका दीपक है। इस दीपकके प्रकाशसे मनुष्य अपने गुण-दोष भलीभाँति देख सकता है।

२१५५—दूसरोंसे लेनेकी अपेक्षा देनेमें जिसे अधिक सुख नही मालूम होता वह सच्चा संत नहीं हो सकता।

२१५६—दुनियामें घूमना बहुत आसान है, पर उनमेंसे निकलना उतना ही मुश्किल है।

२१५७—ईश्वरके प्रति नम्र होना, उसकी आज्ञाके मुताबिक चलना, उसकी प्रत्येक इच्छाके आगे सिर झुकाना इसीका नाम ईश्वरके प्रति विनय दिखाना है।

२१५८—प्रभुपर निर्भर और उसके अधीन रहनेवाला वास्तवमें वही है, जिसने ईश्वरका दृढ़ आश्रय लिया है और जो किसी भी बातका उसे दोष नहीं देता।

२१५९—एक ईश्वरकी प्राप्तिके लिये ही जिसके मनमें वैराग्य उपजा हो वही सच्चा वैरागी है, स्वर्गके लोभसे जो वैरागी बना हो वह तो असली वैरागी नहीं।

२१६०—अपने पास बहुत-से नौकर-चाकर और भोगोंके सामान देखकर एक ज्ञानी ही फूला नहीं समाता।

२१६१—जिसने अपना अभिमानका बोझ हल्का कर लिया है, वही पार उतर सकता है। जिसने बोझ बढ़ा लिया है, वह तो डूबेगा ही।

२१६२—जो मनुष्य संसारको नाशवान् और भगवान्‌को सदाका साथी समझकर चलता है, वही उत्तम गति पाता है। जो नाशवान् चीजोंका मोह छोड़कर, संसारका भार प्रभुपर छोड़कर भाररहित हो जाता है, वह सहज ही संसार-सागरसे तर जाता है।

२१६३—इस दुनियामें इन्द्रियोंको बाँधनेके लिये जैसी मजबूत साँकल चाहिये वैसी मजबूत साँकल पशुओंको बाँधनेके लिये भी नहीं चाहिये।

२१६४—तुम्हारे पूर्वज ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन करते हुए चलते थे। रातको वे उसका चिन्तन करते थे और दिनमें उसीके अनुसार वर्ताव करते थे; परंतु तुमने वैसा करना छोड़ ही नहीं दिया, उलटे ईश्वरकी आज्ञाओंके उलटे-सुलटे अर्थ लगाकर तुम संसारमें आसक्ति बढ़ानेवाले लेख तैयार कर रहे हो।

२१६५—तुम्हारा चिन्तन तुम्हारा दर्पण है। कारण, तुम्हारे शुभाशुभका हाल वह बता देगा।

२१६६—जिसकी दृष्टि वशमें नहीं, उसे कुमार्गपर जाना पड़ता है।

२१६७—जिसने वासनाओंको पैरोंतले कुचल दिया है, वही मुक्त है।

२१६८—जबतक हृदय संकेत नहीं करता, ज्ञानी मौन रहते हैं। उनकी जीभसे वही बात निकलती है जो उनके हृदयमें होती है।

२१६९—इस दुनियामें लोगोंकी दोस्ती बाहरसे देखनेमें सुन्दर, पर भीतरसे जहरीली होती है।

२१७०—इस मायावी संसारसे सदा सचेत रहना, यह बड़े-बड़े पण्डितोंके मनको भी वशमें कर लेता है।

२१७१—जिन्हें ईश्वरकी स्तुति और ईश्वरका स्मरण करनेके बदले लोगोंको शास्त्रवचन सुनाना ही अच्छा लगता है, प्रायः उन सबका ज्ञान बाहरी—नकली है, उनका जीवन सारहीन है।

२१७२—अपनेसे छोटे और अधीनको सुधारनेके लिये भूल हो तो उसे मीठे वचनोंसे एकान्तमें उसकी भूल समझा दो, किंतु तिरस्कार-तकरार न करो।

२१७३—विपत्तिको सह लेनेमें अचरज नहीं है, अचरज है वैसी हालतमें भी शान्त और आनन्दमग्न रहनेमें । और यही ईश्वरविश्वासका लक्षण है।

२१७४—ईश्वरसे डरकर जो काम किया जाता है वह सुधरता है और जो काम बिना उसके डरके किया जाता है वह बिगड़ता है।

२१७५—जबतक लोक और लौकिक पदार्थोंमें आसक्ति रहेगी, तबतक ईश्वरमें सच्ची आसक्ति न हो सकेगी।

२१७६—जिसकी जीभ सत्य और हितकर वाणी बोलती है, वही वास्तविक वक्ता है।

२१७७—प्रभु-प्रेम मनुष्यसे प्रभुप्रेमकी बातें करवाता है । प्रभुकी लज्जा उसे असत् बोलनेमें मौन रखती है और प्रभुका भय उसे पाप करनेसे बचाता है।

२१७८—दानादि सत्कर्मोंको करते समय होनेवाली अपनी प्रशंसाकी ओर कान भी न दो। वह प्रशंसा तुम्हारी नहीं; उस ईश्वरकी महिमा है।

२१७९—पहले प्रभुके दास बनो और जबतक वैसे न बन पाओ, 'अहं ब्रह्मास्मि' 'मैं वही हूँ' ऐसा मत कहो। नहीं तो, घोर नरककी यातना भोगनी होगी।

२१८०—जो मनुष्य सांसारिक विषयों तथा विषयी लोगोंके संसर्गसे दूर रहता है और साधुजनोंका ही सङ्ग करता है, वही सच्चा प्रभु-प्रेमी है, कारण, भगवत्परायण साधुजनोंसे प्रीति करना और ईश्वरसे प्रीति करना एक ही समान है।

२१८१—सच्चे प्रभु-प्रेमीके दो लक्षण हैं—स्तुति-निन्दामें समभाव रहना और भगवान्‌से कोई भी लौकिक कामना न रखना।

२१८२—संयोगका वियोग एक दिन अवश्य होना है । संचितका क्षय अनिवार्य है। जो इस प्रकार समझ लेते हैं, वे विज्ञ पुरुष यहाँकी लाभ-हानिमें हर्ष और शोकके वश नहीं होते।

२१८३—विश्वासके चार लक्षण है—सब चीजोंमें ईश्वरको देखना, सारे काम ईश्वरकी ओर नजर रखकर ही करना, हर एक दुःख-सुखमें उसका हाथ देखना और हर हालतमें हाथ पसारना तो उस सर्वशक्तिमान्‌के आगे ही।

२१८४—मनुष्यको, जहाँतक बने, अपने दोष देखने चाहिये, उनके लिये मन-ही-मन अपनी निन्दा करनी चाहिये और अपनेको निर्दोष बनानेका सतत प्रयत्न करना चाहिये।

२१८५—जो मनुष्य दुःखमें प्रभुका आशीर्वाद देखता है, वह महान् है।

२१८६—जो मनुष्य सुखमें प्रभुका चिन्तन करता है, वह भाग्यवान् हैं।

२१८७—ईश्वरसे डरनेवालेका मन ईश्वरको नहीं छोड़ता। उसके मनमें प्रभु-प्रेम दृढ़ रहता है और उसकी बुद्धि पूर्णताको प्राप्त होती है।

२१८८—बड़प्पनको खोजनेवाला तो हलकाईको ही पाता है।

२१८९—इस संसारमें एक ईश्वरका भय दूसरे सब भयोंसे मुक्त

करता है।

२१९०—अचरजकी बात है! तेरा प्यारा मित्र तेरे समीप भी है और अनुकूल भी है, फिर भी तेरी यह हालत?

२१९१—दूसरोंके दोष-दर्शन, परनिन्दा और वृद्धों तथा सत्पुरुषोंका अपमान करनेमें मनुष्यका अभिमान ही प्रधान कारण है।

२१९२—ईश्वरकी कठोर-से-कठोर आज्ञाका पालन करनेमें भी प्रसन्न होना सीखो। ईश्वरका आदेश सुनने-समझनेकी इच्छा हो तो पहले अभिमान छोड़कर आदेशको सुनकर उसके पालनमें जुट जाओ। भयानक विपत्तिमें भी हरेक साँसके साथ प्रभुके प्रेमको बनाये रखो।

२१९३—मनुष्य कब ईश्वरार्पण हो सकता है? जब कि वह अपने-आपको, अपने हरेक कामको बिल्कुल भूल जाय, सर्वभावसे उसका आसरा ले ले और उसके सिवा किसी दूसरेकी न आशा रखे, न किसीसे सम्बन्ध ही रखे।

२१९४—जबतक मैं-मेरा है, तबतक तुम उलटी ही राहपर हो। जहाँ निःस्वार्थ और सच्ची श्रद्धा है, वहीं धर्मका बल है।

२१९५—जहाँ उपदेश अधिक होता है, वहाँ गम्भीरता कम होती है, जहाँ गम्भीरता अधिक होती है, वहाँ उपदेश कम होती है।

२१९६—भगवान्‌ने तुम्हारे लिये जो रच रखा है, उसका विरोध करना तुम्हारे ओछे स्वभावका परिचयमात्र है।

२१९७—जगत्‌की तमाम चीजोंके रचनेवाले भगवान्‌को प्राप्त करना किसी भी चीजको प्राप्त करनेकी अपेक्षा सहज है तो भी तुम उससे दुनियावी चीज ही चाहते हो, यह कैसी बात है?

२१९८—जो मनुष्य स्वर्गादि सुखोंके लिये ईश्वरकी पूजा करता है, वह तो अपनी ही पूजा करता है और जो ईश्वरके लिये ईश्वरकी सेवा

करता है, वह भी ईश्वरको नहीं जानता; क्योंकि ईश्वरको न तो तुम्हारे द्वारा सेवा करानेकी जरूरत है, न चाह ही है। जो ईश्वरको प्रेमके लिये पूजता है, जिससे पूजे बिना रहा नहीं जाता, वही यथार्थ पूजता है।

२१९९—धन, अधिकार और उच्च स्थिति आदिका क्या मूल्य है? प्रथम तो वे स्वल्प और अपूर्ण हैं, दूसरे जितने जो कुछ हैं वे भी अनित्य ही हैं। आज हैं कल नहीं। उनपर गर्व करना और उनके कारण अपनेको ऊँचा तथा दूसरोंको नीचा समझना तो वास्तवमें मूर्खता ही है।

२२००—जो मनुष्य हर हालतमें अपनेको और तमाम वस्तुस्थितियोंको भगवान्में ही देखता है, वही तमाम वस्तुओंकी इच्छाका त्याग कर सकता है।

२२०१—अपनी दुनियावी स्थिति और शक्तिपरसे विश्वास उठ जाना भी प्रभुकी महत्त्वपूर्ण सेवा है, क्योंकि ऐसा होनेपर ही मनुष्य ईश्वरसेवाकी योग्यता प्राप्त करता है।

२२०२—जो भी भक्त या साधु अपने ज्ञान-वैराग्यके लिये मनमें गर्व रखता है, वह तो ज्ञान-वैराग्यका उपहास ही कराता है; तुम अपने किसी भी वैराग्य या निवृत्तिके लिये क्या गर्व करते हो? ईश्वरके निकट तुम्हारा यह सब कुछ मच्छरकी पाँखके बराबर हैं।

२२०३—जिस मनुष्यका मन प्रभुचिन्तनकी ज्योतिसे प्रकाशित है और जिसमें सदा प्रभुका ही विश्वास भरा है वही सच्चा ज्ञानी है।

२२०४—इन चार बातोंका पालन करोगे तो तुमसे शुद्ध साधना हो सकेगी—१—भूखसे कम खाना, २—लोकप्रतिष्ठाका त्याग, ३—निर्धनताका स्वीकार और ४—ईश्वरकी इच्छामें संतोष।

२२०५—भोजन अपवित्र होता है तो एकान्तमें भी उत्तम साधना नहीं हो सकती और ईश्वरके अर्पण किये बिना कोई भी वस्तु पवित्र हो

नहीं सकती।

२२०६—अन्यायसे प्राप्त की हुई वस्तुका उपभोग करनेवालेके तमाम अङ्गोंमें पाप लिपट जाता है। अपनी इच्छा न होनेपर भी ऐसा आदमी पापमें ही डूबता जाता है। जो मनुष्य न्यायपूर्वक मिली हुई पवित्र वस्तुका उपभोग करता है, उसके तमाम अङ्ग साधनके अनुकूल ही बर्तते हैं।

२२०७—जो सच्ची निवृत्ति चाहता है, उसे चाहिये कि वह तमाम पापोंको और उल्टी समझको छोड़ दे।

२२०८—तुम जो कुछ भी करो अगर वह ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार नहीं है तो तुमको दुःख ही मिलेगा।

२२०९—भक्त जबतक परमात्मासे प्रेम नहीं करता और मृत्युको याद नहीं रखता, तबतक उससे सर्वाङ्गसुन्दर तप नहीं हो सकता।

२२१०—जीवनके कार्य जबतक पवित्रतासे न हों तबतक लोगोंका विश्वास नहीं जमता। सच्ची निवृत्ति तो प्रभुके विशुद्ध प्रेमसे ही उपजती है और विशुद्ध प्रेमकी पूर्णता तभी होती है जब प्रभुके दर्शन होते हैं।

२२११—जिनमें प्रभुका विशुद्ध प्रेम नहीं है वे लोग प्रपञ्चको दोष न समझकर गुण ही मानते हैं।

२२१२—जो मनुष्य समझ-बूझकर अपनी इच्छासे परमात्माकी पूजा नहीं करता, उसको तो बाध्य होकर मनुष्योंकी पूजा ही तो करनी पड़ेगी।

२२१३—जो भगवान्‌को छोड़कर दूसरे किसी पदार्थमें सुख मानता है, उसका तो मन ही दूषित है। उसके हृदयमें प्रभुविश्वास और पवित्रताकी ज्योतिका प्रकट होना कठिन है।

२२१४—जो मनुष्य भगवान्‌को छोड़कर दूसरी बातोंमें फँसा रहता है, वह अपने ही हाथों अपना गला काटता है।

✓२२१५—जो मनुष्य अपने सब पदार्थ मान-प्रतिष्ठा और लोक-परलोक सबकी अपेक्षा भगवान्‌को ही बड़ा समझकर भगवान्‌में ही प्रेम रखता है, उसीके हृदयमें सदाके लिये आध्यात्मिक सूर्य उगता है।

२२१६—तुम बाहरसे निर्धन दीखनेवाले सच्चे साधुओंका अभिमानवश अपमान करते हो, पर निश्चय समझना कि सर्वोत्तम सम्पत्तिवान् वे ही हैं।

✓ २२१७—छः चीजोंका आश्रय लेना चाहिये (१) ईश्वरीय ग्रन्थका अवलम्बन, (२) ऋषि-मुनियोंद्वारा प्रचार की हुई ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन, (३) खान-पानकी पवित्रता, (४) दुःख देनेवाले और निन्दा करनेवालेको दुःख न देना और निन्दा न करना, (५) निषिद्ध कामोंसे दूर रहना और (६) जो कुछ देनेका विचार हो तुरंत दे डालना।

✓२२१८—धर्मके मूल तीन हैं—(१) विचार और आचरणमें महात्माओंके मार्गपर चलना, (२) खान-पानको पवित्र रखना और (३) सत्कार्यमें ही स्थिति और प्रीति रखना।

✓ २२१९—दो चीजें मनुष्यका विनाश करनेवाली हैं—(१) मान-बड़ाईके लिये दौड़ना है और (२) निर्धनतासे डरना।

२२२०—इस जगत्‌में प्रभुके समान कोई भी सच्चा सहायक नहीं है और प्रभुके भेजे हुए महापुरुषोंके समान अच्छे मार्गको कोई दिखानेवाला नहीं है।

✓२२२१—मनको अच्छे मार्गपर चढ़ानेके लिये चार सीढ़ियाँ हैं—(१) सत्यका स्वीकार, (२) संसारमें उपरामता, (३) आचरणकी पवित्रता तथा उच्चता और (४) पापोंके लिये भगवान्‌से क्षमा-प्रार्थना।

✓२२२२—जिनका मन मलिनतासे मुक्त और सद्विचारोंसे युक्त है,

ईश्वरकी समीपतासे जिसके मायाके बन्धन कट गये है और जिसकी नजरमें धूल और सोना समान है, वही सच्चा ज्ञानी है।

२२२३—अल्प आहारमें, चित्तकी शान्तिमें, लोकसंसर्गके त्यागमें साधुता भरी है।

२२२४—विशेष जरूरतकी भी कोई चीज तुम्हारे पास न हो तो यह विश्वास करो कि तुम्हारे भलेके लिये ही प्रभुने ऐसा किया है। इसीका नाम प्रभुपर निर्भरता है।

२२२५—सारे सम्बन्धों और चिन्तनोंसे रहित होकर ईश्वरसे ही सम्बन्ध जोड़ना और उन्हींका चिन्तन करना, इसीका नाम आन्तरिक निर्भरता है।

२२२६—आत्मसमर्पण किये बिना प्रभुपर निर्भर नही हुआ जा सकता और स्वार्थ छोड़े बिना आत्मसमर्पण नहीं होता।

२२२७—प्रभुपर निर्भर रहनेके तीन लक्षण हैं—(१) दूसरेसे कुछ भी न माँगना, (२) मिले तो भी न लेना और (३) लेना ही पड़े तो बाँट देना।

२२२८—प्रभुपर निर्भर करनेवालेको तीन चीजें मिलती हैं—(१) प्रभुके प्रति पूर्ण श्रद्धा, (२) अध्यात्मविद्याका प्रकाश और (३) प्रभुका साक्षात्कार।

२२२९—ईश्वरने तुमको जो कुछ देना कबूल कर रखा हैं, उसमें जरा भी संदेह न रखना, इसीका नाम निर्भरता है।

२२३०—जिस चीजकी जरूरत हो उस चीजके लिये उसीसे जान-पहचान करनी पड़ती है कि जिसके पास वह हो। तुमको मोक्ष और सुख चाहिये तो तुम्हें ईश्वरसे ही परिचय करना होगा; क्योंकि ये उन्हींके पास भरपूर हैं, संसारके भाई-बन्धुओंके पास नहीं।

२२३१—जैसे सत्पुरुष बड़े-बूढ़ोंका अभिवादन करके सुखी होते हैं, वैसे ही मूर्खलोग सत्पुरुषोंकी निन्दा करके प्रसन्न होते हैं।

✓ २२३२—अपकार करनेवालेका बदला अपकारसे न देकर उपकारसे देना और उसके लिये प्रभुसे क्षमा-याचना करना यही साधुता है।

✓ २२३३—जिसको भगवान्‌का प्रेम प्राप्त है वह मनुष्य भयानक-से-भयानक रोगमें, बड़ी-से-बड़ी विपत्तिमें और दारुण अन्न-कष्टमें भी धीरज और कृतज्ञताको अटल रखता है।

✓ २२३४—चार बातोंमें मनुष्यका कल्याण है—(१) वाणीके संयममें, (२) अल्प-निद्रामें, (३) अल्प आहारमें (४) एकान्तके भगवत्स्मरणमें।

✓ २२३५—मनुष्यके सङ्गका क्या भरोसा? वह मर जाये तो फिर उसका सङ्ग कैसे मिलेगा? तब भगवान्‌का ही सङ्ग करना होगा। इसलिये पहलेसे ही भगवान्‌का सङ्ग क्यों न किया जाय?

२२३६—जिसका हृदय भगवान्‌के प्रेमसे कोमल हो गया है, उसके पास पापरूपी असुर नहीं आ सकता।

२२३७—जीवनमें पाँच बातें अमूल्य रत्न हैं—(१) ऐसी फकीरी जो अपार आन्तरिक सम्पत्तिका दर्शन करा दे, (२) ऐसा त्याग जो अखण्ड तृप्तिके दर्शन करा दे, (३) ऐसा दुःख जो नित्यप्रसन्नताके दर्शन करा दे, (४) ऐसी वीरता जो शत्रुके प्रति भी मित्रताके दर्शन करा दे और (५) ऐसी साधना तथा ऐसा भगवान्‌का स्मरण जो भगवान्‌के दर्शन करा दे।

२२३८—प्रभु और जीवके बीचमें अभिमानके समान अन्तराय दूसरा नहीं है।

२२३९—जो मनुष्य अभिमानी होता है, वह प्रभु-भक्त नहीं हो सकता। जो ईश्वरसे डरकर नहीं चलता, वह विश्वासपात्र नहीं बन सकता और जो विश्वासपात्र नहीं बनता, वह प्रभुके अटूट भण्डारकी चाबियोंको नहीं पा सकता।

२२४०—प्रभुकी प्राप्तिके लिये दीनता और हीनताके समान सहज मार्ग नहीं है।

२२४१—जो मनुष्य दूसरोंके हितके लिये लापरवाह और स्वार्थसाधनमें तत्पर होता है, उसमें सत्यकी सुगन्ध नहीं निकलती, झूठकी ही दुर्गन्ध निकलती है।

२२४२—संसारमें रहकर भगवान्‌की आज्ञाका पालन करना संसारमें ही स्वर्गकी प्राप्तिके समान है; इस स्वर्गकी विशेषता है कि इसमें कोई विपत्ति नामकी चीज ही नहीं रहती।

२२४३—वीरताकी परख तीन बातोंमें होती है—(१) असत्यका आचरण न करके जीवन-निर्वाह करना, (२) जरूरी चीज न मिले तब भी प्रभुकी प्रशंसा करना और (३) बिना माँगे दान देना।

२२४४—ईश्वरके आश्रित मनुष्योंके तीन लक्षण होते है—(१) उसके विचारोंका प्रवाह ईश्वरकी ओर ही बहता है, (२) ईश्वरमें ही उसकी स्थिति होती है और (३) ईश्वरकी प्रीतिके लिये ही उसके सारे कार्य होते हैं।

२२४५—जिस मनुष्यको अधिकार और मालिकी प्यारी होती है, वह भगवान्‌को नहीं पा सकता।

२२४६—मैं एक ऐसा मार्ग जानता हूँ कि जिसपर चलनेसे जल्दी-से-जल्दी ईश्वरके पास पहुँचा जा सकता है। वह मार्ग है किसीसे कुछ भी न चाहना और अपने पास ऐसा कुछ भी न रखना जिसके लिये

दूसरेके मनमें चाह हो।

२२४७—अपनी जीभको निन्दा-स्तुतिसे सदा दूर रक्खो। हे युवको! जबतक तुम बूढ़े और कमजोर नहीं हो जाते तभीतक अपने जीवनके मुख्य कामको पूरा कर लो। बुढ़ापेमें यह काम नहीं होगा।

२२४८—धनवान् पड़ोसी और राजदरबारके पण्डितोंसे दूर रहना। नीचे लिखे परिणामसे अधिक मिले तो उसको अनावश्यक और बोझरूप मानना चाहिये—(१) प्राण रहे इतना अन्न, (२) प्यास मिटे इतना जल, (३) लाज बचे इतना वस्त्र, (४) रहनेभरका घर और (५) उपयोगी हो इतना-सा ही लौकिक ज्ञान।

२२४९—कहनीके समान रहनी न हो, इसीका नाम ठगी है।

२२५०—अपने दोषोंको न देखना और न सुधारना, इसीका नाम धर्मान्धिता है।

२२५१—जिस शक्तिसे इन्द्रिय और मन वशमें किये जा सकें उसीका नाम शक्ति है।

२२५२—जो मनुष्य सम्पत्तिका सदुपयोग नहीं कर सकता, उसकी सम्पत्ति इतनी जल्दी नष्ट होगी कि पता ही नहीं लगेगा।

२२५३—मन तीन प्रकारके होते हैं—(१) पहाड़-जैसा अडिग जिसको कोई नहीं हिला सकता, (२) पेड़-जैसा जो बाहरके संयोगरूपी हिलोरोंसे हिला करता है और (३) तिनके-जैसा जिसको बाह्य संयोगरूपी हवा कहीं-का-कहीं फेंक देती है।

२२५४—जिस अन्तःकरणमें संसारी लालसाएँ भरी होती हैं उसमें ये पाँच बातें नहीं रह सकतीं—(१) ईश्वरका भय, (२) ईश्वरकी आशा, (३) ईश्वरपर प्रेम, (४) ईश्वरसे लज्जा और (५) ईश्वरके साथ मित्रता।

२२५५—किसीके आत्मज्ञानका माप वह ईश्वरके समीप कितना पहुँच गया है, इसीसे हो सकता है।

२२५६—जो मनुष्य सत्यके लिये धीरजको बचा सकता है, वही आगे बढ़ता है।

२२५७—भजन-पूजन यदि विशुद्ध निष्काम भावसे भगवान्‌के लिये ही किया जाय तो उससे भगवान्‌की प्राप्ति होती है।

२२५८—प्रभुप्रेमी मनुष्य जब अपने शरीरके प्रति स्नेहरहित हो जाता है, तभी उसकी साधना और उसका जीवन सुखरूप बनता है।

२२५९—जबतक एक गाँवको नही छोड़ा जा सकता, तबतक दूसरे गाँवमें नहीं पहुँचा जा सकता, इसी प्रकार जबतक मनुष्य संसारका सम्बन्ध नही छोड़ सकता, तबतक वह प्रभुके स्थानमें नहीं पहुँच सकता।

२२६०—जो चीज अपनी नहीं है, उसको जो अपनी मानता है, वह प्रभुकी दृष्टिमें नीचे पड़ता है।

२२६१—लोगोंमें जिसका परिचय जितना ही अधिक होता है, उसकी सत्यतामें उतनी ही न्यूनता होती है।

२२६२—केवल अनुमान और शङ्काओंपर निर्भर करके ही किसी उत्तम मनुष्यसे दूर नहीं हटना चाहिये।

२२६३—जिस मनुष्यको भगवान्‌का प्रेम प्राप्त करना हो, उसे अपना हरेक व्यवहार सर्वज्ञ प्रभुसे डरकर करना चाहिये।

२२६४—यदि तुम सरलताको वाहन और सत्यको शस्त्र बनाकर चलो तो निश्चय समझना कि भगवान् भी तुम्हारी इच्छा करेंगे।

२२६५—न तो ईश्वरसे स्वर्गकी कामना करो और न नरकसे बचानेकी याचना करो। शरणागतिका यही आदर्श है।

२२६६—संसारमें ईश्वरके सिवा और जरा भी सार वस्तु नहीं है।

जबतक तुम्हारे हृदयमें यह बात धँस न जाती तबतक सच्चा वैराग्य नहीं मिल सकता।

२२६७—जो वस्तु प्रभुसे दूर रक्खे, उसके छोड़ देनेका नाम ही वैराग्य है। चाहे वह कितनी ही मूल्यवान् और आवश्यक हो।

२२६८—फकीरीकी शोभा तीन बातोंमें है—(१) हृदयकी विशालता, (२) अन्तःकरणकी शान्ति और (३) निष्पापबुद्धि।

२२६९—धनके अभिमानी मनुष्यका तीन बातोंसे जरूर सम्बन्ध होता है—(१) क्लेश, (२) अशुभ विचार और (३)—पापकी बुद्धि!

२२७०—बुद्धिमान् कौन है ? जो संसारसे प्रेम हटाकर भगवान्में प्रेम करे। धनवान् कौन है ? प्रभु जो दे, उसीमें संतोष करे। चतुर कौन है ? जिसको संसारके भोग न फँसा सकें। त्यागी कौन है ? जिसके मनमें संसारकी कोई कामना नहीं। कृपण कौन है ? जो ईश्वरके दिये हुए धनका उचित दान करनेमें संकोच करे।

२२७१—चार मनुष्य प्रभुको विशेष प्रिय होते हैं—(१) अहङ्कार- रहित विद्वान्, (२) तत्त्व जाननेवाले संत, (३) विनयी धनवान् और (४) प्रभुकी महिमा जाननेवाला त्यागी।

२२७२—चाहे जैसी बुरी-से-बुरी अवस्थामें भी प्रभुपर जरा भी दोषारोप न करो तो समझो कि तुम्हारा प्रभुपर विश्वास है।

२२७३—यदि दयालु प्रभु मुझे घरसे या देशसे निकाल दें, बिल्कुल दरिद्र बना दें, मोहताज और जन्मरोगी बना दें तो भी मैं तो उनपर प्रेम ही रक्खूँगा।

२२७४—अगर तुम्हारेमें अवगुण हैं और दूसरे मनुष्य तुम्हें अवगुणी न कहकर सद्गुणी बतलाते हैं और उससे तुमको संतोष होता

है, यह कैसे आश्चर्यकी बात है।

२२७५—दो आँखोंसे और अल्पज्ञानसे तुम जितना देख या जान सकते हो. हजारों आँखोंवाले सर्वज्ञ प्रभु तुम्हारे हितकी बात उससे बहुत अच्छी देख और जान सकते हैं। इस बातको कभी मत भूलना।

२२७६—तुम कभी अपने मनमें यह चिन्ता न करना कि हाय! अमुकने कितने पैसे कमा लिये है, पर मैं गरीब हूँ। इसके बदले, यह विचार करना कि हाय! अमुकने भगवान्‌का जितना भजन किया, उसको देखते मैंने तो कुछ भी नहीं किया।

२२७७—शाश्वत शान्तिके केन्द्र हैं—'भगवान्'। वे सदा सबके हृदय-मन्दिरमें विराजमान हैं। शान्ति उनके चरण चूमती है और उसी शाश्वती शान्तिके स्पर्शसे ही मनुष्यके मनमें शान्ति आती है।

२२७८—सारी चिन्ताओंके दूर करनेवाले सर्वशक्तिमान् भगवान्‌का चिन्तन करो, वे तुम्हारे परम सुहृद् है और सदा तुम्हारी सहायता करनेके लिये तैयार है।

२२७९—जो मनुष्य संसारी मनुष्योंका संग छोड़कर निर्जन स्थानमें रहता है, उसे भगवान्‌का स्मरण और प्रभुकृपाके चिन्तनको छोड़कर और कुछ करना ही नहीं चाहिये। इसके बिना जो एकान्त सेवन किया जाता है, वह तो प्रमाद, विपत्ति और मृत्युतकको बुलानेवाला होता है।

२२८०—सच्चा साधक काञ्चन-कामिनीके कारण धर्मसे च्युत नहीं होता, परुष वचन सुनकर क्रोध नहीं करता, अपमानसे अस्वस्थ नही होता, लोभसे सत्यका त्याग नही करता, दुःखमें उसका धैर्य और उद्यम कम नही होता। वह सदा साधनपरायण, सदा स्वस्थ और सदा भगवान्‌में चित्त लगाये रहता है।

२२८१—एक ओर भोग है, जिनसे जन्म-मरण, सुख-दुःख

आदिका चक्र चालू रहता है और दूसरी ओर भोग-त्याग है, जिससे मोक्ष मिलता है। यह मोक्ष भोग-त्याग और सच्चे ज्ञानके बिना नहीं मिलता।

२२८२—मनुष्य जो उपवास करता है या व्रत-नियम लेकर भोग-त्याग करता है वह उत्तम है, पर वह होता है थोड़े कालके लिये। अन्तःकरणमें मनके भीतर भोगके सुखका रसास्वादन बना ही रहता है, जो अवसर मिलनेपर विशेष बलपूर्वक भभक उठता है।

२२८३—विवेक, विचार, भोग-त्याग, कर्मफल-त्याग और सत्य तथा प्रिय वाणीका सेवन—इन सबको करते-करते चित्त भगवान्‌में लीन होता है।

२२८४—प्रभुकी प्रसन्नताके लिये दरिद्रता और अपमानको सिर चढ़ाना संतोषका काम है।

२२८५—संसारसे सम्बन्ध तोड़ देना, लोक-संसर्गसे दूर रहना और सदा-सर्वदा सत्य और प्रभुकी तरफ ही झुके रहना सच्चा त्याग है।

२२८६—जिस मनुष्यमें ईश्वरका स्मरण-चिन्तन करनेकी ताकत है, उस मनुष्यको गरीब या लाचार न समझकर बड़ा धनी समझना और जिसके पास यह सम्पत्ति और शक्ति न हो, वह बड़ा भारी बादशाह होनेपर भी सबसे बड़ा गरीब और अनाथ है।

२२८७—जो मनुष्य श्रोताओंको मौखिक ज्ञानसे ही ईश्वरप्राप्तिका मार्ग दिखलाता है, वह तो उन्हें दुर्दशामें ही डालता है जो मनुष्य अपने उत्तम आचरणद्वारा भगवान्‌का मार्ग दिखलाता है वही सच्चा पथप्रदर्शक है।

२२८८—हृदयकी सरलता और निर्मलता ईश्वरीय ज्योति है। इनसे ईश्वरका मार्ग दीखता है। क्षमा भगवान्‌की ओर आकर्षित करती है। प्रभुका भय पापसे निवृत्त करता है और प्रभु-महिमाका ध्यान इस सत्यके मार्गको काटता चला जाता है।

२२८९—किताबोंके पढ़ने-सुननेसे अथवा लिखने-लिखानेसे भगवान् नहीं मिलते। भगवान्की प्राप्तिमें तो आत्मनिग्रहसे भरा हुआ भगवान्का प्रेम ही महान् कारण है।

२२९०—निवृत्ति किसे कहते है? भगवान्के सिवा सम्पूर्ण विषयोंसे वृत्तियाँ हटा लेनेको।

२२९१—जो मनुष्य लड़ाईमें दूसरोंको जीतना चाहता है, उसको छत्तीसों हथियारोंके प्राप्त करने और चलानेकी जरूरत पड़ती है, परंतु अपने मरनेके लिये एक छोटी-सी छुरी काफी है, इसी प्रकार दूसरोंको जीतकर पण्डिताई फैलाने और मान प्राप्त करनेके लिये बहुत-सी विद्याओंकी जरूरत है, परंतु भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये तो आचरणका सुधार करके उनके नाम जपनेकी विद्या सीख लेना ही काफी है।

२२९२—जो मनुष्य परमेश्वरको छोड़कर दूसरी बातोंकी चर्चा और चिन्ता करता है, वह अपने कौल-करारको भूला हुआ है।

२२९३—जो मनुष्य भोगोंके लिये भगवान्को बेच देता है, उससे बढ़कर अभागा और कोई नहीं।

२२९४—राजा, अफसर और बड़े आदमियोंसे दूर रहना; क्योंकि उनका स्वभाव, बालकों-जैसा अस्थिर और उनका प्रताप बौखलाये हुए बाघके समान हानिकारक होता है।

२२९५—जो मुँहसे बोलना जानता है; वह ठग है, परंतु जो बोलता है, वैसे ही चलता है, वही पण्डित है।

२२९६—जो मनुष्य लोगोंके सामने भगवान्की बातें करता है, परंतु हृदयमें मान-बड़ाई और ऐसी-वैसी वस्तुओंको स्थान देता है, उसे देर-सबेर बेआबरू होकर आफतमें पड़ना ही पड़ेगा, फिर जब वह अपनी भूलको देखकर और स्वीकार करके सच्चा पश्चात्ताप करेगा और

ऐसे कामोंको छोड़कर प्रभुपरायण बन जायगा, तभी तमाम संकटोंसे छूटेगा।

२२९७—जो मनुष्य संसार-त्याग और प्रभुपरायणताकी पोशाक पहनकर लोगोंके सामने हाथ फैलाता है, उसमें लोगोंकी श्रद्धा और दया नहीं रह सकती। आखिर उसे गिरना ही पड़ता है और उसका जीवन निराशा तथा विपत्तियोंमें ही बीतता है। फिर उसके हाथमें रह जाते हैं—अफसोस और अवगुण।

२२९८—जो मनुष्य प्रभु और प्रभुके प्रेमियोंका गुण गानेके बदले अपना ही गुण गाना और गवाना शुरू कर देता है, वह बेचारा दयाका पात्र है।

२२९९—जो मनुष्य अपने चरित्रको सावधानीके साथ जाँच करता है, उसे अपनी बहुत-सी भूलें और पतनके स्थान दिखलायी पड़ने लगते हैं और वह सुधरकर ऊपरकी सीढ़ियोंपर चढ़ सकता है।

२३००—तुम कभी किसी मनुष्यको गिरते-पड़ते देखो तो उसकी ओर तिरस्कार न दिखलाकर दया ही दिखलाना और सावधान रहना कि तुम्हारे जीवनमें कहीं ऐसा मौका न आ जाय।

२३०१—त्याग-वैराग्यका गर्व धनवानोंके धन-मदकी अपेक्षा बहुत अधिक खराब है।

२३०२—अपने लिये इस लोक और परलोककी किसी चीजको कभी न चाहना यही सच्ची साधुता है। जिसमें यह साधुता न आ सके, वह तो साधु नामको कलंकित करता है।

२३०३—जो मनुष्य भगवत्-प्राप्तिकी साधना न करके संसारकी साधनामें ही डूबा रहता है, उसे लोक-परलोकमें दुःख और नुकसान ही मिलते हैं।

२३०४—उदारताके समान सद्‌गुण नहीं है और कृपणताके समान

कोई अवगुण नहीं है।

२३०५—जीभको काबूमें रक्खो और सारा बल लगाकर मनको वशमें करो।

२३०६—सुखकी इच्छासे हमारा मन दुःखसे भरपूर जगत्‌के भोगोंकी ओर फँसा है। उसमेंसे वापस लौटाकर इसे परमात्मामें जो आनन्दका अमित भण्डार है, लगाना है। इस कार्यमें सहायता देनेवाले पुरुषोंका ही संग और ऐसे ही ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये।

२३०७—अगर तुम दुःखसे सर्वथा रहित दशाको प्राप्त करना चाहते हो तो संसारको प्रणाम करके चल निकलो और स्वर्गसे भी नौ गज दूरसे ही प्रणाम करके हटे रहो। इस लोक और परलोकके छोड़े बिना परमधाम नहीं मिलता।

२३०८—लोग मुझको ईश्वरकी आराधनामें लगा हुआ जानें और देखें तो ठीक है, ऐसे विचारमें कभी न पड़ना। यह दम्भ है और मनका धोखा है। ईश्वरके प्रेममें दिखावेकी क्या जरूरत ?

२३०९—तुम चाहे किसी भी मार्गपर चलो, परन्तु भोगकी इच्छाका—विषय-सुखकी वाञ्छाका त्याग किये बिना तुम्हें अखण्ड शान्ति, अखण्ड आनन्दस्वरूप मोक्षकी प्राप्ति होगी ही नहीं।

२३१०—प्रभुके ही प्रेमपात्र बननेकी ही कोशिश करो। याद रक्खो, संसारके प्रेमपात्र बनने जाओगे तो नरक और अधोगति तैयार है। यह सार-की-सार बात है।

२३११—जो भगवान्‌की प्राप्तिके लिये जूझता है, उसकी सहायता करनेमें प्रभुको बड़ा ही आनन्द आता है।

२३१२—साधुओंकी सेवासे तीन गुण मिलते हैं—विनय, प्रभुभक्ति और उदारता।

२३१३—जिसकी ऐसी इच्छा हो कि प्रभु सदा मेरे साथ रहें,

उसको सत्यसे कभी न डिगना चाहिये।

✓२३१४—प्रभु-प्रेमीके लक्षण क्या है? (१) प्रभु-प्रेमीको इस लोक और परलोकके कोई भी पदार्थ अच्छे नहीं लगते, (२) उसका अन्तःकरण प्रभुकी महिमा और चिन्तनमें डूबा रहता है, (३) उसके मनमें प्रभुकी सेवाको छोड़कर कोई वासना नहीं रहती, (४) अपने परिवारमें रहकर खाता-पीता, बोलता-चालता और उठता-बैठता हुआ भी वह अपनेको विदेशी मेहमान ही मानता है, क्योंकि उसका जिस परम सखा प्रभुके साथ प्रेम है, वह उसे वहाँसे हटने ही नहीं देता, इस भेदको कोई अनुभवी ही जानते है।

२३१५—रास्ता खुला है, सत्य चमक रहा है, जो तुम्हें बुला रहा हैं, वही तुम्हारी प्रार्थना भी सुन रहा है, फिर शङ्काका और वक्त गँवानेका क्या काम? यह या तो तुम्हारा मोह है अथवा आलसी स्वभाव है।

२३१६—सद्गुणसे सुख होता है और दुर्गुणसे दुःख। चित्तकी शान्ति ही सुख है और चित्तकी अशान्ति ही दुःख है, अतएव प्रत्येक उपायसे अपने दुर्गुणोंको निकालकर सद्गुणोंको धारण करो। इसीसे सच्ची शान्ति मिलेगी।

२३१७—जब भक्त सच्ची निष्ठाके साथ भगवत्-प्रेमकी साधना आरम्भ करता है, तभी उसे उसकी मधुरताका स्वाद आता है।

२३१८—तुम शान्ति और आनन्द ढूँढ़ते फिरते हो और भटकते हो संसारके विषयोंमें; मूर्ख, कहाँ पाओगे? ये दोनों चीजें तो प्रभुके खजानेमें ही मिलती हैं।

२३१९—तुम अपनेको साधनाके समुद्रमें फेंक दो। सुख-दुःखकी कोई परवा न करो, हिम्मत और धीरज रखना, प्रभु अपने दयाके जहाजको लेकर सदा तुम्हारे साथ हैं।

२३२०—ईश्वरतक पहुँचानेकी पहली सीढ़ी है प्रभुकी सत्तापर

विश्वास और अन्तिम सीढ़ी है प्रभुपर विश्वास।

२३२१—साधक दो प्रकारके होते हैं—संसारी, भगवदीय। संसारी साधक जगत्‌को ही पहचानते हैं और उसीको खुश करनेमें लगे रहते हैं और भगवदीय साधक प्रभुको पहचानते हैं, इसलिये वे अपना हर एक साँस प्रभुकी प्रसन्नताके लिये ही लेते हैं।

२३२२—उत्तम मनुष्य दो प्रकारके हैं—एक वे जो प्रभुके सिवा और किसी चीजको जानते और चाहते ही नहीं और दूसरे वे जो प्रभुके विधानपर विश्वास करते हैं। इनमें पहले उच्च कोटिके हैं और दूसरे निम्न कोटिके।

२३२३—ईश्वरभक्तोंकी उत्तम पोशाक तीन तरहकी होती हैं—पवित्रता, विनय और प्रभुपर दृढ़ विश्वास।

२३२४—जो मनुष्य भोगोंके सहवासमें रहना चाहता है, वह भगवान्‌के सहवासके लिये नालायक है।

२३२५—जब तुम इस बातको समझोगे कि सच्चा कल्याण किस बातमें है और उसीकी खोज करोगे तब तुम्हारा अहंकार गलने लगेगा और कमजोरियाँ सामने आ जायँगी। इसी स्थितिमें तुम दीन होकर भगवान्‌की सहायता चाहोगे। भगवान् तो सहायता देंगे ही।

२३२६—कौन-सी दीनता! जो तुम्हारे हृदयको भगवान्‌के सामने उघाड़ दे, अहङ्कार और घमण्डको चूर-चूर कर दे। दीनता ईश्वरके प्रति ही होनी चाहिये, भोगोंके प्रति नहीं।

२३२७—शुद्ध कर्तव्य-बुद्धिसे किये जानेवाले कर्ममें भी सुख है, परंतु उसमें वह सुख नहीं है जो अपने प्राण-प्रियतम प्रभुकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले कर्ममें होता है।

२३२८—जो मनुष्य छोटे पापोंको बहुत मामूली समझकर किये जाता हैं, वह थोड़े ही समय बाद बड़े-बड़े पापोंसे और अन्तमें महान् विपत्तिसे घिर जाता हैं।

२३२९—अगर तुम प्रभुके प्रेमी हो अथवा प्रभुकी कृपा प्राप्त करना चाहते हो तो जब भी कोई शुभ कर्म करो तब लोगोंसे वाह-वाही पानेकी, मान मिलनेकी, स्मारक रहनेकी और लोकप्रतिष्ठाकी किसी भी भावकी ओर किसी भी वस्तुकी मनमें जरा भी इच्छा न रखना, नहीं तो धोखा खाओगे।

२३३०—तुम जो कुछ भी सत्कार्य करो, ऐसा मन लगाकर करो कि सारे जगत्में भगवान्ने वह काम केवल तुमको ही सौंपा है और सौंपा भी है तुमको अकेले जानकर गुप-चुप करनेके लिये ही।

२३३१—मनुष्यके जीवनमें जितने दिन बाकी हैं, यदि वह उनका ही सदुपयोग करे तो भगवान् उसकी पहलेकी सारी भूलों और पापोंको धोकर उसे क्षमा कर देंगे और अपना लेंगे।

२३३२—मान-बड़ाईकी प्राप्तिमें, यदि मनमें हर्ष होता हो तो जान लेना चाहिये कि मान-बड़ाईमें आसक्ति और कामना है। चाहे ऊपरसे न दीखती हो। लोकोपकारके नामपर मान-बड़ाईका स्वीकार करना तो और भी धोखेकी चीज है।

२३३३—जो लोग प्रशंसा सुनकर तनिक भी हर्षके विकारसे ग्रस्त नहीं होते और निन्दा सुनते ही धीरताके साथ गहराईसे आत्मनिरीक्षण करने लगते है, वे ही सच्चे बुद्धिमान् साधक हैं।

२३३४—मनुष्यको ऐसा कोई भी दोषयुक्त कार्य कभी छिपकर भी नहीं करना चाहिये, जिससे भगवान्की दृष्टिमें वह दोषी सिद्ध हो।

२३३५—सच्चा साधक जबतक प्रभु-प्रेमी नहीं बन जाता—लोगोंको मुँह नहीं दिखाता। लोग बुलवाना चाहें तो भी नहीं बोलता, विपत्तिमें खेद नहीं करता, सम्पत्तिमें फूलता नहीं, डरता नहीं और डराता भी नहीं, किसीको वचन देता नहीं और किसीसे वचन माँगता भी नहीं। गुप-चुप अपनी सीधी राह जाता है। यह साधककी बात है, सिद्धकी

सिद्ध जानें।

२३३६—सब कुछ खोकर भी यदि मनुष्य भगवत्प्रेम प्राप्त कर ले और प्रभुकी सन्निधि प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो जाय तो जानना चाहिये कि उसका जीवन सफल हो गया।

२३३७—भय कई तरहके हैं; इसलिये जो भय तुमको पापोंसे दूर रक्खे उस भयकी भी इच्छा करनी चाहिये।

२३३८—आशाएँ भी बहुत प्रकारकी है, परंतु जो आशा तुम्हें प्रभुकी राहपर चलावे, उसे तो मित्र ही मानना।

२३३९—जो मनुष्य दुनियावी बातें सुनता रहता है और विषय-प्रेमियोंमें बसता है, उसका अन्तःकरण साधनाका स्वाद नही ले सकता।

२३४०—अच्छी स्थिति हो जायगी, दुनियाका कोई दुःख नहीं रहेगा, भगवान् हमारी हर एक इच्छाको पूर्ण करते रहेंगे, तब हम भजन करेंगे, ऐसा मानना तो मनका धोखा है। तुम भगवान्‌का भजन तो चाहते नहीं, चाहते हो संसारी आराम।

२३४१—कोई अगर यों समझता है कि मैं अपने ही साधनके बलपर प्रभुको पा लूँगा तो वह अपनेको मिथ्या अभिमानके गड्ढेमें डालता है; और जो मनुष्य बिना ही साधन किये प्रभुको पाना चाहता है, वह तो दुराशामें ही डूबता है।

२३४२—संसारकी सारी स्थितियोंसे अन्तःकरणको मुक्त करके सच्चिदानन्द प्रभुमें ही शान्ति खोजना और प्राप्त करना—मनुष्यका सच्चा धर्म यही है।

२३४३—भगवान्‌के गुणानुवाद तीन प्रकारसे गाये जाते है—(१) केवल जीभसे अन्तःकरणको साथ जोड़े बिना ही, (२) जीभसे अन्तःकरणको साथ जोड़कर, ऐसे ही गुणगानसे शीघ्र प्रभुकृपा मिलती

है, (३) केवल अन्तःकरणसे मतलब यह है कि प्रभुके गुणगानमें मन, बुद्धिका गर्क हो जाना ही सर्वोत्तम गुणगान है। ऐसे गुणगानकी महिमा प्रभु ही जानते हैं।

२३४४—जो ज्ञान तुमको धर्ममें और सदाचारमें प्रेरित करता है, वही सच्चा ज्ञान है और जो विश्वास प्रभुके प्रति अधिक-से-अधिक नम्र बनाता है, वही सच्चा विश्वास है।

२३४५—जिनमें भगवान्‌को छोड़कर किसी वस्तुमें जरा भी अनुराग नहीं रहता, वे ही सच्चे महाजन या महापुरुष है।

२३४६—जबतक मनुष्य पश्चात्तापके लिये तैयार न हो, तबतक क्षमाकी याचना न करे और जबतक तन-मनसे उपासना न हो तबतक न तो पाप दूर होते हैं और न मन ही असली राहपर आता है।

२३४७—संसार कुत्तोंकी चाट-जैसा है। बहुत-से कुत्ते एक जगह इकट्ठे होकर पत्तल चाटा करते हैं, परंतु जो मनुष्य निरन्तर भोग-विलासमें रचा-पचा रहता है, वह तो कुत्तोंसे भी अधम है, क्योंकि कुत्ते तो खा लेनेके बाद चाटसे दूर हट जाते हैं, पर यह मनुष्य तो वहाँ-का-वहाँ ही खड़ा रहता है।

२३४८—दैवी सम्पत्तिमें प्रेम होना प्रभुप्रेमका पूर्वरूप है।

२३४९—पैसोंको बुरे उपयोगसे रोकनेकी अपेक्षा जीभको बुरे उपयोगसे रोकना बहुत कठिन है।

२३५०—संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जिसमें ईश्वर न दीखता हो।

२३५१—खबरदार! एक पैसा भी कमाओ तो न्यायसे कमाना और कहीं कुछ खर्च करना तो अच्छे मार्गमें ही खर्च करना।

२३५२—दो बातोंपर पूरा विश्वास करना (१) तुम्हारे लिये जो कुछ रचा हुआ है, तुम दूर भागोगे तो भी वह तुम्हें मिलेगा ही और

(२) जो दूसरेके लिये रचा गया है, वह करोड़ यतन करनेपर भी तुम्हें नहीं मिलेगा।

२३५३—तुम बड़े खराब जमानेमें आ पड़े हो। इस जमानेके आदमी काम नहीं करते, पर बोलते रहते हैं और धर्मका पालन करनेके बदले सूखे ज्ञानके पढ़ने-पढ़ानेमें ही डूबे रहते हैं।

२३५४—जहाँ खुद प्रभुकी प्रसन्नता खोजनी और पानी चाहिये, वहाँ आज लोग दुनियाकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये दौड़-धूपकर रहे हैं और चिन्तामणि-जैसी प्रभु-कृपाको भूल रहे हैं।

२३५५—इस जमानेमें चुपचाप भगवान्‌का स्मरण करना और उनकी कृपापर विश्वास करके अपने जीवनको उन्हींपर न्योछावर कर देना उचित है। दयामय आप ही सम्हालेंगे।

२३५६—अधिक परिश्रमसे स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता; स्वास्थ्यको नुकसान पहुँचता है घबराहट, शोक, भय, चिन्ता और असंतोषसे।

२३५७—जबतक बात तुम्हारे मुँहसे नहीं निकली तबतक तो वह तुम्हारे वशमें हैं, पर ज्यों ही मुँहसे निकल गयी कि तुम उसके वशमें हो गये।

२३५८—यदि जीभको वशमें कर लो तो दूसरी इन्द्रियाँ सहज ही तुम्हारे वश हो जायँ और दुनियाकी शत्रुतासे तुम बच जाओ।

२३५९—दो आदमी बात करते हों तो उनके बीचमें न बोलो, अपनी बुद्धिमानी दिखानेका प्रयत्न मत करो; ऐसी बात तो बोलो हो मत जिससे उन लोगोंकी बात कटे या उन्हें नीचा देखना पड़े, अपनी और अपने वंशकी बड़ाई मत करो, दूसरा कोई करता हो तो उसे बुरा मत कहो, चिल्लाकर न बोलो, ऐसी आवाज और ऐसे भावसे न बोलो, जिसमें सुननेवालोंको तुम्हारी हुकूमत या अपना तिरस्कार प्रतीत हो।

२३६०—अपने बन्धु-बान्धव और पड़ोसियोंका उनकी सच्ची

प्रशंसा करनेके अवसरको छोड़कर जहाँतक बने कभी जिकर ही न करो।

२३६१—मुँहसे झूठ तो कभी बोलो ही मत, पर सत्य भी अनावश्यक न बोलो। बहुत बोलनेसे वाणीकी शक्ति नष्ट होती है।

२३६२—भगवान्‌का नाम और उनके गुणोंकी चर्चा करते रहो और इसको भी कहनेकी अपेक्षा मन-ही-मन करो तो और भी अच्छा है।

२३६३—भगवान्‌ने मनुष्योंको आँख और कान तो दो-दो दिये हैं, पर जीभ एक ही। इसलिये उचित है कि चार बातोंको देख-सुनकर एक बात बोलो।

२३६४—जिस तरह वृक्षमें पत्ते बहुत हो जानेपर फल कम लगते हैं, इसी प्रकार जो बहुत बोलता हैं, उससे काम बहुत कम होता है।

२३६५—बहुत प्रश्न करना बुद्धिमानी नहीं है। महात्मासे एक ही बात पूछ लो और जी-जानसे उसका पालन करो।

२३६६—आर्य स्त्री पतिके द्वारा परित्यक्ता होनेपर भी पतिकी मंगलकामना ही करती है और इसीमें अपना सौभाग्य समझती है। इसी प्रकार भक्तको भी अपने भगवान्‌से ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये।

२३६७—बिना पूछे न उपदेश करो और न सलाह देने जाओ।

२३६८—जो मनुष्य अच्छी सलाह नहीं सुनता, उसको धिक्कार सुनना पड़ता है।

२३६९—मूर्खताके बारह लक्षण हैं—(१) भगवान्‌को भूलना, (२) समयकी कीमत न समझना, (३) अपनेको बड़ा मानना, (४)एकान्तमें बात करते हुए लोगोंके बीच जा बैठना, (५) बड़े लोगोंकी दिल्लगी उड़ाना, (६) अपनी हैसियतसे ज्यादा खर्च करना, (७) सभामें ऊँची जगह बैठनेकी कोशिश करना, (८) बहुत बोलना और ऐसा बोलना जो दूसरोंको अखरे, (९) दूसरोंसे उधार लेना और

उसे चुकानेकी चिन्ता न रखना, (१०) किसी भोजमें बिना न्योते जा पहुँचना, (११) अतिथि होकर घरके मालिकपर हुकूमत करना और (१२) स्त्रियोंके अंग देखनेकी चेष्टा करना। इन बारह दोषोंसे बचनेवाला मनुष्य बहुतसी आफतोंसे अनायास ही बच जाता है।

२३७०—जहाँतक हो सके, मित्रोंमें लेन-देन मत रक्खो।

२३७१—अपनी कमाईमेंसे दसवाँ हिस्सा, नहीं तो कम-से-कम सोलहवाँ हिस्सा गरीबोंको बाँटनेके लिये जरूर अलग कर रखो। नहीं तो कमाई अशुद्ध होगी और उसकी बरकत नहीं होगी।

२३७२—किसीको दान देकर यह मत समझो कि तुमने उसपर कोई अहसान किया है। उसे दिया है भगवान्‌ने ही और वही दिया है जिसके पानेका वह अधिकारी था तुम तो केवल निमित्तमात्र हो।

२३७३—दरिद्र, अपाहिज, रोगी, अनाथ और विपत्तिमें पड़े हुए जीवोंको अपनेसे छोटा मत समझो, उनसे घृणा न करो, उनकी सेवा करो और उन्हें सुख पहुँचाओ। भगवान् न करें, तुम्हारी भी जीवनमें वैसी ही अवस्था हो सकती है।

२३७४—अपनी तारीफ सुनकर उसका रस न लो और निन्दा सुनकर विषाद अथवा क्रोध न करो।

२३७५—दूसरोंके गुण सुनकर सुखी होओ और उन गुणोंका अपनेमें लानेकी चेष्टा करो।

२३७६—दूसरोंके अवगुण सुनकर खुश न होओ और स्वयं सदा अवगुणोंसे बचते रहो।

२३७७—जो सज्जनोंको देखकर, दूसरोंके सद्‌गुणोंकी बात सुनकर और दूसरोंको सुखी देखकर प्रसन्न होते हैं, उनपर भगवान्‌की कृपा बरसती है।

२३७८—यहाँके सभी सम्बन्ध आरोपित हैं। अपना-अपना

कर्मफल भोगनेके लिये जीव विविध योनियोंमें आते हैं और कर्मफल भोगकर चले जाते हैं। इसमें शोककी वास्तवमें कोई बात नहीं है।

२३७९—जिसने कामनापर विजय प्राप्त कर ली वह रंक होनेपर भी राजा है और जो कामनाका गुलाम है, वह बादशाह होनेपर भी कंगाल है।

२३८०—अभिमान बहुत बड़ा शत्रु हैं। जिसके अंदर अभिमान आ बसता है, उसका सद्गुणरूप धन नष्ट हो जाता है।

२३८१—यह सोचो कि तुम्हारी बिसात ही क्या है, भगवान्की दयाके बिना अपने पुरुषार्थसे तुम क्या कर सकते हो ? जो कुछ होता है, उन्हींकी शक्तिसे। तुम तो बिल्कुल नाचीज हो। बार-बार ऐसा विचार करनेसे अभिमान चला जाता है।

२३८२—भगवान्को अभिमानसे द्वेष है और दीनतासे प्यार। याद रक्खो, भगवान्का नाम दीनबन्धु है, अभिमानी-बन्धु नहीं।

२३८३—बड़ा आदमी वह है कि जिसके गुणोंके कारण दूसरे लोग उसको बड़ा मानते हों। आप ही अपनेको बड़ा मानना तो मूर्खता है।

२३८४—सबसे बड़े भगवान् हैं, परन्तु उनकी बड़ाई भी तभी फैली जब भृगुजीके लातको उन्होंने खुशी-खुशी सह लिया।

२३८५—मृत्यु शरीरका अवश्यम्भावी परिणाम है। दो दिन आगे-पीछे सबकी यही गति होनेवाली है। लोगोंको शोक होता है—ममत्व और स्वार्थके कारण। जिसमें ममत्व और स्वार्थ नहीं होता उसके वियोगमें जरा भी दुःख नहीं होता।

२३८६—भगवान्की भक्ति, भगवान्के नामका जप और अपने घरमें भगवान्की पूजा करनेका सभीको अधिकार है। स्त्री हो या पुरुष—यह सभीके लिये मङ्गलकारी कार्य है। किसीको भगवान्की

भक्ति-पूजा करनेसे रोकना पाप है और इससे परिणाममें दुःखकी प्राप्ति होती है।

२३८७—विपत्ति तुम्हारे प्रेमकी कसौटी है। विपत्तिमें पड़े हुए बन्धु-बान्धवोंमें तुम्हारा प्रेम बढ़े और वह तुम्हें निरभिमान बनाकर आदरके साथ उनकी सेवा करनेको मजबूर कर दे, तभी समझो कि तुम्हारा प्रेम असली है।

२३८८—जिस तरह खरादे बिना सुन्दर मूर्ति नहीं बनती, उसी तरह विपत्तिसे गढ़े बिना मनुष्यका हृदय सुन्दर नहीं बनता।

२३८९—विपत्तिमे कभी निराश मत होओ। याद रक्खो, अन्न उपजाकर संसारको सुखी कर देनेवाली जलकी बूँदें काली घटासे ही बरसती हैं।

२३९०—विपत्ति असलमें उन्हींको विशेष दुःख देती है, जो उससे डरते हैं। जिसका मन दृढ़ हो संसारकी अनित्यताका अनुभव करता हो और हरेक बातमें भगवान्‌की दया देखकर निडर रहता हो; उसके लिये विपत्ति फूलोंके सेजके समान है।

२३९१—विपत्ति आनेपर यदि तुम उसके सहन करनेकी शक्ति रखते हो तो घबराओ मत, अपना बल लगाकर उसे निकाल दो और यदि तुम्हारी ताकत उसे नाश नहीं कर सकती तब भी रोओ मत। जरूर एक बार विपत्ति तुम्हें परेशान करना चाहेगी, परंतु फिर आप ही नष्ट हो जायगी।

२३९२—जैसे रास्तेमें दूरसे पहाड़ियोंको देखर मुसाफिर घबरा उठता है कि मैं इन्हें कैसे पार करूँगा, लेकिन पास पहुँचनेपर वे उतनी कठिन नहीं मालूम होती, यही हाल विपत्तियोंका है। मनुष्य दूरसे उन्हें देखकर घबरा उठता है और दुखी होता है, लेकिन जब वे ही सिरपर आ पड़ती है तो धीरज रखनेसे थोड़ीसी पीड़ा पहुँचाकर ही नष्ट हो जाती है।

२३९३—विपत्ति पड़नेपर पाँच प्रकारसे विचार करो—१—तुम्हारे अपने ही कर्मका फल है, इसे भोग लोगे तो तुम कर्मके एक कठिन बन्धनसे छूट जाओगे। २—विपत्ति तुम्हारे विश्वासकी कसौटी है, इसमें न घबराओगे तो तुम्हें भगवान्‌की कृपा प्राप्त होगी। ३—विपत्ति मङ्गलमय भगवान्‌का विधान है और उनका विधान कल्याणकारी ही होता है। इस विपत्तिमें भी तुम्हारा कल्याण ही भरा है। ४— विपत्तिके रूपमें जो कुछ तुम्हें प्राप्त होता है, यह ऐसा ही होनेको था, नयी चीज कुछ भी नहीं बन रही है, भगवान्‌का पहलेसे रचकर रखा हुआ दृश्य सामने आता है। ५—जिस देहको, जिस नामको और जिस नाम तथा देहके सम्बन्धको सच्चा मानकर तुम विपत्तिसे घबड़ाते हो, वह देह, नाम और सम्बन्ध—सब आरोपमात्र है, इस जन्मसे पहले भी तुम्हारा नाम, रूप और सम्बन्ध था, परंतु आज उससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं है, यही हाल इसका भी है, फिर विपत्तिमें घबड़ाना तो मूर्खता ही है, क्योंकि विपत्तिका अनुभव देह, नाम और इनके सम्बन्धको लेकर ही होता है।

२३९४—असली बात तो यह है कि विधान और विधाता एक ही हैं, विपत्तिके रूपमें सचमुच भगवान् ही तुम्हारे सामने आते हैं।

२३९५—चार बातोंको याद रक्खो—बड़े-बूढ़ोंका आदर करना, छोटोंकी रक्षा और उनपर स्नेह करना, बुद्धिमानोंसे सलाह लेना और मूर्खोंके साथ कभी नहीं उलझना।

२३९६—चार चीजें पहले दुर्बल दीखती है, परंतु परवा न करनेसे बहुत बढ़कर दुःखके गड्ढेमें डाल देती हैं—अग्नि, रोग, ऋण और पाप।

२३९७—चार चीजोंका सदा सेवन करना चाहिये—सत्सङ्ग, संतोष, दान और दया।

२३९८—चार अवस्थाओंमें आदमी बिगड़ता है। इसलिये इनमें

सावधान रहना चाहिये—जवानी, धन, अधिकार और अविवेक।

२३९९—चार चीजें मनुष्यको बड़े भाग्यसे मिलती हैं—भगवान्‌को याद रखनेकी लगन, संतोंकी सङ्गति, चरित्रकी निर्मलता और उदारता।

२४००—चार गुण बहुत दुर्लभ हैं—धनमें पवित्रता, दानमें विनय, वीरतामें दया और अधिकारमें निरभिमानिता।

२४०१—चार चीजोंपर भरोसा मत करो—बिना जीता हुआ मन, शत्रुकी प्रीति, स्वार्थीकी खुशामद और बाजारू ज्योतिषियोंकी भविष्य-वाणी।

२४०२—चार चीजोंपर भरोसा रक्खो—भगवान्, सत्य, पुरुषार्थ और स्वार्थहीन मित्र।

२४०३—चार चीजें जाकर फिर नहीं लौटतीं—मुँहसे निकली हुई बात, छूटा हुआ तीर, बीती हुई उम्र और मिटा हुआ अज्ञान।

२४०४—चार बातोंको याद रक्खो—दूसरेके द्वारा किया हुआ अपनेपर उपकार, अपने द्वारा किया हुआ दूसरोंका अपकार, मृत्यु और भगवान्।

२४०५—चारके सङ्गसे बचनेकी चेष्टा रक्खो—नास्तिक, अन्यायका धन, जवान स्त्री और दूसरेकी बुराई।

२४०६—चार चीजें अपने-आप आती हैं—सुख, दुःख, जीविका और मृत्यु।

२४०७—चारका परिचय चार अवस्थाओंमें मिलता है—दरिद्रतामें मित्रका, निर्धनतामें स्त्रीका, रणमें शूरवीरका और बदनामीमें बन्धु-बान्धवोंका।

२४०८—धनके साथ दो लुटेरे लगे रहते हैं, जो निरन्तर दैवी गुणोंको लूटते रहते हैं—एक अभिमान और दूसरा खुशामदी।

✓२४०९—संसारके लोग चञ्चल लक्ष्मीके पीछे जितने पचते हैं उससे सौवाँ हिस्सा परिश्रम भी यदि परमार्थके लिये करें तो उन्हें अचल सम्पत्ति मिल सकती है।

✓२४१०—पापकर्म सभीके लिये बुरा है, परंतु विद्वान्‌के लिये तो बहुत बुरा है, क्योंकि अन्धा मूर्ख तो आँख न होनेसे राह भूलता है, पर विद्वान् दोनों आँख होते हुए भी कुएँमें गिरता है।

✓२४११—तुमसे कोई वैर रखता हो तो तुम केवल इतना देखो कि तुम्हारी किसी क्रियासे उसकी हानि तो नहीं हुई, उसे दुःख तो नहीं पहुँचा। यदि ऐसा नहीं है तो अपने मनको दुखी मत करो और उसपर प्रेम तथा दया बनाये रक्खो।

✓२४१२—तुम्हारा कोई पूर्वकर्म जबतक कारण नहीं होगा, तबतक तुम्हें कोई दुःख नहीं पहुँचा सकता। अगर किसीके द्वारा दुःख मिलता है तो यह समझो कि वह बेचारा तो केवल निमित्त बना है और दयाका पात्र है।

२४१३—क्रोध चार तरहका होता है—(१) लोहेमें लकीर-सा, (२) पत्थरमें लकीर-सा, (३) बालूमें लकीर-सा और (४) पानीमें लकीर-सा। लोहेमें लकीर-सा तामसी मनुष्योंका होता है, जो जन्म-जन्मान्तरतक चलता है। पत्थरमें लकीर-सा राजसी पुरुषोंका होता है, जो कुछ दिनोंमें मिट जाता है। बालूमें लकीर-सा सात्त्विक सज्जनोंका होता है जो हवाके झोंकेसे बालूके लकीरकी भाँति तुरंत नष्ट हो जाता है और पानीमें लकीर-सा संतोंका होता है, जो आता-सा दीखता है पर वास्तवमें होता नही।

✓२४१४—बुरी बातोंसे बचनेके ये ग्यारह उपाय है—भगवान्‌से प्रार्थना करना, सत्सङ्ग करना, कुसङ्गसे सर्वथा दूर रहना, आलस्य और प्रमाद न करना, नाच, तमाशा, नाटकादि न देखना, बुरी किताबें न पढ़ना,

मन और इन्द्रियोंकी बुरे विषयोंकी ओर जानेसे रोकते रहना, एकान्तमें मन और इन्द्रियोंकी विशेष रखवाली करना, महात्माओंके वचनों और शास्त्रोंकी शिक्षाओंको याद रखना, अपनी स्थितिको सर्वथा देखते रहना तथा मृत्यु, नरकोंकी यन्त्रणा और बुरी योनियोंके कष्टकी बातोंको याद करते रहना।

२४१५—बुद्धिमान् वह है जो जीवनमें सबसे जरूरी कामको सबसे पहले करता है। मनुष्यके जीवनमें सबसे जरूरी काम है—मालिकका चिन्तन।

२४१६—भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किसी बाहरी आडम्बरकी, वेष-भूषाकी, बोलचालके खास ढंगकी, आदेश-उपदेशकी, स्वाँग बनानेकी और साधु सजनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये तो केवल चाहिये निर्मल और भक्तिपूर्ण मन।

२४१७—जीव अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही पुण्यका फल भोगता है और अकेला ही पापसे उत्पन्न होनेवाले दुखोंको भोगता है।

२४१८—भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ हैं और वे ही हमारे स्वामी; शरण ग्रहण करने योग्य, परम गति, परम आश्रय, माता-पिता, भाई-बन्धु, परम हितकारी, परम आत्मीय और सर्वस्व हैं, उनको छोड़कर हमारा अन्य कोई भी नहीं है—इस भावसे जो भगवान्‌के साथ अनन्य सम्बन्ध है, उसका नाम, 'अनन्य योग' है।

२४१९—जब बच्चा माताके पेटमें रहता है, तब अज्ञानवश हाथ-पैर पीटता है, परंतु क्या माता उसे अपराध समझती है ? इसी प्रकार भगवान् जीवोंके अपराधपर दृष्टि नहीं डालते; क्योंकि सभी तो उनकी ही प्यारी संतान हैं।

२४२०—अच्छे कर्मोंमें लगे रहो। कोरे मनके लड्डुओंमें लीन

मत रहो।

२४२१—संसारके सुख क्षणभंगुर हैं। तबतक किसीको सुखी नहीं समझना चाहिये जबतक कि वह सुखकी स्थितिमें मर न जाय।

२४२२—मरनेके पहले किसीको महात्मा न समझो, पता नहीं मनुष्य कब गिर जाय। संसारमें जगह-जगह फिसलन भरी है।

२४२३—जिसने कभी दुःख नहीं उठाया, वह सबसे बड़ा दुखिया है और जिसने कभी पीर न सही, वह सबसे बढ़कर बेपीर है, क्योंकि ऐसा हुए बिना दूसरोंके दुःख और पीड़ाका अनुभव नहीं हो सकता और जो दूसरोंके दुःखका अनुभव नहीं करता, उसे परिणाममें दुःखी होना ही पड़ता है।

२४२४—और सब बातोंको कलपर छोड़ दो, परंतु भगवान्‌का स्मरण और परोपकारमें एक मिनटकी भी देर न करो।

२४२५—जैसे हम द्वेषके द्वारा जगत्‌को नरकरूप बना देते हैं, वैसे ही प्रेमसे उसे स्वर्गसे भी बढ़कर बना सकते हैं।

२४२६—क्रोध दिलानेपर भी चुप रहना बुद्धिमानी और महत्त्व है। महिमा जीभके वेगको रोकनेमें है और इससे भी बढ़कर महत्त्व मनके वेगको रोकनेमें है।

२४२७—आशाके वशमें हुए मनुष्य क्षण-क्षणमें दुःख भोगते हैं। जो आशाके दास हैं, वे समस्त संसारके दास हैं और जिन्होंने आशाको अपनी दासी बना लिया है, उनके लिये यह सम्पूर्ण जगत् दासके तुल्य है।

२४२८—मनको सदैव शान्त रक्खो चाहे तुम्हारे चारों ओर कितने ही विषाद हों और कितने ही क्लेशके कारण मौजूद हों।

२४२९—तीन काम बड़े महत्त्वके हैं—प्राणिमात्रपर दया करके उनके दुःखोंको दूर करना, निर्बलों और असहायोंकी सहायता करना और

शत्रुको भी दुःख तथा निन्दासे बचाना।

२४३०—भगवान् विष्णुकी भक्ति ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थोंकी जड़ है। भक्ति ही भगवान्‌को वशमें करनेका उपाय है।

२४३१—तीन कार्य मुख्य हैं—पापमें अत्यन्त ग्लानि, धर्मके लिये कभी न बुझनेवाली प्यास और प्राणिमात्रके साथ हृदयकी सहानुभूति।

२४३२—जो भक्तिसे रहित है, वह यदि सुवर्ण आदिसे भगवान्‌की पूजा करे, तो भी वे उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते। सभी वर्णोंके लिये भक्ति ही सबसे उत्कृष्ट मानी गयी है।

२४३३—आकाशमें उड़ना आदि तो इन्द्रजालके तमाशे हैं। इनसे परलोकमें कोई सहारा नहीं मिलता। महात्माओंकी सच्ची सिद्धि तो वह है कि उनके सङ्ग और उपदेशसे पापी मनुष्य सदाचारी हो जाता है और परमार्थके मार्गपर लगकर संत बन जाता है।

२४३४—जो मनुष्य पढ़कर उसे धारण नहीं करता, उसके लिये विद्या भार है। उसके सङ्गसे किसीको लाभ नहीं होता।

२४३५—जो मनुष्य अपना कल्याण नहीं चाहता, पापके फल दुःखको नहीं मानता और ईश्वरको माननेमें भी आनाकानी करता है, उसको उपदेश करना व्यर्थ है।

२४३६—कामनाओंका दास भी बना रहे और सुख भी प्राप्त कर ले—यह असम्भव है।

२४३७—भगवान्‌के प्रेम और भोगोंके प्रेममें इतना ही अन्तर है जितना सूर्य और अन्धकारमें।

२४३८—ईश्वरकी सत्ता माने बिना धर्मकी जड़ ही सूख जाती है। ऐसा धर्म, जिसमें ईश्वरको स्थान नहीं है, घोर अधर्म है।

२४३९—जो इच्छाएँ तुम्हारे आडम्बर और बनावटीपनको हटाती हैं, वे ही शुभ इच्छाएँ हैं।

✓ २४४०—अपने नामकी बड़ाई चाहनेमें विरक्त भी फँस जाते है और अपना दोष प्रकट करनेवाले फँसे भी छूट जाते हैं।

२४४१—वर्तमान जीवनको भूलकर भावनामय भावी जीवनपर विश्वास न करो चाहे वह कितना ही आनन्दमय प्रतीत क्यों न होता हो।

२४४२—कहनेसे कुछ भी काम नहीं सरता, काम चलता है करनेसे।

२४४३—कहनेवाले वक्ताके जीवनको मत देखो, वह जो कहता है, उसपर गौर करो।

✓२४४४—अपना कोई तृणके समान उपकार करे तो उसे पहाड़के समान समझो और तुम पहाड़के समान करो तो भी उसे बालूके कणसे भी कम मानो।

२४४५—जो काम तुम स्वयं नहीं चाहते, वह दूसरोंके लिये भी मत करो।

✓ २४४६—किसी दूसरेका काम करना स्वीकार कर लो तो उसे वैसे ही उत्साह और लगनसे करो जैसे अपना करते हो।

२४४७—धनकी प्यास जलकी प्याससे कहीं बढ़कर दुःखदायिनी है। जलकी प्यास तो जल मिल जानेपर शान्त हो जाती है परंतु धनकी तृष्णा धन मिलनेपर और भी बढ़ती है।

✓२४४८—सहज ही अपने पास आनेवाले जिज्ञासुओंको अवकाशके अनुसार उपदेश करो, परंतु उपदेशके लिये ही कमर कसकर न बैठो। ऐसा करना अपने अमूल्य समयको खोना है।

२४४९—जो धर्मके नामपर छल या पाप करता है अथवा झूठे मतका प्रचार करके लोगोंको ठगता है, उसके समान दूसरा कोई पापी नहीं।

२४५०—दुःखमें दुखी और सुखमें सुखी होनेवाला लोहेके समान है, दुःखमें भी सुखी रहनेवाला सोनेके सदृश है, दुःख-सुखमें बराबर रहनेवाला रत्नके तुल्य है और जो सुख-दुःखकी भावनासे भी परे है वह सच्चा सम्राट् है।

२४५१—शास्त्रकी बातें यदि भूल जायँ तो फिर याद कर ली जा सकती हैं, परंतु सदाचारसे एक बार भी भ्रष्ट हो जानेपर सम्हलना मुश्किल होता है।

२४५२—अधर्मके द्वारा इकट्ठी की हुई सम्पत्तिकी अपेक्षा सदाचारी पुरुषकी दरिद्रता कहीं अच्छी है।

२४५३—लोगोंको रुलाकर जो सम्पत्ति इकट्ठी की जाती है, वह आर्तस्वरसे रोनेकी आवाजके साथ ही विदा हो जाती है। पर जो धर्मके द्वारा संचित होती है, वह बीचमें किसी कारणवश क्षीण हो जानेपर भी अन्तमें खूब फूलती-फलती है।

२४५४—जब तुम दिलके मकर छोड़कर सीधे हो जाओगे तब तुम्हारे सारे काम अपने-आप ही सीधे हो जायँगे।

२४५५—ईश्वरका साक्षात्कार तब होगा जब संसारकी दृष्टिसे प्रतीत होनेवाले बड़े-से-बड़े वैरियोंको भी क्षमा करनेका तुम्हारा स्वभाव बन जायगा।

२४५६—देह, बुद्धि, लेख, व्याख्यान, घर, कुटुम्ब, यश और प्रतिष्ठा आदि प्रत्येक दावेका त्याग ही वेदान्त है।

२४५७—संतके लक्षण हैं—(१) दूसरेकी निन्दाको झूठा समझना और उसकी कहीं चर्चा भी नहीं करना, (२) अपनी प्रशंसाका न सुहाना और दूसरेकी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना, (३) दूसरेको सुख पहुँचाना और उसको अपने सुखसे भी अधिक समझना, (४) छोटोंके

प्रति कोमलता और दयाका तथा बड़ोंके प्रति आदरका बर्ताव करना और (५) खेलमें भी किसीके साथ चालाकी न करना।

२४५८—वस्त्र और किसी वस्तुविशेषसे सौन्दर्य उधार लेनेकी चेष्टा न करो, हृदयकी शान्ति और प्रसन्नता, शरीरकी नीरोगता और चेहरेपर सात्त्विक सरल हँसी ही सच्चा सौन्दर्य है।

२४५९—जिस मनुष्यकी अच्छे कर्म करनेपर भी निन्दा होती है, वह बड़ा भाग्यवान् है।

२४६०—जो अपने अच्छे कर्मोंके बदलेमें धन्यवाद, वाहवाही अथवा किसी और फलकी चाह करता है, वह अत्यन्त अभागा है; क्योंकि वह बहुमूल्य सत्कर्मोंको थोड़ी कीमतपर बेच डालता है।

२४६१—जिस मनुष्यकी भलाई की हो उसे सुखी देखनेमें प्रसन्नताका होना ही भलाई करनेवालेके लिये पूरा पुरस्कार है।

२४६२—सबके साथ भलाई करो, यदि तुम्हारे साथ कोई बुराई करता है तो उसकी जिम्मेवारी उसपर है, तुम उसकी देखा-देखी अपने मनको कलुषित करके कर्तव्यसे न हटो।

२४६३—दूसरोंको सुख पहुँचाना और उनका हित करना भगवान्‌ने तुम्हारे जिम्मे दिया है। दण्ड देना तो उनका अपना काम है। किसीको दण्ड देनेकी चाह करके भगवान्‌के आसनको छीननेकी चेष्टा मत करो।

२४६४—शुभ कर्म करनेका स्वभाव ऐसा सुन्दर धन है कि जिसे न शत्रु छीन सकता है और न चोर चुरा सकता है।

२४६५—प्रेम सदा ही सहिष्णु और मधुर है। प्रेममें द्वेष, आत्मश्लाघा, गर्व, अनिष्ट आचरण, स्वार्थ, क्रोध, अपकार और अधर्म नहीं होता।

२४६६—शत्रुपर भी प्रेम रक्खो; भगवान्‌को प्रसन्न करनेका यह

बड़ा अच्छा साधन है।

२४६७—वे मनुष्य धन्य हैं जिनमें दया है; क्योंकि परम पिताकी दयाके वे ही भागी हैं।

२४६८—शत्रुको प्यार करो; अपराधीको क्षमा करो; प्रभुके लिये दान दो और अपने लिये कुछ भी न चाहो।

२४६९—प्रभु कहते है कि जो नीच-से-नीच मनुष्यकी सेवा करता है, वही मेरी सेवा करता है।

२४७०—जो किसीको दुःखमें देखकर उसपर दया नहीं करता, वह मालिकके कोपका पात्र होता है।

२४७१—मनकी तरङ्गोंको रोकनेमें बड़ा आनन्द है। इस आनन्दका अनुभव नहीं हुआ, इसीलिये मनुष्य विषयोंके आनन्दके पीछे भटकता है।

२४७२—जो श्रीकृष्ण नामके उच्चारणरूपी पथ्यका कलियुगमें कभी त्याग नहीं करता, उसके चित्तमें पापरूपी रोग पैदा नहीं होते। श्रीकृष्णका नाम-कीर्तन करते हुए मनुष्यकी आवाज सुनकर दक्षिण दिशाके अधिपति यमराज उसके सौ जन्मोंके पापोंका परिमार्जन कर देते हैं।

२४७३—जो दिन-रात श्रीकृष्णके नामोंका कीर्तन नहीं करती वह जिह्वा नहीं है, वह तो मुखमें कोई पापमयी लता है, जिसे जिह्वाके नामसे पुकारा जाता है। जो 'श्रीकृष्ण-कृष्ण-कृष्ण श्रीकृष्ण' इस प्रकार श्रीकृष्णनामका कीर्तन नहीं करती, वह रोगरूपिणी जीभ सौ टुकड़े होकर गिर जाय।

२४७४—तुम्हारे बलपर मन वशमें नहीं होगा, भगवान्‌के बलपर विश्वास करो और चुपचाप उनकी याद करते रहो।

२४७५—भगवान्‌की यादसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और उनको

भूल जानेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है।

२४७६—पापका फल जो करनेवालेको होता है, वही प्रायः उनको प्रकट करनेवालेको होता है, इसलिये दूसरेके पापोंको प्रकट न करो।

२४७७—जो पाप प्रकट हो जाते हैं वे बदनामी देकर नष्ट हो जाते हैं, इसलिये हिम्मत करके अपने पापोंको प्रकट कर दो और बदनामीको सिर चढ़ाकर सुखी हो जाओ।

२४७८—भजन होता है गरजसे। इसमें प्रारब्ध माननेवाला मूर्ख है।

२४७९—भजन न करके जो विषयोंमें वैराग्य चाहता है, वह बड़े धोकेमें है। भजन करो तो विषयोंमें वैराग्य आप ही होगा।

२४८०—भगवान्‌के प्रेमीकी यह पहचान है कि वह भगवान्‌के लिये सदा व्याकुल रहता है।

२४८१—विरह-तापसे जबतक हृदय नहीं जलने लगता तबतक भगवान्‌की मुख-माधुरीके दर्शन नही होते।

२४८२—जैसा भूखा अन्नके लिये और प्यासा जलके लिये जलता रहता है, उससे भी अधिक ताप तुम्हारे हृदयमें भगवान्‌के लिये होना चाहिये।

२४८३—सच्चा गुरु वही हैं जो भगवान्‌की प्राप्ति करवा दे। शिष्यको चाहिये कि वह गुरुकी आज्ञाका पालन करे, केवल गुरु कहनेमात्रसे काम नहीं चलता।

२४८४—भगवान्‌को छोड़कर केवल दैवी गुणोंसे मोक्षकी आशा रखना बच्चोंकी-सी व्यर्थ चेष्टा है। सत्य आदि सद्‌गुणोंके ठहरानेके लिये भगवद्विश्वासरूपी आधारकी अत्यन्त आवश्यकता है।

२४८५—मनुष्यको चाहिये कि वह अपना काम देखे, दूसरोंके

कामोंकी नुकताचीनी न करे।

२४८६—जो दूसरोंके कामोंकी आलोचनामें ही लगे रहते हैं, वे अपना समय तो व्यर्थ खोते ही हैं, दोष देखनेकी उनकी आदत बन जाती है और जिनको दूसरोंमें दोष ही दीखते है उनके हृदयकी जलन कभी मिट ही नहीं सकती।

२४८७—नम्रताके तीन लक्षण है—(१) कड़वी बातका मीठा जवाब देना, (२) क्रोधके अवसरपर भी चुप साधना और (३) किसीको दण्ड देना ही पड़े तो उस समय चित्तको कोमल रखना।

२४८८—जो मनुष्य भगवान्‌से कृपा और स्नेहकी आशा रखता है, उसे अपने आश्रितों और अपनेसे छोटोंपर सदा कृपा और स्नेह रखना चाहिये।

२४८९—अच्छे मार्गसे भटके हुए लोगोंको प्रेमसे समझाकर राहपर लाओ। दुर्जनोंके सुधारके लिये भी कोमल व्यवहार कठोर दण्डसे बढ़कर उपयोगी है।

२४९०—याद रक्खो, मनुष्य जीवनकी सच्ची सफलता भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करनेमें ही है।

२४९१—भगवत्प्रेमकी प्राप्ति किसी भी साधनासे नहीं हो सकती। यह तभी मिलता है जब भगवान् स्वयं कृपा करके देते हैं।

२४९२—भगवान्‌की कृपा सभीपर है, परन्तु उस कृपाके तबतक दर्शन नहीं होते जबतक मनुष्य उसपर विश्वास नहीं करता और भगवत्कृपाके सामने लौकिक-पारलौकिक सारे भोगों और साधनोंको तुच्छ नहीं समझ लेता। परंतु ऐसे विश्वासकी प्राप्ति और सबको तुच्छ समझनेकी स्थिति भी भगवत्कृपासे प्राप्त हो सकती है।

२४९३—भगवत्कृपाकी, एकमात्र भगवत्कृपाकी ही बाट देखते हुए भगवानका भजन करो।

२४९४—मनके दोष, मनकी चञ्चलता, विषयोंमें आसक्ति आदि न मिटें तो निराश मत होओ, भजनके बलसे सब दोष अपने-आप दूर हो जायँगे।

२४९५—जो मनुष्य भजन न करके दोषरहित होनेकी चेष्टा करता है और दोषोंके रहते अपनेको भगवत्कृपाका अनधिकारी मानता है, वह तार्किकोंकी दृष्टिमें बुद्धिमान् होनेपर भी वस्तुतः भगवान्‌की अनन्त शक्तिमयी सहज कृपाकी अवहेलना करनेका अपराध ही करता है।

२४९६—जहाँतक बन सके, बाहरके पापोंसे बिल्कुल बचकर भगवान्‌का भजन करो। जीवन बहुत थोड़ा है, विचारोंमें ही बिता दोगे तो भजनसे वञ्चित रह जाओगे।

२४९७—भजन मन, वचन और तन तीनोंसे ही करना चाहिये। भगवान्‌का चिन्तन मनका भजन है, नाम-गुण-गान-वचनका भजन है और भगवद्भावसे हुई जीव-सेवा तनका भजन है।

२४९८—भजन सर्वोत्तम वही है कि जिसमें कोई शर्त न हो, जो केवल भजनके लिये ही हो।

२४९९—तन-मनसे भजन न बन पड़े तो केवल वचनसे ही भजन करना चाहिये। भजनमें स्वयं ऐसी शक्ति है कि जिसके प्रतापसे आगे चलकर अपने-आप ही सब कुछ भजनमय हो जाता है।

२५००—और भजनमें सबसे अधिक उपयोगी और लाभदायक है—भगवान्‌के नामका जप और कीर्तन! बस, जप और कीर्तनपर विश्वास करके नामकी शरण ले लो, नाम अपनी शक्तिसे अपने-आप ही तुम्हें अपना लेगा। और नाम-नामीमें अभेद है, इसलिये नामके द्वारा अपनाये जाकर नामी भगवान्‌के द्वारा तुम सहज ही अपनाये जाओगे। याद रक्खो, जिसको भगवान्‌ने अपना लिया, उसीका जन्म और जीवन सफल है, धन्य है!

(संत और संतवाणीकी जय-जय!)

::—::